

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ।

(भाषाटीका)

भाषाकार —

स्वर्गीय पं० जयचंद्रजी, जयपुर ।

मुलमजैनग्रंथमाला पुष्प ३



श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीमुनिस्वामिकार्तिकेय विरचित

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

स्वर्गीय पं० जयचंद्रजी कृत वचनिका सहित ।

जिसको

गांधी हरीभाई देवकरण एंडसंस् संरक्षित

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाने

धरणगांव निवासी झूमकराम भगवानसा दि० वीसा ओसवालकी

द्रव्यसे प्रकाशित किया ।

प्रथमावृत्ति } भाद्रपद वी० सं० २४४७ { न्योछावर ॥॥

प्रकाशक—

पञ्चालाल बाकलीवाल,

महामंत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशनीसंस्था,

८ महेन्द्रवोसलेन, श्यामबाजार—कलकत्ता ।



मुद्रक—

श्रीलालजैन काव्यतीर्थ

जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस,

८ महेन्द्रवोसलेन, श्यामबाजार—कलकत्ता ।

निवेदन ।

धरणगांवनिवासी श्रेष्ठ भूमकराम भगवानसा दिगम्बरी वीसा आसेवाल, आजसे चारवर्ष पहिले (वी. सं. २४४३) आठसौ रुपये प्रदान कर संस्थाके दानी सहायक हुये थे । यह रकम उन्होंने अपने मृत्युसमय ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ जिनवाणीके प्रचारार्थ निकाली थी । तदनुसार “तत्त्वज्ञानतरंगिणी” ग्रंथ प्रकाशित किया गया और उसकी आई न्यो-छावरसे आज यह दूसरा ग्रन्थ सुलभजैनग्रंथमालामें निकाला जाता है ।

संस्थामें दान किये गये द्रव्यसे दाताकी इच्छानुसार ग्रंथ प्रकाशित कर लागत मात्र न्योछावरसे सर्वसाधारणको दिये जाते हैं और उनकी संपूर्ण द्रव्य उठ आनेपर दूसरा ग्रन्थ छपाया जाता है ।

इसप्रकार एक बार दान देकर सैकड़ों वर्षोंतक अपनी या अपने कुटुम्बियोंकी कीर्तिलता जीवित रखनेवाले श्रीमानोंको संस्थाके दानी सहायक हो स्वपर कल्याण करना चाहिये ।

मंत्री

संस्थाके छपे हुये भाषाटीका सहित उत्तमोत्तम जैन शास्त्र ।

परीक्षामुख	1) संस्कृतप्रवेशनी-दोनों भाग	१॥)
संस्कृतप्रवेशनी-द्वितीय भाग	॥॥) हरिवंशपुराण बडे नयीसरलवचनिका	४॥)
तत्त्वज्ञानतरंगिणी	१) आत्मप्रबोध	॥)
सुभाषितरत्नसंदोह खुलेपत्र	२) ,, जिल्दका	॥॥)
मकरध्वजपराजय-हिन्दीमें काम और जिनदेवका युद्ध		॥)
कच्ची जिल्दका	॥) पक्की जिल्दका	॥॥)
परमाध्यात्मतरंगिणी-संस्कृत और भाषाटीका सहित (थोडी) है		२॥॥)
जिनदत्तचरित्र भाषावचनिका	॥) जिल्दका	॥)
आराधनासार सजिल्द	१) तत्त्वार्थसार ११००० भाषाटीका	४)
पात्रकेशरीस्तोत्र भाषाटीका सहित		१)
गोम्मटसारजी-दोनोंकांड पूर्ण, और लब्धिसार क्षपणासार सहित खुलेपत्र		
४१०० पृष्ठ	५१) ग्रन्थत्रयी	॥॥) जिल्दकी ॥॥)
गोम्मटसारजी-कर्मकांड पूर्ण, लब्धिसार क्षपणासारजी, और भाषा		
संदृष्टि सहित	३४) चारित्रसार	३)

दूसरोंके छपाये हुये ग्रंथ ।

शाकटायन धातुपाठ २) लघीयश्रयादि संग्रह १) विधवा विवाह खंडन ॥

विशेष जाननेके लिये बडा सूचीपत्र मंगाकर देखिये ।

मिलनेका पता—

श्रीलाल जैन,

मंत्री- भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था,

८ महेन्द्रवोस लेन, श्यामबाजार कलकत्ता ।

प्रस्तावना.

(प्रथम संस्करण)

पाठक महाशय ! हमारी इच्छा थी कि मूल ग्रन्थकर्त्ताका जीवन चरित्र यथाशक्ति संग्रह करके प्रकाशित किया जाय परंतु यथासाध्य अन्वेषण करनेपर भी ग्रन्थकर्त्ताका कुछ भी तथ्य संग्रह नहीं हुवा. विशेष खेदकी बात यह है कि स्वाभिकार्तिकेय मुनिमहाराज कौनसी शताब्दीमें हुए सो भी निर्णय नहीं हुवा यद्यपि दंतकथापरसे प्रसिद्ध है कि ये आचार्यवर्य विक्रम संवत्से दो तीनसौ वर्ष पहिले हुये हैं. परंतु जबतक कोई प्रमाण न मिले इस दंतकथापर विश्वास नहीं किया जा सकता. आचार्योंकी कई पद्यावली भी देखी गई उनमें भी इनका नाम कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं हुवा किंतु इस ग्रंथकी गाथा ३९४ की संस्कृत टीका वा भाषा टीकामें इतना अवश्य लिखा हुवा मिला कि—“ स्वाभिकार्तिकेय मुनि कौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया ” परंतु कौंचराजा कब हुवा और यह वाक्य कौनसे ग्रंथके आधारसे टीकाकारने लिखा है सो हमको मिला नहीं. एक मित्रने कहा कि इनकी कथा किसी न किसी कथा कोषमें मिलेगी. परंतु प्रस्तुत समयतक कोई भी कथाकोश हमारे देखनेमें नहीं आया परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ये बालब्रह्मचारी आचार्यश्रेष्ठ दो हजार वर्षसे पहिले हो गये हैं. क्योंकि इस ग्रन्थकी प्राकृत भाषा व रचनाकी शैली विक्रमशताब्दीके बने प्राकृत पुस्तकोंसे भिन्न प्रकारकी ही यत्र तत्र दृष्टिगत हुई. प्रचलित आधुनिक प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें भी इस ग्रन्थके आर्षप्रयोगोंकी सिद्धि बहुत कम मिलती है. इसकारण मूल पुस्तकको शुद्ध करनेमें भी सिवाय प्राचीन प्रतियोंके कोई साधन प्राप्त नहीं हुवा है ।

इस ग्रन्थमें मूल गाथा ४८९ हैं जिनमें मुमुक्षुजनोंके लिये प्रायः आवश्यकीय सब ही विषय संक्षिप्त स्पष्टतया वर्णन किये गये हैं। परंतु मुख्यतया इनमें संसारके दुःख दिखाकर संसारसे विरक्त होनेका उपदेश है, इसकारण समस्त विषय द्वादश अनुप्रेक्षाके कथनमें ही गर्भित करके वर्णन किये गये हैं। मानो घडेमें समुद्र भर दिया गया है।

इस ग्रंथपर एक टीका तौ वैद्यक ग्रंथके कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध दिगंबरजैन-आचार्य वाग्भट्ट विरचित है। जिसका उल्लेख पिटर्सनसाहब तथा बूथरसाहब की किसी रिपोर्टमें किया गया है। उसके आदि अन्तके श्लोक छपे हुये एकवार हमारे देखनेमें आये थे। दूसरी टीका—पद्मनंदी आचार्यके पट्ट-पर सुशोभित त्रैविद्यविद्याधरषड्भाषाकविचक्रवर्त्ति भट्टारक शुभचन्द्राचार्य सागेवाढा पट्टाधीशकृत है। जिसमें अनेक प्राचीन जैनग्रंथोंके प्रमाणोंसे ७००० श्लोकोंमें विस्तृतव्याख्या की है। तीसरे—किसी महाशयने प्राकृत पदोंकी संस्कृत छाया लिखी है। इसके सिवाय एक प्राचीन गुर्जर भाषामिश्रित टिप्पणिग्रन्थ भी प्राप्त हुवा है। इन्हीं सब ग्रंथोंपरसे मूल, तथा जयचन्द्रजीकी दो वचनिकापरसे शुद्ध करके मुद्रणयंत्रद्वारा इस ग्रंथकी सुलभ प्राप्ति की गयी है। मूलपाठमें जहां कहीं पाठान्तर था, कहीं २ टिप्पणीमें दिखाया गया है तथा संस्कृत टीकाकी प्रतिका पाठ शुद्ध समझकर वहीं पाठ रक्खा गया है।

यद्यपि हमारे कई मित्रोंकी सम्मति थी कि जयचन्द्रकृत वचनिका (भाषाटीका) ढुढाडीभाषामिश्रित पुराने ढंगकी है। इसको वर्तमानकी प्रचलित हिंदीभाषामें परिवर्तन करके छापना उचित है। परन्तु हमने ऐसा नहीं किया, कारण जैनियोंका जो कुछ हिंदी साहित्य—धर्मशास्त्र, पारलौकिक पदार्थविद्या वा अध्यात्म पुराणादिक हैं वे सब जयपुरीभाषा और

आगरेकी प्राचीन व्रजभाषाके गद्यपद्यमें ही हैं। यदि इस प्राचीन हिंदी साहित्यको सर्व साधारणमें प्रचार नहीं करके सर्वथा आजकलकी नवीन गढ़ी हुई भाषामें ही अनुवादके ग्रंथ छपाये जायेंगे तो कहांतक अनुवाद किया जायगा क्योंकि प्रथम तो प्राचीन भाषाके ग्रंथ बहुत हैं। दूसरे—हमारी क्षुद्रजैनसमाजमें ऐसे बहुत कम विद्वान हैं जो प्राचीन हिंदी साहित्यके समस्त विषयोंके सैकड़ों ग्रंथोंका नयी हिंदीमें अनुवाद कर सके हों। तीसरे ऐसा कोई समझदार धर्मात्मा धनाढ्य सहायक भी तो नहीं देखता, जो सबसे पहिले करने योग्य जिनवाणीके जीर्णोद्धार करनेमें पुण्य वा नामवरी समझता हो। जब समस्तप्रकारके प्राचीन हिंदी जैनग्रंथोंके अनुवादपूर्वक प्रकाशित करनेका वर्तमानमें कोई साधन नहीं है और उपदेशकोंके द्वारा पाठशालायें स्थापन करनेका प्रचार बढ़ाया जाता है तो कुछ ग्रन्थ प्राचीन भाषाके भी छापकर सर्व साधारणको इस भाषाके जानकार कर देना बहुत लाभ दायक हो सक्ता है क्योंकि नयी भाषाके ग्रन्थोंकी प्राप्ति नहीं होगी तो प्राचीन भाषाका ज्ञान होनेसे हस्तलिखित प्राचीन भाषाके ग्रंथोंकी स्वाध्याय करके ही हमारे जैनीभाई ज्ञानप्राप्ति कर सकेंगे। परंतु—यह भाषा कुछ मराठी गुजरातीकी तरह सर्वथा पृथक् भी तो नहीं है ? हम जहांतक विचारते हैं तो कोई २ ठेठ लुंढाड़ी शब्द होने तथा द्वितीया पंचमी आदि विभक्तिव्यवहारका किञ्चिन्मात्र विभेदरूप होनेके सिवाय कोई भी दोष इस भाषामें दृष्टिगोचर नहीं होता। किन्तु आजकलकी नवीन हिंदी भाषामें बहुभाग लेखकगण व वंग भाषाके अनुवादकगण संस्कृत शब्दोंकी इतनी भरमार करते हैं कि उस भाषाको पश्चिमोत्तरप्रदेशके काशीप्रयागादि मुख्य २ शहरोंके सिवाय ग्रामनिवासी, मारवाड़ी (राजपूतानानिवासी) गुजराती आदि कोई भी नहीं समझ सके। ऐसा दोष इस प्राचीन जयपुरी

भाषामें नहीं है. क्योंकि यह भाषा बहुत सरल है तथा इस भाषाके हजारों ग्रंथ समस्त देशोंके बड़े २ जैनमंदिरोंमें मौजूद हैं तथा बड़े २ शहरों और ग्रामोंके पढ़े लिखे जैनी भाई नित्यशः स्वाध्याय भी करते रहते हैं. अतएव इस प्राचीन भाषाका अनादर नहीं करके इस भाषामें ही ग्रन्थोंका छापना युक्तिसंगत समझकर इस ग्रंथको नवीन भाषामें परिवर्तन नहीं किया गया किन्तु खास विद्वद्गुरु पंडित जयचन्द्रजीकी भाषामें ही छपाया है. परंतु प्रमादवशतः यत्र तत्र इस भाषासंबंधी नियमोंका पालन नहीं हुआ हो तो जयपुर निवासी विद्वद्गुरु क्षमाकरेंगे ।

मुम्बयी

जैनीभाइयोंका दास,

ता. १-१०-१९०४ ई० पन्नालाल बाकलीवाल.

वक्तव्य ।

इस ग्रंथकी पहिली आवृत्ति नहीं मिल सकनेके कारण हमने सब साधारणके हितार्थ यह सुलभ संस्करण कराया है । पहिले गाथाओंके नीचे छाया थी वह इस बार नहीं छपाई गई क्यों कि संस्कृतज्ञ थोडासा ही परिश्रम करनेसे गाथाओं द्वारा भी अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं । संशोधनमें यथाशक्ति सावधानी रक्खी हैं पं० जयचंद्रजी कृत पीठिका और विषय सूची साथमें छपाकर पहिली त्रुटि दूर करदी गई है ।

आशा है पाठक गण ! इस संसारके सच्चे स्वरूपको बतलानेवाले मनकी चंचलताके निवारक ग्रन्थका स्वाध्याय कर वास्तविक शांतिका लाभ करेंगे ।

मंत्री.

विषयसूची ।

मंगलाचरण	२ पृष्ठ
अनुप्रेक्षाओंके नाम	४
अधुवानुप्रेक्षा	५
अशरणानुप्रेक्षा	१४
संसारानुप्रेक्षा	१८
अठारह नातेकी कथा	३०
एकत्वानुप्रेक्षा	४०
अन्यत्वानुप्रेक्षा	४३
अशुचित्वानुप्रेक्षा	४४
आस्रवानुप्रेक्षा	४६
संवरानुप्रेक्षा	५०
निर्जरानुप्रेक्षा	५२
लोकानुप्रेक्षा	५८
बोधदुर्लभानुप्रेक्षा	१४९
धर्मानुप्रेक्षा	१५६
वारह तर्पोंका कथन	२५२
अंत मंगल व वक्तव्य	२८९

पीठिका ।

अब यामें प्रथम ही पीठिका लिखिए है । तहां प्रथम ही मंगलाचरण गाथा एकमें करि बहुरि गाथा दोयमें बारह अनुपेक्षाका नाम कहै हैं । पीछै उगणीस गाथामें अधुवानुपेक्षाका वर्णन किया । पीछै अशरण अनुपेक्षाका वर्णन गाथा नवमें किया । पीछै संसार अनुपेक्षाका वर्णन गाथा बियालीसमें किया है । तहां च्यारि गति दुःखका वर्णन, संसारकी विचित्रताका वर्णन, पंच प्रकार परावर्तन रूप भ्रमणका वर्णन है । बहुरि पीछे एकत्वानुपेक्षाका वर्णन गाथा छहमें किया । पीछे अन्यत्वानुपेक्षाका वर्णन गाथा तीनमें किया । पीछे अशुचित्वानुपेक्षाका वर्णन गाथा पांचमें किया है । पीछे आस्रवानुपेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है । पीछै संवरानुपेक्षाका वर्णन गाथा सातमें किया है । पीछे निर्जरानुपेक्षाका वर्णन गाथा तेरामें किया है । पीछै लोकानुपेक्षाका वर्णन गाथा एकसौ अड़सठमें किया है । तहां यह लोक षट्द्रव्यनिका समूह है । सो आकाशद्रव्य अनंता है ताके मध्य जीव अजीव द्रव्य है ताकूं लोक कहिये है । सो पुरुषाकार चौदह राजू ऊंचा घनरूप क्षेत्रफल कीए तीनसै तियालीस राजू होय है । ऐसैं कहिकरि पीछै कहा है जो यह जीव अजीव द्रव्यनितैं भरया है । तहां प्रथम जीव द्रव्यका वर्णन किया है । ताके अव्याणवै जीव समास कहे हैं, पीछै पर्याप्तिनिका वर्णन है । बहुरि तीन लोकमें जो जीव जहां जहां वसै हैं तिनका

वर्णन करि तिनकी संख्याका कही है ताका अलग बहुत्व कहा है । बहुरि आयु कायका परिमाण कहा है । बहुरि अन्यवादी केई जीवका स्वरूप अन्य प्रकार मानै हैं, तिनिका युक्ति करि निराकरण किया है । बहुरि अंतरात्मा बहिरात्मा परमात्माका वर्णन करि कहा है—जो अंतरतत्त्व तो जीव है अर अन्य सर्व बाह्य तत्त्व हैं । ऐसैं कहि करि जीवनिका निरूपण समाप्त किया है । पीछै अजीवका निरूपण है । तहां पुद्गल द्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशकाल द्रव्यका वर्णन किया है । बहुरि द्रव्यनिके परस्पर कारण कार्य भावका निरूपण किया है । बहुरि कहा है जो द्रव्य सर्व हां परिणामी द्रव्य पर्यायरूप हैं ते अनेकान्त स्वरूप हैं । अनेकान्त बिना कार्य कारण भाव नाहीं बनै है । कारण कार्य बिना काहेका द्रव्य ? ऐसैं कहा है । बहुरि द्रव्य पर्यायका स्वरूप कहिकरि पीछै सर्व पदार्थकूं जाननेवाला प्रत्यक्ष परोक्ष स्वरूप ज्ञानका वर्णन किया है । बहुरि अनेकान्त वस्तुका साधनेवाला श्रुतज्ञान है, ताके भेद नव हैं । ते वस्तुकूं अनेक धर्मस्वरूप साथै हैं तिनिका वर्णन है । बहुरि कहा है जो प्रमाण नयनितैं वस्तुकूं साधि मोक्षमार्गकूं साथै हैं ऐसे तत्त्वके सुननेवाले, जाननेवाले, भावनेवाले बिरले हैं विषयनिके वशीभूत होनेवाले बहुत हैं । ऐसैं कहिकरि लोकभावनाका कथन संपूर्ण किया है । बहुरि आगें बोधदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन अठारह गाथानिर्म कीया है । तहां निगोदतैं लेकरि जीव अनेक पर्याय सदा

पाया करै है । ते सर्व सुलभ हैं । अरु सम्यग्ज्ञान चारित्र्य
स्वरूप मोक्षका मार्गका पावना अति दुर्लभ है । ऐसैं कह्या
है । आगैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन एकसौ छत्तीस गाथामें है,
तहां निवै गाथामें तो श्रावक धर्मका वर्णन है । तामैं छत्ती-
स गाथामें तो अविरत सम्यग्दृष्टीका वर्णन है । पीछै दोय
गाथामें दर्शन प्रतिमाका, इकतालीस गाथामें व्रतप्रतिमाका,
तिनमें पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चारि शिक्षाव्रत ऐसे
बारह व्रतनिका, दोय गाथामें सामायिक प्रतिमाका, छह
गाथामें प्रोषध प्रतिमाका, तीन गाथामें सचित्त त्याग प्रति-
माका, दोय गाथामें अनुमति त्याग प्रतिमाका दोय गाथा-
में उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमाका, ऐसैं ग्यारा प्रतिमाका
वर्णन है । बहुरि वियालीस गाथामें मुनिके धर्मका वर्णन
है । तहां रत्न त्रयकरि युक्त मुनि होय उत्तम क्षमा आदि
दश लक्षण धर्मकूं पालै, तिन दश लक्षणका जुदा २ वर्ण-
न है । पीछै अहिंसा धर्मकी बढाई वर्णन है । बहुरि फेरि
कह्या है जो धर्म सेवना सो पुण्य फलके अर्थि न सेवना,
मोक्षके अर्थि सेवना । बहुरि शंका आदि आठ दूषण हैं सो धर्ममें
नहीं राख्यो । निशंकित आदि आठ अंग साहित धर्म सेवना,
ताका जुदा जुदा वर्णन है । बहुरि धर्मका फल माहात्म्य वर्णन
किया है । ऐसैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन समाप्त कीया है । बहुरि आगैं
धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिका स्वरूप बारह प्रकार तप है । तिनिका जुदा
जुदा वर्णन है । ताकी गाथा इक्यावन हैं । बहुरि तीन गाथामें
कर्ता अपना कर्तव्य प्रगटकरि अन्त मंगल करि ग्रन्थ समाप्त किय
है । सर्व गाथा चारिसैं निवै हैं ऐसैं जानना ।



श्रीपरमात्मने नमः

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ।

(भाषानुवादसहित)

भाषाकारका मंगलाचरण ।

दोहा ।

प्रथम ऋषभ जिन धर्मकर, सनमति चरम जिनेश ।
विघनहरन मंगलकरन, भवतमदुरितदिनेश ॥ १ ॥
वानी जिनमुखतैं खिरी, परी गणाधिपकान ।
अक्षरपदमय विस्तरी, करहि सकल कल्याण ॥ २ ॥
गुरु गणधर गुणधर सकल, प्रचुर परंपर और ।
व्रततपधर तनुनगनतर, बंदौं वृष शिरमौर ॥ ३ ॥
स्वामिकार्तिकेयो मुनी, बारह भावन भाय ।
कियो कथन विस्तार करि, प्राकृतछंद बनाय ॥ ४ ॥
ताकी टीका संस्कृत, करी सुघर शुभचन्द्र ।
सुगमदेशभाषामयी, करूं नाम जयचन्द्र ॥ ५ ॥

पढ़हु पढ़ावहु भव्यजन, यथाज्ञान मनधारि ।

करहु निर्जरा कर्मकी, बार बार सुविचारि ॥ ६ ॥

ऐसें देवशास्त्र गुरुको नमस्काररूप मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षानामा ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करिये है । तहां संस्कृत टीकाका अनुसार ले, मेरी बुद्धिसारू गाथाका संक्षेप अर्थ लिखियेगा. तामें कहीं चूक होय तौ विशेष बुद्धिमान संवार लीजियो ।

श्रीस्वामिकार्त्तिकेय नामा आचार्य अपने ज्ञानवैराग्य की वृद्धि होना, नवीन श्रोता जनोंके वैराग्यका उपजना तथा विशुद्धता होनेतैं पापकर्मकी निर्जरा, पुण्यका उपजना, शिष्टाचारका पालना निर्विघ्नतैं शास्त्रकी समाप्ति होना इत्यादि अनेक भले फल चाहता संता अपने इष्टदेवको नमस्काररूप मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि गाथासूत्र कहैं है—

तिहुवणातिलयं देवं, वंदित्ता तिहुअणिंदपारिपुज्जं ।

वोच्छं अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ ॥ १ ॥

भावार्थ—तीन भुवनका तिलक, बहुरि तीन भुवनके इंद्र-निकरि पूज्य ऐसा देव है ताहि मैं बंदिकर भव्य जीवनिकों आनन्दके उपजावनहारी अनुप्रेक्षा तिनहि कहूंगा । भावार्थ—

(१) इस जगह भाषानुवादक स्वर्गाय पं० जयचन्द्रजीने समस्त ग्रन्थकी पीठिका (कथनकी संक्षिप्त सूचनिका) लिखी है सो हमने उसको यहां न रखकर आधुनिक प्रथानुसार भूमिकामें (प्रस्तावनामें) लिखा है ।

यहां 'देव' ऐसी सामान्य संज्ञा है सो क्रीडा विजिगीषा धुति स्तुति मोद गति कांति इत्यादि क्रिया करै ताकों देव कहिये. तहां सामान्यविषै तो चार प्रकारके देव वा कल्पित देव भी गिनिये हैं. तिनितैं न्यारा दिखानेके अर्थि 'त्रिभुवनतिलक' ऐसा विशेषण किया तातैं अन्यदेवका व्यवच्छेद (निराकरण) भया, बहुरि तीनभुवनके तिलक इन्द्र भी हैं तिनितैं न्यारा दिखावनेके अर्थि 'त्रिभुवनेंद्रपरिपूज्य' ऐसा विशेषण किया, यातैं तीन भुवनके इन्द्रनिकरि भी पूजनीक ऐसा देव है ताहि नमस्कार किया, इहां ऐसा जानना कि ऐसा देवपणा अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पंच परमेष्ठीविषै ही संभवै है. जातैं परम स्वात्मजनित आनंद सहित क्रीडा, तथा कर्मके जीतने रूप विजिगीषा, स्वात्मजनित प्रकाशरूप धुति, स्वस्वरूपकी स्तुति, स्वरूपविषै परम-प्रमोद, लोकालोकव्याप्तरूप गति, शुद्धस्वरूपकी प्रवृत्तिरूप कान्ति इत्यादि देवपणाकी उत्कृष्ट क्रिया सो समस्त एकदेश वा सर्वदेशरूप इनिहीविषै पाईए है. तातैं सर्वोत्कृष्ट देवपना इनिहीविषै आया, तातैं इनिकों मंगलरूप नमस्कार युक्त है. 'मं' कहिये पाप ताकाँ गालै तथा 'मंग' कहिये सुख, ताकाँ लाति ददाति कहिये दे, ताहि मंगल कहिये. सो ऐसे देवको नमस्कार करनेतैं शुभपरिणाम हो है तातैं पापका नाश हो है. शांतभावरूप सुख प्राप्ति हो है, बहुरि अनुपेक्षाका सामान्य अर्थ बारम्बार चिंतवन करना है । तहां चिंतवन अनेक प्रकार है, ताके करनेवाले अनेक हैं, तिनितैं न्यारे दिखा-

बनेके अर्थ 'भव्यजनानन्दजननीः' ऐसा विशेषण दिया है।

तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकै आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा । बहुरि यहां 'अनुप्रेक्षाः' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चितवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चितवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं ।

अध्रुव असरण भणिया संसारामेगमणमसुइत्त ।

आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥

इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्च ।

मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो ! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहि जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगें कहेंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन ? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ अस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह । भावार्थ—ये बारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा । बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा ? अध्रुव तौ अनित्यको कहिये । जामें शरण नहीं सो अशरण । भ्रमणकों संसार कहिये । जहां दूसरा नहीं सो एकत्व । जहां सर्वतैं जुदा सो

अन्यत्वं । मलिनताकों अशुचित्व कहिये । जो कर्मका आवना
 सो आसव । कर्मका आवना रोकै सो संवर । कर्मका क्षरना
 सो निर्जरा । जामें षट्द्रव्य पाइये सो लोक । अतिकठिनता-
 सों पाइए सो दुर्लभ । संसारतैं उद्धार करै सों वस्तुस्वरूपा-
 दिक धर्म । इस प्रकार इनके अर्थ हैं ।

—:०:—

अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—
 जं किंपिवि उत्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण ।
 परिणामसरूवेण वि-ण य किंपिवि सासयं अत्थि ॥४॥

भाषार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो
 है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ
 सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं. तहां सामान्य तो द्रव्यको
 कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु
 नित्यही है. बहुरि गुण भी नित्यही हैं और पर्याय है सो अ-
 नित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यह प्राणी पर्याय-
 बुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै
 है. तथा ताकूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्या-
 कुल होय है, ताकों यह भावना (अनुप्रेक्षा) चितवना
 युक्त है । जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हों, बहुरि
 उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामें हर्षविषाद

कहा ? शरीर है सो जीव पुद्गलका संयोगजनित पर्याय है. धन धान्यादिक हैं ते पुद्गलके परमाणुनिके स्कन्धपर्याय हैं. सो इनके मिलना विछुरना नियमकर अवश्य है. थिरकी बुद्धि करै है सो यह मोहजनित भाव है. तातैं वस्तु स्वरूप जानि हर्ष विषादादिकरूप न होना ।

आगे इसहीको विशेषकर कहै हैं,—

जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं ।

लच्छी विणाससहिया इयसव्वं भंगुरं मुणह ॥ ५ ॥

भाषार्थ—भो भव्य हो ! यह जन्म है सो तौ मरणकर सहित है, यौवन है सो जराकर सहित उपजै है, लक्ष्मी है सो विनाश सहित उपजै है, ऐसैं ही सर्व वस्तु क्षणभंगुर जानहु. भावार्थ—जेती अवस्था जगतमें हैं, तेती सर्व प्रतिपक्षी भावको लिये हैं. यह प्राणी जन्म होय तब तो ताकूं थिर मानि हर्ष करै है. मरण होय तब गया मानि शोक करै है. ऐसैं ही इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष, अप्राप्तिमें विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद, अप्राप्तिमें हर्ष करै है. सो यह मोहका माहात्म्य है. ज्ञानीनिकों समभावरूप रहना ।

अथिरं परियणसयणं पुत्तकलत्तं सुमित्त लावण्णं ।

गिहगोहणाइ सव्वं णवघणविंदेण सारित्थं ॥ ६ ॥

भाषार्थ—जैसे नवीन मेघके बादल तत्काल उदय होकर विलाय जाय, तैसैं ही या संसारविषै परिवार बन्धुवर्ग

पुत्र, स्त्री, भले मित्र, शरीरकी सुन्दरता, गृह, गोधन इत्यादि समस्त वस्तु अथिर हैं । भावार्थ— ये सर्व वस्तु अथिर जानिकरि हर्ष विषाद नहि करना ।

सुरधणुतडिब्वचवला इंदियविसया सुभिच्चवग्गा य ।

दिट्ठपणट्ठा सव्वे तुरयगयरहवरादीया ॥ ७ ॥

भाषार्थ— या जगतविषै इन्द्रियनके विषय हैं ते इन्द्रधनुष तथा विजलीके चमत्कारवत् चंचल हैं पहिली दीसै पीछे तुरत विलाय जाय हैं बहुरि तैसे ही भले चाकरनिके समूह हैं बहुरि तैसे ही भले घोडे हस्ती रथ हैं ऐसे सर्व ही वस्तु हैं । भावार्थ— यह प्राणी श्रेष्ठ इन्द्रियनके विषय भले चाकर घोडे हाथी रथादिक की प्राप्ति करि सुख मानै है, सो ये सारे क्षणविनश्वर हैं, अविनाशी सुखका उपाय करना ही योग्य है ।

आगे बन्धुजनका संगम कैसा है सो दृष्टांतद्वारकरि कहैं हैं—
पथे पहियजणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं ।

बन्धुजणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥ ८ ॥

भाषार्थ— जैसें मार्गविषै पथिक जननिका संयोग क्षण मात्र है तैसें ही संसारविषै बन्धुजननिका संयोग अथिर है ।

भावार्थ— यह प्राणी बहुत कुटुम्ब परिवार पावै, तब अभिमान करि सुख मानै है, या मदकरि निजस्वरूपको भूलै है, सो यह बन्धुवर्गका संयोग मार्गके पथिकजन सा-

रिखा है शीघ्र ही बिछुडै है. प्राविषै संतुष्ट होय स्वरूपकूं न भूलना.

आगे देहसंयोगकूं अथिर दिखावै हैं—

अइलालिओ वि देहो ण्हाणसुयंधेहिं विविहभक्खेहिं
खणमित्तेण वि विहडइ जलभरिओ आमघडउव्व ॥

भाषार्थ— देखो यह देह स्नान तथा सुगन्ध वस्तुनि करि संवारया हुवा भी तथा अनेक प्रकार भोजनादि भक्ष्यनिकरि पालया हुआ भी जलका भरया कच्चा घडाकी नाई क्षणमात्रमें विघट जाय है । भावार्थ— ऐसे शरीरविषै स्थिर-बुद्धि करना बड़ी भूल है ।

आगे लक्ष्मीका अस्थिरपणा दिखावै हैं—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।
सा किं बंधेइ रइं इयरजणाणं अपुण्णाणं ॥ १० ॥

भाषार्थ— जो लक्ष्मी कहिये संपदा पुण्यकर्मके उदय सहित जे चक्रवर्ति तिनकैं भी शाश्वती नाही तौ अन्य जे पुण्यउदयरहित तथा अल्प पुण्यसहित जे पुरुष हैं तिनसहित कैसैं राग बांधै ? अपि तु नाही बांधै. भावार्थ— या संपदाका अभिमानकरि यहु प्राणी प्रीति करै है सो वृथा है ।

आगे याही अर्थको विशेष करि कहै हैं,—

कत्थवि ण रमइ लच्छी कुलीणधीरे वि पंडिए सूरै ।

पुज्जे धम्मिटे वि य सुखवसुयणे महासत्ते ॥ ११ ॥

भाषार्थ— यह लक्ष्मी संपदा कुलवान धैर्यमान पंडित सुभट पूज्य धर्मात्मा रूपवान सुजन महापराक्रमी इत्यादि काहू पुरुषनिविषैहू नहीं राचै है। भावार्थ— कोई जानेगा कि मैं बड़ा कुलका हूं, मेरे बड़ांकी संपदा है, कहां जाती है तथा मैं धीरजवान हों कैसे गमाऊंगा। तथा पंडित हों, विद्यावान हों, मेरी कौन ले है। मोकूं देहीगा तथा मैं सुभट हूं कैसे काहूको लेने द्योगा। तथा मैं पूजनीक हूं मेरी कौन ले है। तथा मैं धर्मात्मा हों, धर्मते तो आवै, छती कहां जाय है। तथा मैं बड़ा रूपवान हों, मेरा रूप देखि ही जगत प्रसन्न है, संपदा कहां जाय है। तथा मैं सुजन हों परका उपकारी हों, कहां जायगी; तथा मैं बड़ा पराक्रमी हों, संपदा बढ़ाऊंगा, छती कहां जानै द्योगा; सो यह सर्व विचार मिथ्या है। यह संपदा देखते देखते विलय जाय है। काहूकी राखी रहती नहीं ।

आगे कहै हैं जो लक्ष्मी पाई ताकों कहा करिये सोई कहिये है,—

ता मुंजिज्ज उ लच्छी दिज्ज उ दाणं दयापहाणेण ।

जा जलतरंगचवला दोतिण्णिदिणाणि चिट्ठेइ ॥ १२ ॥

भाषार्थ— यह लक्ष्मी जलतरंगसारखी चंचल है । जेते दो तीन दिन ताई चेष्टा करै है, विद्यमान है, तेतें भोगबो,

दयाप्रधान होय करि दान द्यो । भावार्थ—कोऊ कृपणबुद्धि या लक्ष्मीकूं संचय करि थिर राख्या चाहै ताकूं उपदेश है । जो यहू लक्ष्मी बंचल है, रहनेकी नाहीं, जेते थोरे दिन विद्यमान है, तेते प्रभुको भक्तिनिमित्त तथा परोपकारनिमित्त दानकरि खरचो तथा भोगवो । इहां प्रश्न—जो भोगनेमें तो पाप निपजै है । भोगनेका उपदेश काहेकूं दिया ? ताका समाधान—संचय राखनेमें प्रथम तौ ममत्व बहुत होय तथा कोई कारणकरि विनशै तब विषाद बहुत होय । आसक्त-पणेतें कषाय तीव्र परिणाम मलिन निरंतर रहै हैं । बहुरि भोगनेमें परिणाम उदार रहै, मलिन न रहै । उदारतासूं भोग सामग्रीविषै खरचै, तामें जगत जज्ञ करै । तहां भी मन उज्जल रहै है । कोई अन्य कारणकरि विनशै तो विषाद बहुत न होय इत्यादि भोगनेमें भी गुण होय हैं । कृपणकै तौ कछु ही गुण नाहीं । केवल मनकी मलिनताको ही कारण है । बहुरि जो कोई सर्वथा त्याग ही करै तो ताकों भोगने का उपदेश है नाहीं ।

जों पुण लच्छि संचदि ण य भुंजदि णेय देदि पत्तेसु
सो अप्पाणं वंचदि मणुयत्तं णिप्फलं, तस्स ॥१३॥

भावार्थ—बहुरि जो पुरुष लक्ष्मीको संचय करै है, प्रात्रनिके निमित्त न दे है, न भोगवै है, सो अपने आत्मा को ठगै है । ता पुरुषका मनुष्यपना निष्फल है वृथा है । भा-
वार्थ—जा पुरुषने लक्ष्मी पाय संचय ही किया । दान

भोगमें न खर्ची, तानै मनुष्यपणा पाय कहा किया, निष्फल ही खोया, आपा ठगाया ।

जो संचिऊण लच्छि धरणियले संठवेदि अइदूरे ।

सो पुरिसो तं लच्छि पाहाणसमाणियं कुणइ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको अति ऊँडी पृथिवी तलमें गाड़ै है, सो पुरुष उस लक्ष्मीको पाषाणसमान करै है । भावार्थ—जैसे हवेलीकी नीवमें पाषाण धरिये है । तैसें याने लक्ष्मी गाड़ी तब पाषाणतुल्य भई ।

अणवरयं जो संचदि लच्छि ण य देदि णेय भुंजेदि
अप्पाणिया वि य लच्छी परलच्छिसमाणिया तस्स ॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीको निरन्तर संचय करै है, न दान करै है, न भोगवै है, सो पुरुष अपनी लक्ष्मीको परकी समान करै है । भावार्थ—लक्ष्मी पाय दान भोग न करै है, ताकै वह लक्ष्मी पैलेकी है । आप रखवाला (चौकी-दार है) है, लक्ष्मीको कोऊ अन्य ही भोगवैगा ।

लच्छीसंसत्तमणो जो अप्पाणं धरेदि कट्टेण ।

सो राइदाइयाणं कज्जं साधेहि मूढप्पा ॥ १५ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष लक्ष्मीविषै आसक्तचित्त हुवा संता अपने आत्माको कष्टसहित राखै है, सो मूढात्मा राजानिका तथा कुटुम्बीनिका कार्य साधै है । भावार्थ—लक्ष्मीके विषै

आसक्तचित्त होयकरि याके उपजावनेके अर्थ तथा रत्नाके
अर्थ अनेक कष्ट सहै है, सो वा पुरुषके केवल कष्ट ही फल
होय है । लक्ष्मी कौं तो कुटुंब भोगवैगा, कै राजा लग्न ।
जो वड्डारइ लच्छि बहुविहबुद्धीहिं णेय तिप्पेदि ।
सव्वारंभं कुव्वदि रत्तिदिणं तं पि चिंतवदि ॥ १७ ॥
ण य मुंजदि वेलाए चिंतावत्थो ण सुयदि रयणीये ।
सो दासत्तं कुव्वदि विमोहिदो लच्छितरुणीए ॥ १८ ॥

भाषार्थ— जो पुरुष अनेक प्रकार कला चतुराई बुद्धि
करि लक्ष्मीने बधावै है, तप्त न होय है, याके वृत्ते असि-
मसि कृष्यादिक सर्वारंभ करै है, रातिदिन यहीके आरम्भ
को चिंतवै है, वेला भोजन न करै है, चिंतामें तिष्ठता हुवा
रात्रि बिषे सोवै नाहीं है सो पुरुष लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहवा
हुवा ताका किकरपणा करै है, भावार्थ— जो स्त्रीका किकर
होय ताकों लोकविषे ' मोहलया ' ऐसा निंदनाम कहै हैं,
जो पुरुष निरन्तर लक्ष्मीके निमित्त ही प्रयास करै है सो
लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहलया है ।

आगे जो लक्ष्मीको धर्म कार्यमें लगावै ताकी प्रशंसा
करै हैं—

जो वड्डमाण लच्छिं अणवरयं देहिधम्मकज्जेसु ।
सो पंडिएहिं थुव्वदि तस्स वि सहला हवे लच्छी ॥ १९ ॥

भाषार्थ— जो पुरुष पुण्यके उदय करि बधती जो लक्ष्मी

ताहि निरन्तर धर्म कार्यनिविषै दे है सो पुरुष पंडितनिकरि स्तुति करने योग्य है. बहुरि ताहीकी लक्ष्मी सफल है. भावार्थ—लक्ष्मी पूजा प्रतिष्ठा, यात्रा, पात्रदान, परका उपकार इत्यादि धर्मकार्यविषै खरची हुई ही सफल है, पंडित-जन भी ताकी प्रशंसा करै हैं ।

एवं जो जाणित्ता विहलियलोयाण धम्मजुत्ताणं ।
णिरवेक्खो तं देहि हु तस्स हवे जीवियं सहलं ॥२०॥

भावार्थ—जो पुरुष पहिले कहा ताको जाणि धर्मयुक्त जे निर्धन लोक हैं, तिनके अर्थि प्रति उपकारकी बांछासों रहित हूवा तिस लक्ष्मीको दे है, ताका जीवन सफल है । भावार्थ—अपना प्रयोजन साधनेके अर्थि तौ दान देनेवाले जगतमें बहुत हैं. बहुरि जे प्रतिउपकारकी बांछारहित धर्मात्मा तथा दुःखी दरिद्र पुरुषनिको धन दे हैं, ऐसे विरले हैं उनका जीवितव्य सफल है ।

आगे मोहका माहात्म्य दिखावै हैं—

जलवुव्वयसारित्थं धणजुव्वणजीवियं पि पेच्छंता ।
मण्णांति तो वि णिच्चं अइवलिओ मोहमाहप्पो ॥२१॥

भावार्थ—यह प्राणी धन यौवन जीवनको, जलके बुद-बुदासारिखे तुरत विलाय जाते देखते संते भी नित्य मानै है सो यह हू बड़ा अचिरज है. यह मोहका माहात्म्य बड़ा बलवान है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अन्यथा जनावनेको मदपी-

बना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार ग्रन्थकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सबतैं बलवान है, जो प्रत्यक्ष विनाशीक वस्तुको देखै है, तो हू नित्य ही मनावै है। तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक हैं ते सब मोहहीके भेद हैं। ए सर्व ही वस्तु स्वरूपविषै ग्रन्थया बुद्धि करावै हैं।

आगें या कथनको संकोचै हैं—

चइऊण महामोहं विसए सुणिऊण भंगुरे सव्वे ।

णिव्विसयं कुण्ह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो ! तुम समस्त विषयनिक्कं विनाशीक सुणकरि, मेहा मोह को छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहु, जातैं उत्तम सुखको पावो। भावार्थ—पूर्वोक्त प्रकार संसार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकूं सुणिकरि अपना मनकूं विषयनितैं छुडाय अथिर भावैगा सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखकों पावैगा ।

—:—o—:—

अथ अशरणानुप्रेक्षा लिख्यते.

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।

हरिहरवंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

भाषार्थ—जिस संसारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है बहुर जहां हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द कर बडे २ पदवीधारक

सर्वही कालकरि ग्रसे, तिस संसारविषै कहा शरणा होय ?
 किछू भी न होय. भावार्थ—शरणा ताकूं कहिये जहां अपनी
 रक्षा होय, सो संसारमें जिनका शरणा विचारिये ते ही
 काल—पाय नष्ट होय हैं. तहां काहेका शरणा ?

आगें याका दृष्टान्त कहै हैं,—

सिंहस्स कमे पडिदं सारंगं जह ण रक्खदे को वि ।
 तह मिच्चुणा य गहियं जीवं पि ण रक्खदे को वि ॥

भावार्थ—जैसे वनविषै सिंहके पगतलें पड्या जो हिरण,
 ताहि कोऊ भी राखनेवाला नाहीं, तैसे या संसारमें काल-
 करि ग्रह्या जो शानी, ताहि कोऊ भी राखि सकै नाहीं-
 भावार्थ—उद्यानमें सिंह मृगकूं पगतलें दे, तहां कौन राखै ?
 तैसे ही यह कालका दृष्टांत जानना ।

आगें याही अर्थकूं दृढ़ करै हैं,—

जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य ।
 मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति २५

भावार्थ—जो मरणाकूं प्राप्त होते मनुष्यकूं कोई देव मंत्र
 तंत्र क्षेत्रपाल उपलक्षणातें लोक जिनकूं रत्नक मानै, सो
 सर्वही राखनेवाले होंय तौ मनुष्य अक्षय होंय. कोई भी मरै
 नाहीं. भावार्थ—लोक जीवनेके निमित्त देवपूजा मंत्रतंत्र
 ओषधी आदि अनेक उपाय करै है परंतु निश्चय विचारिये

तो कोई जीवित दीसै नाही. वृथा ही मोहकरि विकल
उपजावै है । आगे याही अर्थको बहुरि दृढ करै हैं,—

अइबलिओ वि रउदो मरणविहीणो ण दीसए को वि ।
रक्खिज्जंतो वि सया रक्खपयारेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥

भाषार्थ—इस संसारविषै अति बलवान तथा अतिरौद्र
भयानक बहुरि अनेक रक्षाके प्रकार तिनकरि निरन्तर
रक्षा कीया हूवा भी मरणरहित कोई भी नहीं दीख है,
भावार्थ—अनेक रक्षाके प्रकार गढ कोट सुभट शस्त्र आदि
छपाय कीजिये परन्तु मरणतैं कोऊ बचै नहीं । सर्व उपाय
विफल जाय हैं ।

आगे शरणा कल्पै ताकूं अज्ञान बतावै हैं—
एवं पेच्छंतो वि हु गहभूयपिसाय जोइणी जक्खं ।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्तभावादो ॥ २७ ॥

भाषार्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार अशरण प्रत्यक्ष देखताभी
मूढ जन तीव्रमिथ्यात्वभावतैं सूर्यादि ग्रह भूत व्यंतर पिशाच
योगिनी चंडिकादिक यक्ष मणिभद्रादिक इनहि शरणा मानै
है । भावार्थ—यहु प्राणी प्रत्यक्ष जाणै है जो मरणतैं कोऊ भी
राखणहारा नहीं, तोऊ ग्रहादिकका शरण कल्पै है, सो यह
तीव्रमिथ्यात्वका उदयका माहात्म्य है ।

आगे मरण है सो आयुके क्षयतैं होय है यह कहै हैं—
आयुक्खयेण मरणं आउं दाऊण सक्कदे को वि ।

तद्वा देविंदो वि य मरणाउ ण रक्खदे को वि २८

भाषार्थ—जातें आयुर्कर्मके क्षयतैं मरण होय है बहुरि आयु कर्म कोईकुं कोई देनेको समर्थ नाहीं, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतैं नाहिं राख सकै है. भावार्थ—मरणतैं आयु पूर्ण हुवा होय; बहुरि आशु कोई काहूको देने समर्थ नाहीं तब रक्षा करनेवाला कौन ? यह विचारो !

आगें याही अर्थकुं दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि ।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

भाषार्थ—जा देवनका इन्द्रहू आपको चयता [मरते हुये] राखनेको समर्थ होता तो सर्वोत्तम भोगनिकरि संयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकुं काहेको छोड़ता ? भावार्थ—सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखवै हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए ।

अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

भाषार्थ—हे भव्य ! तू पाम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चरित्रस्वरूप शरणा सेवन करि । या संसारविषै भ्रमते जीव-निकुं अन्य कछू भी शरणा नाहीं है । भावार्थ—मध्यमदर्शन ज्ञान चारत्र अपना स्वरूप है सो ये ही परमार्थरूप [वास्तवमें] शरणा है । अन्य सर्व अशरणा हैं । निश्चय

श्रद्धानकरि यहू ही शरणा पकडो, ऐसा उपदेश है।

आगे इसहीको दृढ करें हैं,—

अप्पाणं पि य सरणं खमादिभावेहिं परिणदं होदि
तिव्वकसायाविट्ठो अप्पाणं हणदि अप्पेण ॥३१॥

भाषार्थ—जो आपकूं क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करै, सो शरणा है। बहुरि जो तीव्रकषाययुक्त होय है सो आपकरि आपकूं हणै है। भावार्थ—परमार्थ विचारिये तो आपकूं आपही राखनेवाला है, तथा आप ही घातनेवाला है। क्रोधादिरूप परिणाम करै है, तब शुद्ध चैतन्यका घात होय है। बहुरि क्षमादि परिणाम करै है, तब आपकी रक्षा होय है। इनही भावनिर्णयों जन्ममरणतैं रहित होय अविनाशी पद प्राप्त होय है।

दोहा ।

वस्तुस्वभावविचारतैं, शरण आपकूं आप ।

व्यवहारे पण परमगुरु, अवर सकल संताप ॥ २ ॥

इति अशरणानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ २ ॥

अथ संसारानुप्रेक्षा लिख्यते ।

प्रथमही दोय गायानिकरि संसारका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

एकं चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो ।

पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं ॥ ३२ ॥

एककं जं संसरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स ।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तुको श्रद्धा, बहुरि कषाय कहिये क्रोध मान माया लोभ इनकरि युक्त यह जीव, ताकैं जो अनेक देहनिविषै संसरण कहिये भ्रमण होय, सो संसार कहिये । सो कैसैं ? सो ही कहिये है । एक शरीरकूं छोड़ै अन्य ग्रहण करै फेरि नवा ग्रहणकरि फेरि ताकूं छोड़ि अन्य ग्रहण करै ऐसैं बहुतबार ग्रहण किया करै सो ही संसार है । भावार्थ—शरीरतैं अन्य शरीरकी प्राप्ति होवो करै सो संसार है ।

आगें ऐसे संसारविषैं संक्षेप करि चार गति हैं तथा अनेक प्रकार दुःख हैं । तहां प्रथम ही नरकगतिविषै दुःख है, ताकूं छह गायानिकरि कहै हैं—

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं ।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अण्णदुक्खेहिं ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—यह जीव पापके उदयकरि नरकविषै उपजै है तहां अनेकभांतिके पंचप्रकारकरि उपमातैं रहित ऐसे बहुत दुःख सहै है । भावार्थ—जो जीवनिकी हिंसा करै है, झूठ बोलै है, परधन हरै है, परनारि तकै है, बहुत आरंभ करै है, परिग्रहविषैं आशक्त होय है, बहुत क्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, अति कठोर भाषी, पापी, चुगल, कृपण,

देवशास्त्रगुरुका निदक, अधम, दुबुद्धि, कृतघ्नी, बहु शोक दुःख करनेहीकी प्रकृति जाकी, ऐसा होय सो जीव, मरि-
करि नरकविषै उपजै है, अनेक प्रकार दुःखकूं सहै है ।

आगें ऊपरि कहे जे पंचप्रकार दुःख तिनकूं कहै हैं,—
असुरोदीरियदुक्खं सारीरं माणसं तहा विविहं ।
खित्तुब्भुवं च तिव्वं अण्णोण्णकयं च पंचविहं ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—असुरकुमार देवनिकरि उपजाया दुःख, बहुरि शरीरहीकर निपज्या बहुरि मनकरि भया, तथा अनेक प्रकार क्षेत्रसों उपज्या, बहुरि परस्पर किया हुवा ऐसैं पांच प्रकार दुःख हैं । भावार्थ—तीसरे नरकताई तौ असुरकुमार देव कुतूहलमात्र जाय हैं, सो नारकीनकों देखि परस्पर लडावै हैं, अनेकप्रकार दुःखी करै हैं. बहुरि नारकीनका शरीरही पापके उदयतैं स्वयमेव अनेक रोगनिसहित बुरा घिनावंना दुःखमयी होय है. बहुरि चित्त जिनके महाक्रूर दुःखरूप ही होय हैं. बहुरि नरकक्षेत्र महाशीत उष्ण दुर्गन्ध अनेक उपद्रव सहित है. बहुरि परस्पर वैरके संस्कारतैं छेदन भेदन मारन ताडन कुंभीपाक आदि करै हैं . वहांका दुःख उपमारहित है।

आगें याही दुःखका विशेष कहै हैं,—

छिज्जइ तिलतिलामित्तं भिदिज्जइ तिलतिलं तरं सयलं
बज्जग्गिए कटिज्जइ णिहिप्पए पूयकुंडाहि ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—जहां तिलतिलमात्र छेदिये है बहुरि शकल क-
हिये खंड तिनकूंभी तिलतिलमात्र मेदिये है. बहुरि वज्राग्नि-
विषै पचाइये है. बहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है ।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयमिह ।

तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहसजीहोपि ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—इति कहिये ऐसैं एवमादिकहिये पूर्व गाथा
में कहे तिनकूं आदि दे करिं जे दुःख, ते नरक विषै एक
काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाके हजार जीम होय
सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ—या गाथामें नरकके दुः-
खनिका वचन अगोचरपणा कछा है ।

बहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम
दुःखमयीही हैं ।

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं ।

कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होति णेरइया ॥ ३८

भाषार्थ—नरकविषै क्षेत्र स्वभाव करि सर्व ही कारण
दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. बहुरि नारकी जीव सदा काल
परस्पर क्रोध रूप हैं. भावार्थ—क्षेत्र तो स्वभाव कर दुःख-
रूप है ही. बहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हूवा संता वह वाकूं
मारै, वह वाकूं मारै है. ऐसैं निरंतर दुःखीही रहै हैं ।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ अइकुविदो

एवं तिव्वविवागं बहुकालं विसहदे दुःखं ॥ ३९ ॥

भाषार्थ—पूर्व भवविषै जो सज्जन कुटुंबका था, सोभी या नरकविषै क्रोधी हुवा घात करै है. या प्रकार तीव्र है विपाक जाका ऐसा दुःख बहुत कालपर्यंत नारकी सहै है. भावार्थ—ऐसे दुःख सागरां पर्यन्त सहैहैं आयु पूरी किये बिना तहांतैं निकसना न हो है ।

आगे तिर्थञ्चगतिसंबन्धी दुःखनिको साढे चारि गाथानकरि कहै हैं,—

तत्तो णीसारिऊणं जायदि तिरएसु बहुवियप्पेसु ।

तत्थ वि पावदि दुःखं गब्भे वि य छेयणादीयं ॥४०॥

भाषार्थ—तिस नरकतैं निकसिकरि अनेक भेद भिन्न जे तिर्यच, तिनविषै उपजै है. तहां भी गर्भविषै दुःख पावै है. अपि शब्दतैं सम्मूर्छन होय छेदनादिकका दुःख पावै है ।

तिरिएहिं खज्जमाणो दुट्ठमणुस्सेहिं हण्णमाणो वि ।

सव्वत्थ वि संतट्ठो भयदुक्खं विसहदे भीमं ॥ ४१ ॥

भाषार्थ— तिस तिर्यचगतिविषै जीव सिंहव्याघ्रादिक-करि भख्या हूवा तथा दुष्ट मनुष्य म्लेच्छ व्याध धीवरादिक-करि मारया हूवा सर्व जायगां त्रास युक्त हूवा रौद्रभयानक दुःखकूं विशेष करि सहै है ।

अण्णुण्णं खज्जता तिरिया पावंति दारुणं दुक्खं !

माया वि जत्थ भक्खदि अण्णो को तत्थ रक्खेदि ॥

भाषार्थ— जिस तिर्यचगतिविषै जीव परस्पर खाया हुवा उत्कृष्ट दुख पावै है. वह बाकूं खाय, वह बाकूं खाय, जहां जिसके गर्भमें उपज्या ऐसी माता भी पुत्रकूं भक्षण कर जाय तौ अन्य कौन रक्षा करै ?

तिव्वतिसाए तिसिदो तिव्वविभुक्खाइ भुक्खिदो संतो
तिव्वं पावदि दुक्खं उयरहुयासेहिं डज्झंतो ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—तिस तिर्यचगतिविषै जीव तीव्र तृषाकर तिसाया तीव्र क्षुधाकर भूखासंता उदराभिकरि जलता तीव्र दुःख पावै है ।

आगे इसको संकोचै हैं,—

एवं बहुप्पयारं दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तो पीसरऊणं लब्धिअपुण्णो णरो होइ ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—ऐसै पूर्वोक्तप्रकार तिर्यचयोनिविषै जीव अनेक प्रकार दुखकूं पावै है ताहि सहै है. तिस तिर्यचगतितै नीसर मनुष्य होय तौ कैसा होय—लब्धि अपर्याप्त, जहां पर्याप्ति पूरे ही न होय ।

अब मनुष्यगतिविषै दुःख है तिनकूं बारह गाथानिकरि कहै हैं—

सो प्रथम ही गर्भविषै उपजै ताकी अवस्था कहै हैं—
अह गब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवडीकयंगपच्चंगो
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणीदो ४५

भाषार्थ— अथवा गर्भविषै भी उपजै तो तहां भी भेले सकुचि रहे हैं हस्तपादादि अंग तथा अंगुली आदि प्रत्यंग जाके, ऐसा हुवा संता दुख सहै है. बहुरि योनितै नीसरा तीव्र दुःखकू सहै है ।

बहुरि कैसा होय सो कहै हैं.—

बालोपि पियरचत्तो परउच्छिष्टेण बड्ढदे दुहिदो ।

एवं जायणसीलो गमेदि कालं महादुक्खं ॥ ४६ ॥

भाषार्थ— गर्भतैं नीसरयां पीछै बाल अवस्थामें ही माता पिता मर जाय तब पराई औठिकरि (उच्छिष्टसे) बध्या संता मागणेहीका स्वभाव जाका ऐसैं दुःखी हुवा संता काल गमावै है ।

बहुरि कहै हैं यह पापका फल है—

पावेण जणो एसो दुक्कम्मवसेन जायदे सव्वो ।

पुणरवि करेदि पावं ण य पुण्णं को वि अज्जेदि ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—यह लोक जन सर्व ही पापके उदयतैं असाता वेदनीय नीच गोत्र अशुभ नाम आयुः आदि दुष्कर्म ताके वसतैं ऐसे दुःख सहै हैं. तोऊ फेरि पाप ही करै हैं. पूजा दान अत तप ध्यानादि लक्षण पुण्यको नाही उपजावै हैं. यह बडा अज्ञान है ।

विरलो अज्जदि पुण्णं सम्मादिट्ठी वएहिं संजुत्तो ।

सुखसमभावे सहियो णिदणगरहाहि संजुत्तो ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टि कहिये यथार्थ श्रद्धावान बहुरि मुनि
 श्रावकके व्रतनिकरि सहित, तथा उपशम भाव कहिये मंद
 कषायरूप परिणाम, तथा निंदन कहिये अपने दोष आपकी
 यादि करि पश्चात्ताप करना, गर्हण कहिये अपने दोष गुरु-
 जनके निकट कहणा इनि दोऊनिकरि संयुक्त ऐसा जीव पु-
 ण्यप्रकृतिनकूं उपजावै है. सो ऐसा बिरला ही है ।

आगे कहै हैं पुण्ययुक्तकैं भी इष्टवियोगादि देखिये है ।
 पुण्णजुदस्स वि दीसइ इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोयं ।
 भरहो वि साहिमाणो परिज्जओ लहुयभायेण ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—पुण्यउदयसहित पुरुषकैं भी इष्टवियोग अनिष्ट
 संयोग देखिये है. देखो अभिमान सहित भरत चक्रवर्ती भी
 छोटाभाई जो बाहुवली तासूं हारयो. भाषार्थ—कोऊ जानैगा
 कि जिनिके बड़ा पुण्यका उदय है तिनिकूं तो सुख है सो
 संसारमें तो सुख काहूकूं भी नाहीं. भरत चक्रवर्तीसारिखे
 भी अपमानादिकरि दुःखी ही भये तौ औरनिकी कहा बात ?

आगे याही अर्थको दृढ करै हैं—

सयलट्ठविसहजोओ बहुपुण्णस्स वि ण सव्वदो होदि ।
 तं पुण्णं पि ण कस्स वि सव्वं जे णिच्छिदं लहदि ५०

भाषार्थ—या संसारमें समस्त जे पदार्थ, तेई भये विषय
 कहिये भोग्य वस्तु, तिनिका योग बडे पुण्यवानकूं भी सर्वा-
 गपणै नाहीं मिलै है. ऐसा पुण्य ही नाही है जाकरि सर्व

ही मनोवांछित मिलै. भावार्थ—बड़े पुण्यवानकै भी वांछित वस्तुमें किछु कमती रहै, सर्व मनोरथ तो काहूके पुरै नाहीं तब सर्व सुखी काहेतैं होय ?

कस्स वि णत्थि कलत्तं अहव कलत्तं ण पुत्तसंपत्ती
अह तेसिं संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—कोई मनुष्यकै तो स्त्री नाहीं है. कोई कै जो स्त्री है तौ पुत्रकी प्राप्ति नाहीं है. कोई कै पुत्रकी प्राप्ति है तो शरीर रोगसहित है ।

अह णीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय सम्पत्ति ।

अह धणधण्णं होदि हु तो मरणं झत्ति दुक्केइ ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—जो कोईकै नीरोग देह भी हो तो धन धान्य की प्राप्ति नाहीं है. जो धन धान्यकी भी प्राप्ति हो जाय तौ शीघ्र मरण होय जाय है ।

कस्स वि दुट्ठकलित्तं कस्स वि दुव्वसणवसणिओ पुत्तो
कस्स वि अरिसमबंधू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ॥

भाषार्थ—या मनुष्यभवमें कोईकै तो स्त्री दुराचारिणी है. कोईकै पुत्र युवा आदिक व्यसनोंमें रत है, कोईकै शत्रु समान कलही भाई है. कोईकै पुत्री दुराचारिणी है ।

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि माहिला विणरसदे इट्ठा
कस्स वि अग्गिपलित्तं गिहं कुडंबं च डज्जेइ ५४

भाषार्थ—कोईकै तो भला पुत्र मरि जाय है, कोईकै इष्ट स्त्री मरिजाय है. कोईकै घर कुटुम्ब सर्व ही अग्नि करि बलि जाय है ।

एवं मणुयगदीए णाणा दुक्खाइं विसहमाणो वि ।

ण वि धम्मे कुणदि मइं आरंभं णेय परिचयइ ॥५५॥

भाषार्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार मनुष्य गतिविषै नाना प्रकार दुःखनिक्कू सहता भी यहु जीव धर्मविषै बुद्धि नहीं करै है. पापारम्भकू नहीं छोड़ै है ।

सधणो वि होदि णिधणो धणहीणो तह य ईसरो होदि राया वि होदि भिच्चो भिच्चो वि य होदि णरणाहो ॥

भाषार्थ—धनसहित तौ निर्धन होय है तैसें ही निर्धन होय सो ईश्वर हो जाय है. बहुरि राजा होय सो तो किंकर होय जाय है और किंकर होय सो राजा होय जाय है ।

सत्तू वि होदि मित्तो मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू ।

कम्मविवायवसादो एसो संसारसब्भावो ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—कर्मके उदयके वशतैं वैरी होय सो तौ मित्र होय जाय है. बहुरि मित्र होय सो वैरी होय जाय है. यहु संसारका स्वभाव है. भावार्थ—पुण्यकर्मके उदयतैं वैरी भी मित्र होय जाय और पापकर्मके उदयतैं मित्र भी शत्रु होय जाय. संसारमें कर्म ही बलवान है ।

आगे देवगतिका स्वरूप कहै हैं—

अह कहवि हवदि देवो तस्स य जायेदि माणसं दुक्खं
दट्ठूण महद्धीणं देवाणं रिद्धिसंपत्ती ॥ ५८ ॥

भाषार्थ—अथवा बड़ा कष्ट करि देवपर्याय भी पावै तौ
ताकै बड़े ऋद्धिके धारक देवनिकी ऋद्धि सम्पदा देखिकरि
मानसीक दुःख उपजै है ।

इट्ठविओगं दुक्खं होदि महद्धीण विसयतण्हादो ।
विसयवसादो सुक्खं जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—महर्द्धिक देवनकै भी इष्ट ऋद्धि देवांगनादि-
का वियोग होय है, तासंबंधी दुःख होय हैं, जिनकै विष-
यनिके आधीन सुख है तिनकै काहेतैं तृप्ति होय ? तृष्णा
बधती ही रहै ।

आगै शारीरिक दुःखतैं मानसीक दुःख बड़ा है ऐसैं कहै हैं ।

सारीरियदुक्खादो माणसदुक्खं हवेइ अइपउरं ।
माणसदुक्खजुदस्स हि विसया वि दुहावहा हुंति ॥

भाषार्थ—कोई जानैगा शरीरसंबंधी दुःख बड़ा है मान-
सिक दुःख तुच्छ है, ताकूं कहै हैं, शारीरिक दुःखतैं मान-
सिक दुःख अति प्रचुर है बड़ा है. देखो ! मानसीक दुःख
सहित पुरुषकैं अन्य विषय बहुत भी होय तो दुःख उप-
जावन हारे दीसैं. भावार्थ—मनकी चिंता होय तब सर्व ही
सापग्री दुःखरूप भासै ।

देवाणं पि य सुखं मणहरविसर्हि कीरदे जदि ही
विषयवसं जं सुखं दुखस्स वि कारणं तं पि ॥ ६१

भाषार्थ—प्रगटपणै जो देवनिकै मनोहर विषयनिकरि
सुख विचारिये तौ सुख नहीं है. जो विषयनिके आधीन
सुख है सो दुःखहीका कारण है. भावार्थ—अन्य निमित्ततैं
सुख मानिये सो भ्रम है, जो वस्तु सुखका कारण मानिये है
सो ही वस्तु कालान्तरमें दुःखकं कारण होय है ।

आगैं ऐसैं विचार किये कहूं भी सुख नहीं ऐसा कहै हैं.

एवं सुट्ठु—असारे संसारे दुखस्सायरे घोरे ।

किं कथं वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो ॥

भाषार्थ—ऐसैं सर्व प्रकार असार जो यह दुःखका सा-
गर भयानक संसार, ताविषै निश्चयकी विचार कीजिये
किछू कहं सुख है ? अपि तु नहीं है. भावार्थ—चारगतिरू-
पसंसार है तहां चारि ही गति दुःखरूप हैं, तब सुख कहां ?

आगैं कहै हैं—जो यह जीव पर्याय बुद्धि है जिस योनि-
में उपजै तहां ही सुख मानले है ।

दुक्खिकम्मवसादो राया वि य असुइकीडओ होदि
तत्थेव य कुणइ रइं पेक्खह मोहस्स माहप्पं ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जो प्राणी हो तुम देखो मोहका माहत्म्य, कि
पापके वशतैं राजा भी मरकरि विष्ट का कांडा जाय उपजै
है सो तहां ही रति मानै है क्रीडा करै है ।

आगे कहै हैं कि या प्राणीकैं एक ही भवविषै अनेक संबंध होय हैं—

पुत्तो वि भाओ जाओ सो वि य भाओ वि देवरो होदि ।

माया होइ सवत्ती जणणो वि य होइ भरतारो ६४

एयम्मि भवे एदे संबंधी होंति एयजविस्स ।

अण्णमवे किं भण्णइ जीवाणं धम्मराहिदाणं ६५

भाषार्थ—एक जीवकैं एक भवविषै एता संबन्ध होय है तौ धर्मरहित जीवनिकैं अन्य भव विषै कहा कहिये ? ते संबन्ध कौन कौन ? सो कहिये है. पुत्र तौ भाई हुवा बहुरि जो भाई था सो ही देवर भया. बहुरि माता थी सो सौति भई बहुरि पिता था सो भरतार हुवा. एता सम्बन्ध वसन्ततिलका वेश्याके अरु धनदेवके अरु कमलाके अरु वरुणकैं हुवा तिनकी कथा ग्रन्थान्तरतैं लिखिये है—

एक भवमें अठारह नातेकी कथा ।

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन. तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी वसै. सो सोलह कोटि द्रव्यको धनी. सो वसन्ततिलकानाम वेश्यासूं आशक्त होय ताहि घरमें घाली. सो गर्भवती भई. तब रोगसहित देह भई तब घरमेंसूं काढि दई. वसन्ततिलका आपके घरहीमें पुत्र पुत्रीको जुगल जायो । सो वेश्या खेद खिन्न हो, तिनि दोऊ बालकनिकूं जुदे जुदे रत्न कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण दरवाजै क्षेपी. सो तहां प्रयागनिवासी विणजारने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपी.

कमला नाम धरयो । बहुरि पुत्रको उत्तर दिशाके दरवाजै खेप्यो. तहां साकेतपुरके एक सुभद्रनाम विणजारैने अपनी स्त्री सुव्रताको सौँप्यो. धनदेव ताको नाम धरयो. बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव अरु कमलाके साथ विवाह हूवो. स्त्री भरतार भया. पीछें धनदेव विणज निमित्त उज्जयिनी नगरी गया. तहां वसन्ततिलका वेश्यासुं लुब्ध हूवा. तब ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाकै पुत्र हूवा, 'वरुण' नाम धरया. बहुरि एक दिवस कमला मुनिनै सम्बन्ध पूछ्या. मुनिने याका सर्व सम्बन्ध कह्या ।

इनका पूर्वभववर्णन.

इसी उज्जयिनी नगरीविषै सोमशर्मा नामा ब्राह्मण, ताकै काश्यपी नामा स्त्री, तिनकै अग्निभूत सोमभूत नाम दोय पुत्र हुए. ते दोऊ कहीतैं पढकर आबते हुते. मार्गमें जिनदत्तमुनिको ताकी माता जो जिनमती नामा अर्जिका सो शरीर समाधान पूछती देखी-बहुरि जिनभद्रनामा मुनिकूं सुभद्रा नाम आर्थिका पुत्रकी बहू थी सो शरीर समाधान पूछती देखी । तहां दोऊ भाईने हास्य करी कि तरुणाकै तौ वृद्ध स्त्री अरु वृद्धकै तरुणी स्त्री-विधाता अछ्या विपरीत रच्या. सो हास्यके पापतैं सोमशर्मा तो वसन्ततिलका हुई. बहुरि अग्निभूति सोमभूति दोनूं भाई परकरि वसन्ततिलकाके पुत्र पुत्री युगल भये । तिनके कमला अरु धनदेव नाम पाया. बहुरि काश्यपी ब्राह्मणी वसन्ततिलकाकै धनदेवके संयोगतैं वरुण

नाम पुत्र हुआ. ऐसैं सर्व सम्बन्ध सुणकरि कमलाकों जाति स्मरण हूवा, तव उज्जयिनी नगरीविषै बसन्ततिलकाके घर गई. तहां वरुण पालणै भूलै था, ताकूं कहती भई. कि हे बालक ! तेरे साथ मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१ । मेरा भरतार जो धनदेव ताके संयोगतैं तू हुआ सो मेरा भी तू (सोतेला) पुत्र है ।

२ । बहुरि धनदेव मेरा सगा भाई है, ताका तू पुत्र, तातैं मेरा भतीजा भी है.

३ । तेरी माता वसन्ततिलका, सो ही मेरी माता है यातैं मेरा भाई भी है.

४ । तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई है, तातैं मेरा देवर भी है.

५ । धनदेव, मेरी माता वसन्ततिलकाका भरतार है, तातैं धनदेव मेरा पिता भया. ताका तू छोटा भाई है, तातैं काका (चाचा) भी है.

६ । मैं वसन्ततिलकाकी सौकि (सौतिन) तातैं धनदेव मेरा पुत्र (सोतेला पुत्र) ताका तू पुत्र तातैं मेरा पोता भी है.

या प्रकार वरुणके साथ छह नाता कहती हुनी सो वसन्ततिलका तहां आई और कमलाकूं बोली कि तू कौन है जो मेरे पुत्रसूं या प्रकार दै नाता सुनावै है ? तब कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छै नाते हैं सो सुणि—

१ । प्रथम तो तू मेरी माता है क्योंकि मैं धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हूं.

२ । धनदेव मेरा भाई, उसकी तू स्त्री, तातैं मेरी भाबज [भौजाई] है।

३ । तू मेरी माता, ताका भरतार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता, तातैं मेरी दादी है।

४ । मेरा भरतार धनदेव, ताकी तू स्त्री, तातैं मेरी शौही (सौतिन) भी है।

५ । धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र (सौतीला पुत्र) ताकी तू स्त्री, तातैं तू मेरी पुत्रबधू भी है।

६ । मैं धनदेवकी स्त्री, तू धनदेवकी माता, तातैं तू मेरी सास भी है। याप्रकार वेश्या ६ नाते सुनकर चिन्तामें विचारतीरही, सो ही तहां धनदेव आया। ताकूं देखकर कमला बोली कि तुमारे साथ भी हमारे ६ नाते हैं सो सुणो।

१ । प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसूं युगल उण्ड्या सो मेरा भाई है।

२ । पीछें तेरा मेरा विवाह हो गया सो तू मेरा पति है।

३ । वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातैं मेरा पिता भी है।

४ । वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता तातैं काकाका पिता होनेतैं मेरा तू दादा भी भया

५ । मैं वसन्त तिलकाकी सौकी-अर तू मेरी सौकीका पुत्र तातैं मेरा भी तू पुत्र है।

६ । तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वेश्या मेरी सास भई, बहुरि सासके तुम भरतार, तातैं मेरे ससुर भी भये।

* या प्रकार एक ही यवमें एक ही प्राणीके अठारह नाते भये, ताका उदाहरण कहा. यह संसारकी विचित्र विडंबना है. यामें कछु भी आश्चर्य नहीं है ।

आगे पांच प्रकार संसारके नाम कहै हैं,—

संसारो पंचविहो दब्बे खत्ते तहेव काले य ।

भवभमणो य चउत्थो पंचमओ भावसंसारो ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—संसार कहिये परिभ्रमण सो पांच प्रकार है. द्रव्ये कहिये पुद्गल द्रव्यविषै ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण. बहुरि क्षेत्रे कहिये आकाशके प्रदेशनिविषै स्पर्शनेरूप परिभ्रमण. बहुरि काले कहिये कालके समयनिविषै उपजने विनसने-रूप परिभ्रमण. बहुरि तैसें ही भव कहिये नारकादि भवका ग्रहण त्यजनरूप परिभ्रमण बहुरि भाव कहिये अपने कषाययोगनिका स्थानकरूप जे भेद तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण. ऐसे पांच प्रकार संसार जानना ॥ ६६ ॥ आगे इनिका स्वरूप कहै हैं । प्रथमही द्रव्य परिवर्त्तनकूं कहै हैं ।

* यह अठारहनातेकी कथा ग्रंथान्तरसे लिखा गई है यथा—

बालय हि सुणि सुवयणं तुज्झ सरिसा हि अट्ठ दहणत्ता ।

पुत्त भत्तिज्ज उ भायउ देवरु पत्तिय हु पैत्तज्ज ॥ १ ॥

तुहु पियरो मुहुपियरो पियामहो तहय हवइ भत्तारो ।

भायउ तहावि पुत्तो ससुरो हवइ बालयो मज्झ ॥ २ ॥

मुहु जणणी हुइ भज्जा पियामही तह य मायरी सबई ।

हवइ बहू तह सासू ए कहिया अट्ठदहणत्ता ॥ ३ ॥

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा
णोकम्मपुग्गला वि य मिच्छत्तकसायसंजुत्तो ॥६७॥

भाषार्थ—यह जीव या लोक विषे तिष्ठते जे अनेक प्रकार पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूपकरि समयसमयप्रति मिथ्यात्वकषायनिकरि संयुक्त हुवा संता बांधै है तथा छोडै है. भावार्थ—मिथ्यात्व कषाय-के वश करि ज्ञानावरणादि कर्मका समयप्रबद्ध अभव्यराशितें अनन्तगुणा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग पुद्गलपरमाणु-निका स्कन्धरूप कार्माणवर्गणाकूं समयसमयप्रति ग्रहण करै है. बहुरि पूर्वें ग्रहे ये ते सत्तामें हैं, तिनमेंसों येते ही समयसमय सरै हैं । बहुरि तैसें ही औदारिकादि शरीर-निका समयप्रबद्ध शरीरग्रहणके समयतैं लगाय आयुकी स्थितिपर्यन्त ग्रहण करै है वा छोडै है. सो अनादि कालतैं लेकर अनन्तवार ग्रहण करना वा छोडना हो है. तहां एक परिवर्त्तनका प्रारंभविषे प्रथमसमयमें समयप्रबद्धविषे जेते पुद्गल परमाणु जैसे स्निग्ध रुक्ष वर्ण गन्ध रूप रस तीव्र मंद मध्यम भाव करि ग्रहे होय तेते ही तैसें ही कोई समय-विषे फेरि ग्रहणमें आवैं तब एक कर्म परावर्त्तन तथा नोक-र्मपरावर्त्तन होय. बीचिमें अनन्तवार और भांतिके परमाणु ग्रहण होय ते न गिणिये. जैसेके तैसे फेर ग्रहणाकूं अनन्ता काल बीतै, ताकूं एक द्रव्यपरावर्त्तन कहिये. ऐसें या जीव-ने या लोकविषे अनन्ता परावर्त्तन किये ।

आगें क्षेत्रपरिवर्तन कहै हैं—

सो को वि णत्थि देसो लोयायासस्स णिरवसेसस्स ।
जत्थ ण सव्वो जीवो जादो मरिदो य बहुवारं ॥

भाषार्थ—या लोकाकाशप्रदेशनिमें ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जामें यह सर्वही संसारी जीव बहुतवार उपज्या तथा मर्या नहीं है । भावार्थ—सर्व लोकाकाशका प्रदेश-निविषै यह जीव अनन्तवार उपज्या अनन्तरवार मर्या । ऐसा प्रदेश रखा ही नाही जामें नाही उपज्या मर्या । इहां ऐसा जानना जो लोकाकाशके प्रदेश असंख्याता हैं । ताकै मध्यके आठ प्रदेशकूं बीचि दे, सूक्ष्मनिगोदलब्धिअपर्याप्तिक जघन्य अवगाहनाका धारी उपजै है सो बाकी अवगाहना भी असंख्यात प्रदेश है सो जेते प्रदेश तेती बार तौ बाही अवगाहना तहां ही पावै । बीचिमें और जायगां अन्य अवगाहनातैं उपजै सो गिनतीमें नाही । पीछें एक एक प्रदेश क्रमकरि बधती अवगाहना पावै सो गिनतीमें, सो ऐसैं उत्कृष्ट अवगाहना महामच्छकी ताई पूरण करै । तैसैं ही क्रम करि लोकाकाशके प्रदेशनिकूं परसै तब एक क्षेत्रपरिवर्तन होय ॥ ६८ ॥ आगैं काल परिवर्तनकूं कहै हैं—

उपसप्पिणिअवसप्पिणिपढमसमयादिचरमसमयंतं ।
जीवो कमेण जम्मदि मरदि य सव्वेसु कालेसु ६९

भाषार्थ—उत्सर्पिणी बहुरि अवसर्पिणी कालके पहिले

समयतैं लगाय अन्तके समयपर्यंत यहु जीव अनुक्रमतैं सर्व कालविषै उपजै तथा परै है, भावार्थ—कोई जीव उत्सर्पिणी जो दशकोडाकोड़ी सागरका काल ताका प्रथम समयविषै जन्म पावै, पीछे दूसरे उत्सर्पिणीके दूसरे समयविषै जन्मै, ऐसे ही तीसरेके तीसरे समयविषै जन्मै, ऐसे ही अनुक्रमतैं अन्तके समयपर्यंत जन्मै, बीचिबीचिमें अन्यसमयनिविषै विना अनुक्रम जन्मै सो गिणातीमें नाहीं ऐसैं ही अवसर्पिणीके दश कोडाकोड़ी सागरके समयपूरण करै तथा ऐसैं ही परण करै सो यह अनंत काल होय ताकूं एक कालपरावर्त्तन कहिये।

आगे भवपरिवर्त्तनकूं कहै हैं—

णेरइयादिगदीणं अवरट्टिदिदो वरट्टिदी जाव ।

सव्वट्टिदिसु वि जम्मदि जीवो गेवेज्जपज्जंतं ॥ ७० ॥

भाषार्थ—संसारी जीव नरक आदि चारि गतिकी जघन्य स्थितितैं लगाय उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त सर्व स्थितिविषै अवैयकपर्यन्त जन्मै । भावार्थ—नरकगतिकी जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है सो याके जेते समय हैं तेतीवार तौ जघन्यस्थितिकी आयु ले जन्मै. पीछें एक समय अधिक आयु ले कर जन्मै । पीछें दोय समय अधिक आयु ले जन्मै. ऐसैं ही अनुक्रमतैं तेतीस सागरपर्यन्त आयु पूरण करै, बीचिबीचिमें घाटि बाधि आयु ले जन्मै तो गिणतीमें नाहीं. ऐसैं ही तीर्थच गतिकी जघन्य आयु अन्तरमुहूर्त्त, ताके जेते समय हैं तेतीवार जघन्य आयुका धारक होय पीछें एक समयाधिक-

क्रमतः तीन पल्य पूरण करै. बीचमें घाटि बाधि पावै ते गि-
णतीमें नाहीं. ऐसैं ही मनुष्यकी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट
तीनपल्य पूरण करै. ऐसैं ही देव गतिकी जघन्य दस हजार
वर्षतैं लगाय ग्रैवेयकके उत्कृष्ट इकतीस सागरतांई समयाधि-
कक्रमतैं पूरण करै. ग्रैवेयकके आगे उपजनेवाला एक दोय
भव ले मोक्ष ही जाय, तातैं न गिरया ऐसैं या भवपराव-
र्त्तनका अनन्त काल है ॥ ७० ॥

आगे भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं,—

परिणमदि सण्णिजीवो विविहकसाएहिं ट्टिदिणिमित्तेहिं
अणुभागणिमित्तेहिं य वट्ठतो भावसंसारो ॥७१॥

भाषार्थ—भावसंसारविषै वर्त्तता जीव अनेक प्रकार क-
र्मकी स्थितिबंधकूं कारण बहुरि अनुभागबन्धकूं कारण जे
अनेक प्रकार कषाय तिनिकरि सैनी पंचेंद्रिय जीव परिणमें
है. भावार्थ—कर्मकी एक स्थितिबन्धकूं कारण कषायनिके
स्थानक असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तामें एक स्थितिबंधस्था-
नमें अनुभागबन्धकूं कारण कषायनिके स्थान असंख्यात-
लोकप्रमाण हैं. बहुरि योग्यस्थान हैं ते जगत्श्रेणीके असं-
ख्यातवें भाग हैं. सो यह जीव तिनिकूं परिवर्त्तन करै है.
सो कैसें ? कोई सैनी मिथ्यादृष्टी पर्याप्तकजीव स्वयोग्य सर्व
जघन्य ज्ञानावरण प्रकृतिकी स्थिति अन्तःकोटाकोटीसागर
प्रमाण बाधै, ताके कषायनिके स्थान असंख्यात लोकमात्र
हैं. तामें सर्व जघन्यस्थान एकरूप परिणमै, तामें तिस एक

स्थानमें अनुभागबंधक कारण स्थान ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण हैं. तिनमेंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणामै तहां तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणामै, तब जगत्त्रेणी के असंख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै. बीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणामैं सो गिणतीमें नाहीं. ऐसे योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूप परिणामै तहां भी तैसैं ही योगस्थान सर्व पूरण करै । बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहां भी तेते ही योगस्थान भुगतै. ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै तब दूसरा कषायस्थान लेणा. तहां भी तैसैं ही क्रमतैं असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्त्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसैं ही चतुर्थादि असंख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामें भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै. ऐसैं दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीसकोड़ाकोडीसागर पर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसे ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसैं परिणामतैं अनंत काल बीतै, तिनिकुं भेला कीये एक भावपरिवर्त्तन होय. ऐसैं अनंत परावर्त्तन यह जीव भोगता आया है ॥

आगे पंचपरावर्त्तनका कथनकूं संकोचै हैं—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारै ।

णाणादुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—ऐसे पांच प्रकार संसारविषै यह जीव अनादि कालतैं मिथ्यात्व दोषकरि भ्रमै है. कैसा है संसार, अनेक प्रकारके दुःखनिका निधान है ।

आगें संसारतैं छूटनेका उपदेश करै है—

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण ।

तं ज्ञायह ससहावं संसरणं जेण णासेइ ॥ ७३ ॥

भाषार्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार संसारकूं जाणि सर्व प्रकार उद्यम करि मोहकूं छोडि करि हे भव्य हो ! तिस आत्मस्वभावकूं ध्यावो जाकरि संसारका भ्रमणका नाश होय ।

दोहा ।

पंचपरावर्त्तनमयी, दुःखरूप संसार ।

मिथ्याकर्म उदै यहै, भरमै जाव अपार ॥ ३ ॥

इति संसारानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ३ ॥

अथ एकत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

इक्को जीवो जायदि इक्को गब्भम्मि गिह्णदे देहं ।

इक्को बाल जुवाणो इक्को वुहो जरागहिओ ॥ ७४ ॥

भाषार्थ— जीव है सो एक ही उपजै है. सो ही एक गर्भविषै देहकूं ग्रहण करै है. सो ही एक बालक होय है. सो ही एक जवान होय है. सो ही एक वृद्ध जराकरि मृहीत होय है. भावार्थ—एक ही जीव नाना पर्यायनिंकु धारै है ।

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे ।

इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि ७५

भाषार्थ—एक ही जीव रोगी होय है, सो ही एक जीव शोकसहित होय है. सो ही एक जीव मानसिक दुःखकरि तप्तायमान होय है. सो ही एक जीव मरै है. सो ही एक जीव दीन होय नरकके दुःख सहै है. भावार्थ—जीव अकेला ही अनेक अनेक अवस्थाकूं धारै है ।

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं ॥७६ ॥

भाषार्थ—एक ही जीव पुण्यका संचय करै है. सो ही एक जीव देवगतिके सुख भोगवै है. सो ही एक जीव कर्म की निर्जरा करै है. सो ही एक जीव मोक्षकूं पावै है. भाषार्थ—सो ही जीव पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय है. सो ही जीव कर्मनाशकर मोक्ष जाय है ।

सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं ।
एवं जाणंतो वि हु तोवि ममत्तं ण छंडेइ ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—स्वजन कहिये कुटुंब है सो भी या जीवमें दुःख आवै ताकूं देखता संता भी दुःखका लेश भी ग्रहण करणो-कूं असमर्थ होय है. ऐसे जनता भी प्रगटपणै या कुटुंबवै द-मत्व नाही छोडै है. भावार्थ—दुःख आपका आप ही भो-

गवै है. कोई बटाय सकै नहीं, या जीवकै ऐसा अज्ञान है जो दुःख सहता भी परके ममत्वकूं नहीं छोड़ै है ॥ ७७ ॥

आगे कहै हैं या जीवकै निश्चयतैं धर्म ही स्वजन है ।

जीवस्स णिच्चयादो धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो
सो णेइ देवलोए सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ ॥ ७८

भाषार्थ—या जीवकै अपना हितु निश्चयतैं एक उत्तम क्षमादि दशलक्षणा धर्म ही है. काहेतैं ? जातैं सो धर्म ही देवलोककूं प्राप्त करै है. बहुरि सो धर्म ही सर्व दुःखका नाशरूप मोक्षकूं करै है. भावार्थ—धर्मसिवाय और कोऊ हितु नहीं ॥ ७८ ॥

आगे कहै हैं ऐसा एकला जीवकूं शरीरतैं भिन्न जानहु ।
सव्वायरेण जाणह इक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं ।

जक्षि दु मुणिदे जीवो होइ असेसं खणे हेयं ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—भो भव्य हो ! तुम जीवकूं शरीरतैं भिन्न सर्वप्रकार उद्यम करि जानहु. जके जाने अवशेष सर्व परद्रव्य क्षणमात्रमें त्यजने योग्य होय हैं. भावार्थ—जब अपना स्वरूपकूं जानै, तब परद्रव्य हेय ही भासैं, तातैं अपना स्वरूप हीके जाननेका महान उपदेश है ॥ ७९ ॥

दोहा ।

एक जीव परजाय बहु, धारै स्वपर निदान ।

पर तजि आपा जानिकै, करौ भव्य कल्याण ॥ ४ ॥

इति एकत्वानुप्रेक्षा समाप्त ॥ ४ ॥

अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

अण्णं देहं गिह्णदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो ।

अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो ॥ ८० ॥

भाषार्थ—यह जीव संसारविषै देह ग्रहण करै है सो आपतैं अन्य है. बहुरि माता है सो भी अन्य है. बहुरि स्त्री है सो भी अन्य है. बहुरि पुत्र है सो भी अन्य उपजै है. यह सर्व कर्मसंयोगतैं होय हैं ॥ ८० ॥

एवं वाहिरदब्बं जाणदि रूवा हुं अप्पणो भिण्णं ।

जाणं तो वि हु जीवो तत्थेव य रच्चदे मूढो ॥ ८१ ॥

भाषार्थ—ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार सर्व बाह्यवस्तुकूं आत्मस्वरूपतैं न्यारा जानै है तोऊ प्रगटपणै जाणता संता भी यह मूढ मोही तिन परद्रव्यनिविषै ही राग करै है. सो यह बड़ी मूर्खता है ॥ ८१ ॥

जो जाणिऊण देहं जीवसरूपादु तच्चदो भिण्णं ।

अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—जो जीव अपने स्वरूपतैं देहकूं परमार्थतैं भिन्न जानिकरि आत्मस्वरूपकूं सेवै है, ध्यावै है ताके अन्यत्व भावना कार्यकारी है. भाषार्थ—जो देहादिक परद्रव्यकूं न्यारे जानि अपने स्वरूपका सेवन करै है ताकूं न्याराभावना (अन्यत्वभावना) कार्यकारी है ।

दोहा ।

निज आतमतेँ भिन्न पर, जानै जे नर दक्ष ।

निजमें रमै वमै अपर, ते शिव लखै प्रत्यक्ष ॥ ५ ॥

इति अन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ५ ॥

अथ अशुचित्वानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सयलकुहियाण पिंडं किमिकुलकलियं अउव्वदुग्गंधं
मलमुत्ताणं गेहं देहं जाणेह असुइमयं ॥ ८३ ॥

भाषार्थ—हे भव्य तू या देहकूं अपवित्रमयी जाणि।
कैसा है देह ? समस्त जे कुत्सित कहिये निंदनीक वस्तु ति-
नका पिंड कहिये समूह है। बहुरि कैसा है ? किमि कहिये
उदरके जीव लट तथा अनेक प्रकार निगोदादिक जीव ति-
नकरि भरया है। बहुरि अत्यन्त दुर्गन्धमय है। बहुरि मल
तथा मूत्रका घर है। भावार्थ—सर्व अपवित्र वस्तुका समूह
देहकूं जाण हु ।

आगे कहै हैं यह देह अन्य सुगन्ध वस्तुकं भी संयोगतैं
दुर्गंध करै है—

सुट्ठुपवित्तं दव्वं सरससुगंधं मणोहरं जं पि ।

देहणिहित्तं जायदि धिणावणं सुट्ठुदुग्गंधं ॥ ८४ ॥

भाषार्थ—या देहकेविषै क्षेपे लगाये भले पवित्र सुरस
सुगंध मनके हरणहारे द्रव्य, ते भी धिणावणा अत्यन्त दु-
र्गन्ध होय हैं । भावार्थ—या देहके चंदन कपूरादिकूं लगाये

तै दुर्गन्ध होय जाय, भले मिष्टान्नादि रससहित खाये तै मंलादिकरूप परिणमै. अन्य भी वस्तु या देहके स्पर्शतै अ-
स्पर्श्य होय जाय हैं ।

बहुरि या देहकूं अशुचि दिखावै हैं—

मणुआणं असुइमयं विहिणा देहं विणिम्मियं जाण ।
तोसिं विरमणकज्जे ते पुण तत्थेव अणुरत्ता ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य ! यह मनुष्यनिका देह कर्मने अशुचि
बणाया है, सो यहां ऐसी उत्प्रेक्षा संभावना जाणि, जो इनि
मनुष्यनिकूं वैराग्य जनावनेके अर्थिही ऐसा रच्या है परंतु ये
मनुष्य ऐसे भी देहमें अनुरागी होय हैं. सो यह अज्ञान है।

बहुरि याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

एवं विहं पि देहं पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं ।
सेवंति आयरेण य अलद्धपुव्वत्ति मण्णंता ॥ ८६ ॥

भाषार्थ—ऐसा पूर्वोक्तप्रकार अशुचि देहकूं प्रत्यक्ष देख-
ता भी ये मनुष्य तहां अनुराग करै हैं, जैसें पूर्वे ऐसे कभी
न पाया ऐसा मानते संते आदरै हैं, याकूं सेवै हैं, सो यह
बड़ा अज्ञान हैं ।

आगैं या देहसुं विरक्त हो हैं ताकैं अशुचि भावना स-
फल है ऐसा कहै हैं—

जो परदेहविरत्तो णियदेहे ण य करेदि अणुरायं ।
अप्पसरूवि सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स ॥ ८७ ॥

भाषार्थ—जो भव्य परदेह जो स्त्री आदिककी देह ताँतें विरक्त हुवा संता निज देहविषै अनुराग नहीं करै है ताके अशुचि भावना सार्थिक होय है. भावार्थ—केवल विचारही-
तें वैराग्य प्रगट होय ताकै भावना सत्यार्थ कहिये ।

दोहा

स्वपर देहकूँ अशुचि लखि, तजै तास अनुराग ।

ताकै सांची भावना, सो कहिये बडभाग ॥ ६ ॥

इति अशुचित्वानुपेक्षा समाप्ता ॥ ६ ॥

अथ आसवानुपेक्षा लिख्यते ।

मणवयणकायजोया जीवपयेसाणफंदणविसेसा ।

मोहोदण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—मन वचन काययोग हैं ते ही आस्रव हैं । कैसे है ? जीवके प्रदेशनिका जो स्पंदन कहिये चलणा कंपना तिसके विशेष हैं ते ही योग हैं. बहुरि कैसे हैं ते ? मोहक-
र्मका उदय जे मिथ्यात्व कषाय तिन कर्म सहित हैं. बहुरि मोहके उदयकरि रहित भी हैं. भावार्थ—मन वचन कायके निमित्त पाय जीवके प्रदेशनिका चलाचल होना सो योग है तिनहीकूँ आस्रव कहिये. ते गुणस्थानकी परिपाटीविषै सू-
क्ष्मसांपराय दशमां गुणस्थानताई तो मोहके उदयरूप यया-
संभव मिथ्यात्व कषायनिकर सहित होय हैं. ताकूँ सांपरायि-
क आस्रव कहिये बहुरि उपरि तेरहवां गुणस्थानताई मोहके

उदय करि रहित है ताकूं ईर्यापथ आस्रव कहिये. जो पुत्रल
वर्गणा कर्मरूप परिणामै ताकूं द्रव्यास्रव कहिये. जीवके प्रदेश
चंचल होय ताकूं भावास्रव कहिये ।

आगे मोहके उदयसहित आस्रव हैं ऐसा विशेषकरि
कहे हैं—

मोहविभागवसादो जे परिणामा हवन्ति जीवस्स ।

ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥८९॥

भाषार्थ—मोहकर्मके उदयतैं जे परिणाम या जीवकै
होय हैं ते ही आस्रव हैं, हे भव्य तू प्रगटणै ऐसे जाणि-
ते परिणाम मिथ्यात्वनै अदि लेकर अनेक प्रकार हैं. भा-
वार्थ—कर्मबन्धके कारण आस्रव हैं. ते मिथ्यात्व अविरत प्र-
साद कषाय योग ऐमें पांच प्रकार हैं. तिनमें स्थिति अनु-
भागरूप बंधक कारण मिथ्यात्वादिक च्यारि ही हैं सो ए
मोहकर्मके उदयतैं होय हैं. बहुरि योग हैं ते समयमात्र बंध-
कूं करै हैं. कछू स्थिति अनुभागकूं करै नाहीं तातैं बंधका
कारणमें प्रधान नाहीं ।

आगे पुण्यपापके भेदकरि आस्रव दोय प्रकार कहे हैं—
कम्मं पुण्णं पावं हेउं तेसिं च होंति सच्छिदरा ।

मंदकसाया सच्छा तिक्कसाया असच्छा हु ॥ ९० ॥

भाषार्थ—कर्म है सो पुण्य तथा पाप ऐसे दोय प्रकार
हैं. ताकूं कारण भी दो प्रकार है. मत्तस्स अर इतर कविसे

अप्रशस्त. तहां मंद कषाय परिणाम ते तौ प्रशस्त हैं शुभ हैं
 बहुरि तीव्रकषाय परिणाम ते अप्रशस्त अशुभ हैं. ऐसे प्रग-
 ट जानहु. भावार्थ—सातावेदिनी शुभ आयु: उच्चगोत्र शुभना-
 म ये प्रकृतियें तो पुण्यरूप हैं. अवशेष चारघातियाकर्म, अ-
 सातावेदनी, नरकायु: नीचगोत्र अशुभनाम ए प्रकृतियें पा-
 परूप हैं तिनकूं कारण आस्रव भी दोय प्रकार हैं. तहां मं-
 दकषायरूप परिणाम तौ पुण्यास्रव हैं और तीव्र कषायरूप
 परिणाम पापास्रव हैं ।

आगें मंद तीव्रकषायकूं प्रगट दृष्टान्त करि कहै हैं.

सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि स्वमकरणं ।

सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता ॥ ९१ ॥

भावार्थ—सर्व जायगां शत्रु तथा मित्र आदिविषै तो
 प्यारा हितरूप वचन और दुर्वचन सुणिकरि दुर्जनविषै भी
 क्षमा करणा, बहुरि सर्व जीवनिके गुण ही ग्रहण करना,
 एते मंदकषायनिके उदाहरण हैं ।

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं ।

वेरधरणं च सुइरं तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥ ९२ ॥

भावार्थ—अपनी प्रशंसा करणा पूज्य पुरुषनिका भी
 दोष ग्रहण करनेका स्वभाव तथा घणो कालताई बैर धारण
 ए तीव्रकषायनिके चिन्ह हैं ।

आगें कहै हैं ऐसे जीवके आस्रवका चितवन निष्फल है ।

एवं जाणंतो वि हु परिचयणीये वि जो ण परिहरइ ।

तस्सासवाणुपिक्खा सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥

भाषार्थ—ऐसे प्रगटणै ज नता सन्ता भी जो त्यजनेयोग्य परिणामनिक्कं नहीं छोडै है त कैं सारा आस्रवका चितवन निरर्थक है. कार्यकारी नहीं. भावार्थ—आस्रवानुपेक्षाका चितवन करि प्रथम तौ तीव्र कषाय छोडणा, पीछें शुद्ध आत्म-स्वरूपका ध्यान करणा, सर्व कषाय छोडना, तब यह चितवन सफल है. केवल वार्त्ता करणमात्र ही तौ सफल है नहीं ।

एदे मोहजभावा जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो ।

हेयमिदि मण्णमाणो आसवअणुपेहणं तस्स ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष एते पूर्वोक्त मोहके उदयतैं भये जे मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनिक्कं छोडै है, कैसा हूवा संता उपशम परिणाम जो बीतराग भाव ताविषैं लीन हूवा संता तथा इनि मिथ्यात्वादिक भावनिक्कं हेय कहिये त्यागनेयोग्य हैं, ऐसैं जानता संता. ताकैं आस्रवानुपेक्षा हो है ।

दोहा.

आस्रव पंचप्रकारकू, तिनवैं तजैं विकार ।

ते पावैं निजरूपकू, यहै भावनासार ॥ ७ ॥

इति आस्रवानुपेक्षा समाप्ता ॥ ७ ॥

अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

सम्मत्तं देसवयं महव्वयं तह जओ कसायाणं ।

एदे संवरणामा जोगा भावो तहच्चेव ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—सम्यक्त्व देशत्रत महात्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. भाषार्थ-पूर्व आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योगरूप पंच प्रकार कहा था, तिनका अनुक्रमतें रोकना सो ही संवर है. सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तो चतुर्थगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. अविरतका अभाव एक देश तो देशविरतिविषै भया, अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगिनि-नविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया । ऐसें संवरका क्रम है ।

आगे इसीको विशेषकर कहें हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि ।

उक्किट्ठं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आ-दाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि द-शलक्षण धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि बाईस परीषहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंचम-कार चारित्र एते विशेषकर संवरके कारण हैं ।

आगे इनिको स्पष्ट करि कहैं हैं,—

गुप्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।

धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिंता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

भाषार्थ—योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतैं प्रवर्त्तना सो समिति है। जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है, भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निज-स्वरूपका चितवन सो अनुप्रेक्षा है ।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।

सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण जं सहणं ॥ ९८ ॥

भाषार्थ—जो अति रौद्र भयानक क्रुधा आदि पीडा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहना सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिके परीसहनिका जीतना कहिये है ।

अप्पसरूवं वत्थुं चत्तं रायादिएहिं दोसेहिं ।

सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तमं चरणं ॥ ९९ ॥

भाषार्थ—जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोष-निकरि रहित धर्म्य शुद्ध ध्यानविषै लीन होना ताहि भो भव्य ! तू उत्तम चारित्र जाणि ।

आगे कहैं हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदुं वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।

सो भमइ चिरं कालं संसारे दुक्खसंतत्तो ॥ १०० ॥

भाषार्थ—जो पुरुष पूर्वोक्तप्रकार संवरके कारणनिकूँ विचारतासंता भी आचरै नाही है सो दुःखनिकरि तप्तायमान हूवा संता घणो काल संसारमें भ्रमण करै है ।

आगे कहै हैं जो कैसे पुरुषके संवर हो है—

जो पुण विसयविरत्तो अप्पाणं सव्वदा वि संवरई ।

मणहरविसयेहिंतो (?) तस्स फुडं संवरो होदि ॥ १०१ ॥

भाषार्थ—जो मुनि इन्द्रियनके विषयनितैं विरक्त हूवा संता मनकूँ प्यारे जे विषय, निनितैं आत्माको सदाकाल निश्चयतैं संवररूप करै है ताके प्रगटपणौ संवर होय है. भावार्थ इन्द्रिय मनकूँ विषय नितैं रोकै अपने शुद्ध स्वरूपविषै रमावै ताके संवर होय ।

दोहा.

गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसहकार ।

चारित धारै संग तजि; सो मुनि संवरधार ॥ ८ ॥

इति संवरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ८ ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा लिख्यते ।

वारसविहेण तवसा णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि ।

वेरग्गभावणादो जिरहंकारस्स णाणिस्स ॥ १०२ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी होय ताकै बारह प्रकार तपकरि कर्मनिकी निर्जरा होय है कैसे ज्ञानीकै होय ? जो निदान कहिये इन्द्रियविषयनिकी इच्छा ताकरि रहित होय. बहुरि अहंकार अभिमानकरि रहित होय. बहुरि काहेतैं निर्जरा होय ? वैराग्यभावना जो संसार देहभोगतैं विरक्त परिणाम तातैं होय. भावार्थ—तपकरि निर्जरा होय सो ज्ञानसहित तप करे ताकै होय. अज्ञानसहित विपर्यय तप करै तामें हिंसादिक होय, ऐसे तपतैं उलटा कर्मका बंध होय है. बहुरि तपकरि मदकरै परकूं न्यून गिणै, कोई पूजादिक न करै, तासूं क्रोध करै ऐसे तपतैं बंध ही होय. गर्वरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि तपकरि या लोक परलोकविषै ख्याति लाभ पूजा इन्द्रियनिके विषय भोग चाहै, ताकै बंध ही होय. निदानरहित तपतैं निर्जरा होय. बहुरि संसार देहभोगविषै आसक्त होइ तप करै, ताका आशय शुद्ध होय नाही, ताकै निर्जरा न होय. वैराग्यभावनाहीतैं निर्जरा होय है ऐसा जानना ।

आगैं निर्जरा कहा कहिये सो कहै हैं,—

सर्वेसैं कम्माणं सत्तिविवाओ हवेइ अणुभाओ ।

तदणंतरं तु सडणं कम्माणं णिज्जरा जाण ॥ १०३ ॥

भाषार्थ—समस्त जे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म तिनकी शक्ति कहिये फल देनेकी सामर्थ्य, ताका विपाक कहिये पकना, उदय होना, ताकूं अनुभाग कहिये, सो उदय आयकें अनंतर ही ताका सटन कहिये भडना क्षरना होय ताकूं

कर्मकी निर्जरा हे भव्य तू जाणि. भावार्थ—कर्म उदय होय
 क्षर जाय ताकूं निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार
 है सो ही कहै हैं—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा ।
 चादुरादीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥१०४॥

भावार्थ—सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है. एक तो
 स्वकालप्राप्त, एक तपकरि, करी हुई होय. तामें पहिली स्व-
 कालप्राप्त निर्जरा तो चारही गतिके जीवनिकै होय है. बहुरि
 व्रतकरि युक्त हैं तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है. भा-
 वार्थ—निर्जरा दोय प्रकार है. तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि
 उदय होय रस देकरि खिरै सो तो सविपाक कहिये. यह
 निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है. बहुरि तपकरि कर्म
 विना स्थिति पूरी भये ही पकै, क्षरि जाय, ताकूं अविपाक
 ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है ।

आगें निर्जरा बधती काहेतैं होय सो कहै हैं—

उवसमभावतवाणं जह जह वड्ढी हवेइ साहूणं ।
 तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो १०५

भावार्थ—मुनिनिके जैसे २ उवसमभाव तथा तपकी बध-
 वारी होय तैसें २ निर्जराकी बधवारी होय है. बहुरि धर्म-
 ध्यान शुद्धध्यानके विशेषतैं बधवारी होय है ।

आगे इस वृद्धि के स्थान कहते हैं—

मिच्छादो सद्विद्धी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि ।
 तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६ ॥
 पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य
 दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥ १०७ ॥
 खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया ।
 एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥ १०८ ॥

भाषार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविधैं कर त्रय-
 वर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है
 यातैं असंयत सम्यग्दृष्टिकै असंख्यातगुणी निर्जरा होय है,
 यातैं देशव्रती श्रावककै असंख्यात गुणी होय है, यातैं महा-
 व्रती मुनिनिकै असंख्यात गुणी होय है, यातैं अनंतानुबंधो
 कषायका विसंयोजन कहिये अपत्याख्यानादिकरूप परिण-
 मावना ताकै असंख्यात गुणी होय है, यातैं दर्शनमोहका
 क्षय करनेवालेकै असंख्यातगुणी होय है, यातैं उपशम श्रे-
 णीवाले तीन गुणस्थानविधैं असंख्यात गुणी होय है, यातैं
 उपशांत मोह ग्यारहमां गुणस्थानवालेके असंख्यातगुणी होय
 है, यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविधैं असंख्यात गुणी
 होय है, यातैं क्षीणमोह बारहमां गुणस्थानविधैं असंख्यात-
 गुणी होय है, यातैं सयोग केवलीकै असंख्यातगुणी होय है,
 यातैं अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है, ऊपरि ऊपरि

असंख्यात गुणकार है. याहीतैं याकूं गुणश्रेणी निर्जरा कहिये है।

आगें गुणकाररहित अधिकरूप निर्जरा जातैं होय सो कहै हैं—

जो वि सहदि दुव्वयणं साहम्मियहीलणं च उवसग्गं
जिणऊण कसायरिउं तस्स हवे णिज्जरा विउला १०९

भाषार्थ—जो मुनि दुर्बचन सहै तथा साधर्मी जे अन्य-मुनि आदिक तिनकरि कीया अनादर सहै तथा देवादिक-निकरि कीया उपसर्ग सहै कषायरूप वैरीनिकूं जीतकरि ऐसै करे. ताकै विपुल कहिये विस्ताररूप बड़ी निर्जरा होय. भावार्थ—कोई कुबचन कहै तौ तासूं कषाय न करै तथा आपकूं अतीचारादिक लागै तब आचार्यादि कठोर वचन कहि प्रायश्चित्त दें निरादर करै ताकूं निकषायपणै सहै. तथा कोई उपसर्ग करे तासूं कषाय न करै ताकैं बड़ी निर्जरा होय है।

रिणमोयणुव्व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं ।

पावफलं मे एदे मया वि यं संचिदं पुव्वं ॥ ११० ॥

भाषार्थ—जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परिषदकूं ऐसा मानै जो मैं पूर्वजन्ममें पापका संचै कियाथा ताका यह फल है सो भोगना. यामैं व्याकुल न होना. जैसे काहूका करज काढ्या होय सो पैलो मांगै, तब देना. यामैं व्याकुलता कहा ? ऐसै मानै ताकै निर्जरा बहुत होय है ।

जो चिंतेइ सरीरं ममत्तजणयं विणस्सरं असुइ ।

दंसणणाणचरित्तं सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं ॥ १११ ॥

भाषार्थ—जो मुनि या शरीरकूं ममत्व मोहका उपजाव-
नहारा तथा विनाशीक तथा अपवित्र मानै, ताकै निर्जरा
बहुत होय. भावार्थ—शरीरकूं मोहका कारन अथिर अशुचि
मानै तब याका सोच न रहै. अपना स्वरूपमैं लागै, तब नि-
र्जरा होय ही होय ।

अप्पाणं जो णिंदइ गुणवंताणं करेदि बहुमाणं ।

मणइंदियाण विजई स सरूवपरायणो होदि ११२

भाषार्थ—जो साधु अपने स्वरूपविषै तत्पर होय करि
अपने किये दुष्कृतकी निंदा करै. बहुरि गुणवान पुरुष-
निका प्रत्यक्ष परोक्ष बडा आदर करै. बहुरि अपना मन
इंद्रियनिका जीतनहारा बश करनहारा होय ताकै निर्जरा
बहुत होय. भावार्थ—मिथ्यात्वादि दोषनिका निरादर करै
तब वे काहेकूं रहैं. झडिही पडैं ॥

तस्स य सहलो जम्मो तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि

तस्स वि पुण्णं वडूढइ तस्स य सोक्खं परो होदि ११३

भाषार्थ—जो साधु ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कार-
णनिविषै प्रवर्त्तै है, ताहीका जन्म सफल है. बहुरि तिसही-
कै पाप कर्मकी निर्जरा होय है, पुण्यकर्मका अनुभाग बडै
है. भावार्थ—जो निर्जराका कारणनिविषै प्रवर्त्तै, ताकै पाप

नाश होय, पुण्यकी वृद्धि होय. स्वर्गादिकके सुख भोग मोक्ष कूं प्राप्त होय ।

आगें उत्कृष्ट निर्जरा कहकरि निर्जराका कथनकूं पूरया करै हैं—

जो समसुखणिनीलो वारं वारं सरेइ अप्पाणं ।

इंदियकसायविजई तस्स हवे णिज्जरा परमा ॥ ११४ ॥

भाषार्थ—जो मुनि, वीतराग भावरूप सुख, याहीका नाम पद्म चारित्र है सो याविषैं तौ लीन कहिये तन्मय होय बारवार आत्माकूं सुमिरै ध्यावैं. बहुरि इन्द्रियनिका जीतन हारा होय, ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है. भावार्थ—इन्द्रियनिका कषायनिका निग्रहकरि परम वीतराग भावरूप आत्म-ध्यानविषै लीन होय ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय ।

दोहा

पूरव बांधे कर्म जे, क्षरैं तपोबल पाय ।

सो निर्जरा कहाय है, धारै ते शिव जांय ॥ ६ ॥

इति निर्जरानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षा लिख्यते.

आगें लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करिये है. तामें प्रथमही लोकका आकारादिक कहेंगे. तहां किछू गणित प्रयोजनकारी जाणि संक्षेपताकरि कहिये है । भावार्थ—गणितको अन्य ग्रंथनिके अनुसार लिखिये है, तहां प्रथम तौ परिकर्माष्टक है

तामें संकलन कहिये जोड देना जैसे आठ वा सातका जोड दिया पंधरा होय. बहुरि व्यवकलन कहिये वाकी कौटमा जैसे आठमें तीन घटाये पांच हैं बहुरि गुणाकार जैसे आठकों सातकरि गुणो छप्पन होय. बहुरि आठकूं दोयका भाग दिये च्यारि पाये. बहुरि वर्ग कहिये दोयराशि बराबरकी गुणिये जेते होय तेते ताकं वर्ग कहिये. जैसे आठका वर्ग चौसठि. बहुरि वर्गमूल जैसे चौसठिका वर्गमूल आठ बहुरि घन कहिये तीन राशि बराबरकी गुणो जो होय सो-जैसे, आठका घन पांचसैबारा । बहुरि घनमूल जैसे पांचसौ वाराका घनमूल आठ. ऐसे परिकर्माष्टक जानना.

बहुरि त्रैराशिक है. जहां एक प्रमाणराशि, एक फल-राशि, एक इच्छा राशि. जैसे दोय रुपयोंकी जिनस सोलह सेर आवै तो आठरुपयोंकी केती आवै. ऐसे प्रमाणराशि दोय, फलराशि सोलह, इच्छाराशि आठ. तहां फलराशिकूं इच्छाकरि गुणों एकसौ अठाईस होय. ताकूं प्रमाणराशि दो-यका भाग दिये चौसठि सेर आवै. ऐसे जानना. बहुरि क्षेत्रफ-लविषै जहां बरोबरके खंड करिये ताकूं क्षेत्रफल कहिये. जैसे खेतमें डोरी मापिये तब कचवांसी विसवांसी बीघा करिये ताकूं क्षेत्रफल संज्ञा है. जैसे अस्सीहाथकी डोरी होय ताकै बीस गट्टा कहिये च्यारि हाथका एक गट्टा, ऐसे खेतमें एक डोरी लांबा चौड़ा खेत होय ताकै च्यारि हाथके लांबे चौड़े खंड कीजिये, तब बीसकं बीस गुणा किये च्यारिसै भये.

सोई कचवांसी भई. याकै बीस विसवे भये. ताका एक बीघा भयो. ऐसैं ही जहां चौखूटा तिरखूटा गोल आदि खेत होय, ताका बराबरिका खंडकरि मापि क्षेत्रफल ल्याइये है. तैसें ही लोकका क्षेत्रकूं योजनादिककी संख्याकरि जैसा क्षेत्र होय तैसा विधानकरि क्षेत्रफल ल्यावनेका विधान गणित आखतैं जानना. इहां लोकके क्षेत्रविषै तथा द्रव्यनिकी गणनाविषै अलौकिक गणित इकईस हैं. तथा उपमागणित आठ हैं. तहां संख्यातके तीन भेद—जघन्य मध्यम उत्कृष्ट. असंख्यातके नव भेद, तामें परीतासंख्यात जघन्य मध्य, उत्कृष्ट, युक्तासंख्यात—जघन्य मध्य उत्कृष्ट. असंख्यातासंख्यात जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट ऐसैं नौ भये. बहुरि अनन्तके नवभेद, परीतानन्त, युक्तानन्त, अनंतानन्त, ताके जघन्य मध्य उत्कृष्ट करि नव ऐसैं इकईस। तहां जघन्य परीत असंख्यात ल्यावनेके अर्थ लाख लाख योजनके जंबूद्वीपप्रमाण व्यासवाले हजार हजार योजन ऊंडे च्यारि कुंड करिये. एकका नाम अनवस्था, दूजा शलाका, तीजा प्रतिशलाका, चौथा महाशलाका. तिनमेंसूं अनवस्था कुंडकूं सिरस्युतैं सिघाऊं भरिये. तिसमें छियालीस अंक प्रमाण सिरस्युं मावैं. तिनकूं संकल्प मात्र ले चालिये. एक द्वीपमें एक समुद्रमें ऐसैं गेरते जाइये. तहां वे सिरस्युं बीतैं तिस द्वीप वा समुद्रकी सूचीप्रमाण अनवस्थाकुंड कीजै. तामें सिरस्युं भरिये बहुरि शलाका कुंडमें एक सिरस्युं अन्य ल्याय गेरिये बहुरि

तैसैं ही तिस दूजे अनवस्था कुण्डकी एक सिरस्यूं एक द्वीपमें एक समुद्रमें गेरते जाइये. ऐसैं करतैं तिस अनवस्था कुण्डकी सिरस्यूं जहा वीतै, तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण फेर अनवस्था कुंडकरि तैसैं ही सिरस्यूं भरिये. बहुरि एक सिरस्यूं शलाका कुण्डमें अन्य लया गेरिये. ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण अनवस्था कुण्ड हो चुकै, तब एक शलाका कुण्ड भरै, तब एक सिरस्यूं प्रतिशलाका कुण्डमें गेरिये. तैसैंही अनवस्था होता जाय. शलाका होता जाय. ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण शलाका कुंडभरि चुकै, तब एक प्रतिशलाका भरै. ऐसैं ही अनवस्था कुंड होता जाय शलाका भरते जांय प्रति शलाका भरते जांय, तब छियालीस अंक प्रमाण प्रतिशलाका कुंड भरि चुकै तब एक महाशलाका कुंड भरै. ऐसैं करतैं छियालीस अंकनिके घन प्रमाण अनवस्था कुण्ड भये. निनिमें अंतका अनवस्था जिस द्वीप तथा समुद्रकी सूची प्रमाण द्यया तामें जेती सिरस्यूं भावै तेता प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है. यामें एक सिरस्यूं घटाये उत्कृष्टसंख्यात कहिये. दोय सिरस्यूं प्रमाण जघन्य संख्यात कहिये, बीचके सर्व मध्य संख्यातके भेद हैं. बहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यातकी सिरस्यूंकी राशिकूं एक एक बखेरि एक एक पर निमही राशिकूं थापि परस्पर गुणता अंतमें जो राशि निपजै, ताकूं जघन्य युक्तासंख्यात कहिये. यामें एक रूप घटाये उत्कृष्टपरीतासंख्यात कहिये. मध्यके

नाना भेद जानने. बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातकूं जघन्य-
युक्तासंख्यातकरि एकवार परस्पर गुणनेतैं जो परिमाण
आवै, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानने. यामें एक घ-
टाये उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होय है. मध्य युक्त असंख्यात
बीचके नाना भेद जानने ।

अब इस जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीन राशि करनी.
एक शलाका एक विरलन एक देय. तहां विरलन राशिकूं बखेरि
एक एक जुदा जुदा करना, एक एककै ऊपरि एक एक देय
राशि धरना तिनकूं परस्पर गुणिये जब सर्व गुणकार होय
चुकै तब एक रूप शलाका राशिमेंसूं घटावना. बहुरि जो
राशि भया तिस प्रमाण विरलन देय राशि करना, तहां
विरलनकूं बखेरि एक एककूं जुदा करि एक एक परि देय
राशि देना, तिनकूं परस्पर गुणन करना जो राशि निपजै
तब एक शलाकाराशिमेंसूं फेरि घटावना. बहुरि जो राशि
निपज्या ताकै परिमाण विरलन देय राशि करना । विरलनकूं
बखेरि देयकूं एक एक पर स्यापि परस्पर गुणन करना, ए-
करूप शलाकामेंसूं घटावना. ऐसैं विरलन देय राशिकरि
गुणाकार करता जाना, शलाकामेंसूं घटाता जाना. जब श-
लाका राशि निःशेष हो जाय तब जो किछू परिमाण आया
सो मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तितने तितने
परिमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि फेरि करना ।
तिनकूं पूर्ववत् करतैं शलाका राशि निःशेष होय-जाय, तब ।

जो महाराशि परिमाण आया सो भी मध्य असंख्यातासंख्या-
तका भेद है. बहुरि तिस राशि परिमाणके फेरि शलाका
विरलन देय राशि करना तिनकूं पूर्वोक्त विधानकरि गुण-
नेतैं जो महाराशि भया सो यह भी मध्य असंख्यातासंख्या-
तका भेद भया. अर शलाकात्रयनिष्ठापन एक वार भया.
बहुरि इस राशिमें असंख्यातासंख्यात प्रमाण छह राशि
और मिलावणी । लोकप्रमाण धर्म द्रव्यके प्रदेश, अधर्म द्र-
व्यके प्रदेश, एक जीवके प्रदेश, लोकाकाशके प्रदेश बहुरि
तिस लोकतैं असंख्यातगुणो अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति
जीवनिका परिमाण, बहुरि तिसतैं असंख्यातगुणो सप्रति-
ष्ठित प्रत्येकवनस्पति जीवोंका परिमाण ये छह राशि मि-
लाय पूर्वोक्त प्रकार शलाका विरलनदेयराशिके विधानकरि
शलाकात्रयनिष्ठापन करना, तब जो महाराशि निपज्या सो
भी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. तामें च्यारि राशि
और मिलावने-कल्प काल बीस कोड़ाकोडी सागरके समय
बहुरि स्थितिवंधकूं कारण कषायनिके स्थान, अनुभाग बं-
धकूं कारण कषायनिके स्थान, योगनिके अविभाग प्रति-
च्छेद, ऐसी च्यारि राशि मिलाय अर पूर्वोक्त विधानकरि
शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसैं करतैं जो परिमाण होय
सो जघन्यपरीतानन्तराशि भया. यामैसूं एक रूप घटाये उ-
त्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होय है. बीचिमें मध्यके नाना भेद
हैं. बहुरि जघन्य परीतानन्त राशि विरलनकरि एक एक

यदि एक एक जघन्य परीतानन्त स्थापनकरि परस्पर गुणें जो परिमाण होय सो जघन्ययुक्तानन्त जानना. तामें एक घटाये उत्कृष्ट परीतानन्त है. मध्य परीतानन्तके बीचमें नाना भेद हैं. बहुरि जघन्य युक्तानंतकू जघन्य युक्तानन्तकरि एक-कवार परस्पर गुणो जघन्य अनंतानंत है. यामेंसूं एक घटाये उत्कृष्ट युक्तानंत होय है. मध्य युक्तानन्तके बीचमें नाना भेद हैं. अब उत्कृष्ट अनन्तानंतकूं ल्यावनेका उपाय कहै हैं. तहां जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका विरलन देय. इन तीन राशिवरि अनुक्रमतैं पहलैं कहा तैसैं शलाकात्रयनिष्ठापन करै. तब मध्य अनंतानंतका भेद रूप राशि में निपजै है. ताविषै छह राशि मिलावै सिद्धराशि, निगोदराशि, प्रत्येक वनस्वर्तिसहित निगोदराशि, पुद्गलराशि, कालके समय, आकाशके प्रदेश ये छह राशि मध्य अनन्तानंत के भेदरूप मिलाय शलाकात्रयनिष्ठापन पूर्ववत् विधानकरि करना तब मध्य अनन्तानन्तका भेद रूप राशि निपजै, ताविषै फेरि धर्मद्रव्य अर्धद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय जो महाराशि परिमाण राशि भया. ताकूं फेरि पूर्वोक्त विधानकरि शलाकात्रय निष्ठापन करिये तब जो कोई मध्य अनन्तानंतका भेद रूप राशि भया, ताकूं केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनका समूह परिमाणविषै घटाय फेरि मिलाये तब केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद रूप उत्कृष्ट अनंतानंत परिमाण राशि होय है. बहुरि उपमा

प्रमाण आठ प्रकार करि कहया है. पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, जगतप्रतर, जगतघन. तहां पल्य तीन प्रकार है—व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य, अद्धारपल्य. तहां व्यवहारपल्य तौ रोमनिकी संख्या मात्रही है. बहुरि उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्या गणिये हैं. बहुरि अद्धारपल्यकरि कर्मनिकी स्थिति देवादिककी आयुस्थिति गणिये हैं. अब इनका परिमाण जाननेकूं परिभाषा कहै हैं. तहां अनन्त पुद्गलके परमाणुनिका स्कन्ध तौ एक अवसन्नासन्न नाम है. तातें आठ आठ गुणो क्रमकरि बारह स्थानक जानने. सन्नासन्न, तृदरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभागे-भूमिका बालका अग्रभाग, मध्यम भोगभूमिका, जघन्य भोगभूमिका, कर्मभूमिका, लीख, सरसूं, यव, अंगुल ए बारह हैं. सो ऐसैं अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है. सो याकरि नारकी त्रियेच देव मनुष्यनिके शरीरका प्रमाण वर्णन कीजिये है, अर देवनिके नगर मंदिर वर्णन कीजिये है. बहुरि उत्सेध अंगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल है. यातैं द्वीप समुद्र पर्वत आदिकनिका परिमाण वर्णन है. बहुरि आत्मांगुल जहां जैसा मनुष्यनिका होय तिस परिमाण जानना. बहुरि छह अंगुलका पाद होय, दोय पादका एक विलस्त होय, दोय विलस्तका एक हाथ होय, दोय हाथका एक भीष होय, दोय भीषका एक धनुष होय, दोय हजार धनुषका एक कोश होय, च्यारि कोशका एक योजन होय, सो यहां प्रमाणांगुलकरि निपड्या ऐसा एक योजन प्रमाण

उंडा चौड़ा एक खाड़ा करना, ताकूं उत्तम भोगभूमिविषै उ-
पज्या जो जनमतै लगाय सात दिन ताईका मीठाका बालका
अग्रभाग तिनिकरि भूमि समान अत्यन्त गाढा भरना, तामै
रोम पैतालीस अंकनि परिमाण मावै, तिनकूं एक एक रोम
खंडकं सौ सौ बरस गये काटै. जिते बरस होय सो व्यव-
हार पल्य है. तिन वर्षनिके असंख्यात समय होय हैं. ब-
हुरि तिन रोमके एक एकके असंख्यात कोडि वर्षके समय
होय, तेते तेते खंड कीजिये सो उद्धार पल्यके रोम खंड होय,
तेते समय उद्धार पल्यके हैं ।

बहुरि इन उद्धार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात
वर्षके जेते समय होय तितने खंड कीये अर्द्धापल्यके रोमखण्ड होय
हैं ताके समय भी इतने ही हैं. बहुरि दश कोडाकोडी पल्यका
एक सागर होय है. बहुरि एक प्रमाणांगुल प्रमाण लंबा ए-
कप्रदेश प्रमाण चौड़ा उंचा क्षेत्रकूं सूच्यंगुल कहिये है. याके
प्रदेश अर्द्धापल्यके अर्द्ध छेदनिकं विरलनकरि एक एक अ-
र्द्धापल्य तिनपरि स्थापि परस्पर गुणिये जो परिमाण आवै
तेते याके प्रदेश हैं. बहुरि याका वर्गकूं प्रतरांगुल कहिये.
बहुरि सूच्यंगुलके घनकूं घनांगुल कहिये. एक अंगुल चौड़ा
तेताही लांबा अर उंचा ताकूं घन अंगुल कहिये. बहुरि
सात राजू लांबा एक प्रदेश प्रमाण चौड़ा उंचा क्षेत्रकूं ज-
गतश्रेणी कहिये. याकी उत्पत्ति ऐसै जो अर्द्धापल्यके अर्द्ध
छेदनिका असंख्यातवां भागका प्रमाणकूं विरलनकरि एक
एक परि घनांगुल देय परस्पर गुणै जो राशि निपजै सो

जगतश्रेणी है. बहुरि जगतश्रेणीका वर्ग सो जगतप्रतर कहिये बहुरि जगतश्रेणीका घन सो जगतघन कहिये. सात राजु चौड़ा लांबा ऊंचाकूं जगतघन कहिये. यह लोकके प्रदेशनि का प्रमाण है. सो भी मध्य असंख्यातका भेद है. ऐसैं ए गणित संक्षेप करि कही. बहुरि गणितका कथन विशेषकरि गोम्पटसार त्रिलोकसारतैं जानना. द्रव्यमें तो सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, क्षेत्रमें आकाशके प्रदेश; कालमें समय, भावमें अविभागप्रतिच्छेद, इन चारूहीकूं परस्पर प्रमाण संज्ञा है. सो घाटिसूं घाटि तौ ये हैं अर बाधिसूं बाधि द्रव्यमें तौ महास्कन्ध, क्षेत्रमें आकाश, कालमें तीनू काल, भावमें केवल ज्ञान, ऐसा जानना. बहुरि कालमें एक आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात समय हैं. अर असंख्यात आवलीका मुहूर्त्त है. तीस मुहूर्त्तका दिनराति है. तीस दिन रातिका एक मास है. बारह मासका एक वर्ष है. इत्यादि जानना ।

आगें प्रथम ही लोकाकाशका स्वरूप कहै हैं—

सव्वायासमणंतं तस्स य बहुमज्झिसंठियो लोओ ।
सो केण वि णेय कओ ण य धरिओ हरिहरादीहिं ॥

भाषार्थ—आकाश द्रव्य है ताका क्षेत्र प्रदेश अनन्त है. ताका बहुमध्यदेश कहिये बीचही बीचका क्षेत्र, ताविषैं तिष्ठै ऐसा लोक है. सो काहू करि कीया नाहीं है तथा कोई हरिहरादिकरि धारया, वा राखया नाहीं है. भावार्थ—कई अन्य मतमें कहै हैं जो लोककी रचना ब्रह्मा करै है. नारायण रक्षा

करै है. शिव संहार करै है. तथा काछिवा तथा शेष नाग धारया है. तथा प्रलय होय है, तब सर्वशून्य होय जाय है. ब्रह्मकी सत्ता मात्र रह जाय है. बहुरि ब्रह्मकी सत्तामेंसूक्ष्म-ष्टिकी रचना होय है. इत्यादि अनेक कल्पित कहै हैं. ताका निषेध इस सूत्रतैं जानना. लोक काहू करि कीया नाहीं. काहू करि धारया नाहीं. काहू करि विनसै नाहीं, जैसा है तैसा ही सर्वज्ञने देखा है सो वस्तु स्वरूप है ।

आगें इस लोकविषै कहा है सो कहैं हैं—

अण्णोण्णपवेसेण य दब्बाणं अत्थणं भवे लोओ ।

दब्बाणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुण्ह णिच्चत्तं ११६

भाषार्थ—जीवादिषु द्रव्यनिका परस्पर एक क्षेत्रावगा-
हरूप प्रवेश काहिये मिलापरूप अवस्थान सो लोक है. जे
द्रव्य हैं ते नित्य हैं. याहीतैं लोक भी नित्य है ऐसा जा-
नहु. भाषार्थ—षट्द्रव्यनिका समुदाय सो लोक है. ते द्रव्य
नित्य हैं, तातैं लोक भी नित्य ही है ।

आगें कोई तर्क करै जो नित्य है तो उजै विनसै कौन
है, ताका समाधानका सूत्र कहैं हैं—

परिणामसहावादो पडिसमयं परिणमंति दब्बाणि ।

तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुण्ह परिणामं ॥

भाषार्थ—या लोकमें छह द्रव्य हैं ते परिणाममाब हैं
यातैं समक समय परिणमै हैं तिनके परिणमै लोक भी

परिणाम जानहु. भावार्थ—द्रव्य हैं. ते परिणामी हैं. लोक है सो द्रव्यनिका समुदाय है यातैं द्रव्यनिकै परिणाम है सो लोककै भी परिणाम आया. कोई पूछै परिणाम कहा ? ताका उत्तर—परिणाम नाम पर्यायका है. जो एक अवस्था रूप द्रव्य या सो पलटि दूजी अवस्थारूप होना. जैसे माटी पिंडअवस्थारूप थी सो पलटि करि घट बगया. ऐसे परिणामका स्वरूप जानना. सो लोकका आकार तौ नित्य है. अर द्रव्यनिकी पर्याय पलटै है या अपेक्षा परिणाम कहिये है।

आगे या लोकका आकार तौ नित्य है. ऐसा धारि व्यासादि कहै हैं—

सत्तेक्कु पंच इक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते ।

लोयंते रज्जुओ पुठ्ठावरदो य वित्थारो ॥ ११८ ॥

भावार्थ—लोकका पूर्व पश्चिम दिशाविषै मूल कहिये नीचें तौ सात राजू विस्तार है. बहुरि मध्य कहिये बीचि एक राजूका विस्तार है. बहुरि ऊपरि ब्रह्म स्वर्गके अंत पांच राजूका विस्तार है. बहुरि लोकका अन्तविषै एक राजूका विस्तार है. भावार्थ—लोक नीचले भागविषै पूर्व पश्चिमदिशाविषै सात राजू चौड़ा है. तहांतैं अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोक एक राजू रह्या. पीछैं ऊपरि अनुक्रमतैं बधता २ ब्रह्मस्वर्गताई पांच राजू चौड़ा भया. पीछैं घटतै घटतै अंतमें एक राजू रह्या. ऐसे होतैं डयोढ मृदंग ऊभी धरिये तैसा आकार भया ।

आगें दक्षिण उत्तर विस्तार वा उंचाईकूं कहै हैं—
 दक्षिणउत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ ।
 उड्ढो चउदसरज्जू सत्त वि रज्जूघणो लोओ ॥११९॥

भाषार्थ—लोक है सो दक्षिण उत्तर दिशाकूं सर्व उंचा-
 ई पर्यंत सात राजू विस्तार है. उंचा चौदह राजू है । बहुरि
 सात राजूका घनप्रमाण है. भावार्थ—दक्षिण उत्तरकूं सर्वत्र
 सात राजू चौड़ा है. उंचा चौधै राजू है. ऐसा लोकका घन-
 फल करिये तब तीनसै तियालिम (३४३) राजू होय है.
 समान क्षेत्रखंडकरि एक राजू चौड़ा लांबा उंचा खंड करिये
 ताकूं घनफल कहिये ।

आगें उंचाईके भेद कहै हैं,—
 मेरुस्स हिट्ठभाये सत्त वि रज्जू हवे अहोलोओ ।
 उट्ठमि उट्ठलोओ मेरुसमो मज्झिमो लोओ ॥१२०॥

भाषार्थ—मेरुके नीचे भागविषै सात राजू अधोलोक है.
 ऊपरि सात राजू ऊर्ध्वलोक है. मेरुसमान मध्य लोक है.
 भावार्थ—मेरुके नीचें सात राजू अधोलोक. ऊपर सात राजू
 ऊर्ध्व लोक, बीचमें मेरुसमान लाख योजनका मध्यलोक है.
 ऐसैं तीन लोकका विभाग जानना ।

आगें लोक शब्दका अर्थ कहै हैं,—
 दंसंति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णदे लोओ ।
 तस्स सिहरम्मि सिद्धा अंतविहीणा विरायंति ॥१२१॥

भाषार्थ—जहाँ जीव आदिक पदार्थ देखिये हैं सो लोक कहिये । ताके शिखर ऊपरि अनन्ते सिद्ध विराजै हैं । भावार्थ—‘लोक’ दर्शने नामा व्याकरणमें धातु है । ताके आश्रयार्थविषै अकार प्रत्ययतैं लोक शब्द निपजै है । तातैं जामें जीवादिक द्रव्य देखिये । ताकूं लोक कहिये । बहुरि ताके ऊपरि अन्तविषै कर्म रहित शुद्धजीव अनन्त गुणानि करि सहित अविनाशी अनन्त विराजै हैं ।

आगें या लोकविषै जीव आदि छह द्रव्य हैं तिनका वर्णन करै हैं, तहां प्रथम ही जीव द्रव्यकूं कहै हैं ।

एइंदियेहिं भरिदो पंचपयारेहिं सव्वदो लोओ ।

तसनाडीए वि तसा ण वाहिरा होति सव्वत्थ १२२

भाषार्थ—यह लोक पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ऐसैं पंचप्रकार कायके धारक जे एकेंद्रिय जीव तिनकरि सर्वत्र भरया है । बहुरि त्रस जीव त्रस नाडीविषै ही हैं । वाहिर नाहीं हैं । भावार्थ—जीव द्रव्य उपयोग लक्षणवाला समान परिणामकी अपेक्षा सामान्य करि एक है । तथापि वस्तु भिन्नप्रदेशकरि अपने २ स्वरूपकूं लीये न्यारे न्यारे अनन्ते हैं । तिनमें जे एकेंद्रिय हैं । ते तौ सर्व लोकमें है बहुरि बेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेंद्रिय ऐसे त्रस हैं ते त्रस नाडी विषैही हैं ।

आगें वादर सूक्ष्मादि भेद कहै हैं,—

पुण्णा वि अपुण्णा वि य थूला जीवा हवन्ति साहारा

छविहा सुहमा जीवा लोयायासे वि सव्वत्थ १२३॥

भाषार्थ—जे जीव आधारसहित हैं, ते तौ स्थूल कहिये वादर हैं. ते पट्याप्त हैं. बहुरि अपर्याप्त भी हैं । बहुरि जे लोकाकाशविषै सर्वत्र अन्य आधाररहित हैं ते जीव सूक्ष्म हैं ते छह प्रकार हैं ।

आगें वादर सूक्ष्म कून् कून् हैं सो कहै हैं,—

पुढवीजलग्गिवाऊ चत्तारि वि होति वायरा सुहमा ।

साहारणपत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा ॥ १२४॥

भाषार्थ—पृथ्वी जल अग्नि वायु ये च्यारि तौ वादर भी हैं तथा सूक्ष्म भी हैं बहुरि पांचई वनस्पति है सो प्रत्येक साधारण भेद करि दोय प्रकार है ।

आगें साधारण प्रत्येककैं सूक्ष्मपणाकूं कहै हैं,—

साहारणा वि दुविहा अणाइकाला य साइकाला य ।

ते वि य वादरसुहमा सेसा पुण वायरा सव्वे १२५॥

भाषार्थ—साधारण जीव दोय प्रकार हैं. अनादिकाला कहिये नित्य निगोद सादिकाला कहिये इतर निगोद ते दोऊ हू वादर भी हैं सूक्ष्म भी हैं बहुरि शेष कहिये प्रत्येक वनस्पती वा व्रस ते सर्व वादर ही हैं । भावार्थ—पूर्वै कह्या जो सूक्ष्म छह प्रकार हैं ते पृथ्वी जल तेज वायु तौ पहली गाथा में कहे. बहुरि नित्य निगोद इतर निगोद ए दोय ऐसैं छह

प्रकार तौ सूक्ष्म जानने. बहुरि छह प्रकार तौ ए रहे अर
अवशेष ते सर्व वादर जानने ।

आगे साधारणका स्वरूप कहै हैं,—

साधारणाणि जेसिं आहारस्सासकायआऊणि ।

ते साहारणजीवा णंताणंतप्पमाणाणं ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—जिन अनन्तानन्त प्रमाण जीवनकै आहार उ-
च्छ्वास काय आयु साधारण कहिये समान हैं. ते साधारण
जीव हैं । उक्तं च गोमट्टसारे—

“जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं
चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं ”

भाषार्थ—जहां एक साधारण जीव निगोदिया उपजै तहां
ताकी साथ ही अनन्तानन्त उपजै अर एक निगोद जीव
मरै ताके साथ ही अनन्तानन्तसमान आयुवाला मरै है. भा-
वार्थ—एक जीव आहार करै तेई अनन्तानन्त जीवनि का आ-
हार, एक जीव स्वासोस्वास ले सो ही अनन्तानन्त जीवनि-
का स्वासोस्वास, एक जीवका शरीर सोई अनन्तानन्तका
शरीर, एक जीवका आयु सोही अनन्तानन्तका आयु ऐसैं
समान है ताँ साधारण नाम जानना ।

आगे सूक्ष्म वादरका स्वरूप कहै हैं,—

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवीतोएहिं अग्निगवाएहिं ।

ते जाण सुहुमकाया इयरा पुण थूलकाया य १२७

भाषार्थ—जिन जीवनिक्का पृथ्वी जल अग्नि पवन इन करि रुकना न होय ते जीव सूक्ष्म जानहु. बहुरि जे इन करि रुकैं ते वादर जानहु ।

आगें प्रत्येककूं वा त्रसकूं कहै हैं,—

पंचेया वि य दुविहा णिगोदसाहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा वि य वितिचउरक्खा तहेव पंचक्खा

भाषार्थ—प्रत्येक वनस्पती भी दोय प्रकार है. ते निगोदसहित हैं तैसें ही निगोदरहित हैं. बहुरि त्रस भी दोय प्रकार हैं. बेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ऐसें तो विकलत्रय बहुरि तैसें ही पंचेन्द्रिय हैं. भावार्थ—जिस वनस्पतीके आश्रय निगोद पाइये सो तौ साधारण है, याकूं सप्रतिष्ठित भी कहिये. बहुरि जिसकै आश्रय निगोद नाहीं ताकूं प्रत्येक ही कहिये. याहीको अप्रतिष्ठित भी कहिये है. बहुरि बेन्द्रिय आदिककूं त्रस कहिये है. *

* मूलगगपोरबीजा कंदा तह खंदबीज बोजरुहा ।

सम्मुच्छिन्ना य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १ ॥

जो वनस्पति मूल अग्र पर्व कंद स्कंध बीजसे पैदा होती हैं तथा जो सम्मूर्च्छन हैं वे वनस्पतियां सप्रतिष्ठित हैं तथा अप्रतिष्ठित भी हैं । भावार्थ—बहुत सी वनस्पतियां मूलसे पैदा होती हैं जैसे अदरक, इल्दी आदि । कई वनस्पति अग्र भागसे उत्पन्न होती हैं जैसे गुलाब ।

आगे पंचेन्द्रियनिके भेद कहैं हैं ।

पंचक्खा विय तिविहा जलथलआयासगामिणो तिरिया
पत्तेयं ते दुविहा मणेण जुत्ता अजुत्ता य ॥ १२९ ॥

किसी वनस्पतिकी उत्पत्ति पर्व (पंगोली) से होती है जैसे ईख बेंत आदि । कोई वनस्पति कन्दसे उपजती हैं जैसे सूरण आदि । कई वनस्पति स्कन्धसे होती हैं जैसे ढाक । बहुत सी वनस्पति बीज से होती हैं जैसे चना गेहूं आदि । कई वनस्पति पृथ्वी जल आदिके सम्बन्धसे पैदा हो जाती हैं वे सम्मूर्च्छन हैं जैसे घास आदि । ये सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित दोनों प्रकारकी हैं ॥ १ ॥

गूढसिरंसंधिपब्बं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं ।

साहारणं सरोरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ २ ॥

जिन वनस्पतियोंके शिरा (तोरई आदि में) संधि (खापोंके चिन्ह खरबूजे आदि में) पर्व (पंगोली गन्ने आदि में) प्रगट न हों और जिनमें तन्तु पैदा न हुआ हो (मिंडी आदिमें) तथा जो काटने पर फिर बढ़ जाय वे सप्रतिष्ठित वनस्पति हैं इनसे उलटी अप्रतिष्ठित समझनी चाहिये ॥ २ ॥

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबोजे ।

समभंगे सदि णंता असमे सदि होति पत्तेया ॥ ३ ॥

जिन वनस्पतियोंका मूल (हल्दी, अदरक आदि)

भाषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यच हैं ते जलचर थलचर नभ-
चर ऐसैं तीन प्रकार हैं. बहुरि प्रत्येक मनकरि युक्त सैनी
भी हैं तथा मनरहित असैनी भी हैं ।

बहुरि इनके भेद कहै हैं,—

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भजजम्मा तहेव सम्मत्था
भोगभुवा गब्भभुवा थलयरणहगामिणो सण्णी १३०

भाषार्थ—ते छह प्रकार कहे जे तिर्यच ते गर्भज भी
हैं बहुरि सम्मूर्च्छन भी हैं बहुरि इनविषे जे भोगभूमिके
तिर्यच हैं ते थलचर नभचर ही हैं. जलचर नाहीं हैं बहुरि
ते सैनी ही हैं असैनी नाही हैं ।

आगे अठथाणवै जीव समासनिक्कं तथा तिर्यचके पि-
च्यासी भेदनिक्कं कहै हैं—

कन्द (मुरण आदि) छाल, नई कोंपल, टहनी, फूल, फल, तथा
बीज तोडने पर बराबर टूट जाय वे सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं
तथा जो बराबर न टूटें वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं ॥ ३ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वा वि बहुलतरी ।

छल्ली सा णंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ४ ॥

जिन वनस्पतियोंके कन्द, मूल, टहनी, स्कंधकी छाल
मोटी है उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येक (अनंत जीवोंका स्थान)
जानना चाहिये और जिनकी छाल पतली हो उन्हें अप्रति-
ष्ठित प्रत्येक मानना चाहिये ॥ ४ ॥

अट्ट वि गब्भज दुविहा तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा
इदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होंति तिरियाणं १३१

भावार्थ—सर्व ही तिर्यचनिके पिच्यासी भेद हैं. तहां गर्भजके आठ ते तौ पर्याप्त अपर्याप्तकरि सोलह भये. बहु-
रि सम्मूर्च्छनके तेईस भेद, ते पर्याप्त अपर्याप्त लब्धपर्या-
प्तकरि गुणहत्तरि भये ऐसैं पिच्यासी हैं. भावार्थ—पुर्वें कहे
जे कर्मभूमिके गर्भज जलचर थलचर नभचर ते सैनी असैनी
करि छह भेद, बहुरि भोगभूमिके थलचर नभचर सैनी ये
आठही पर्याप्त अपर्याप्त भेदकरि सोलह, बहुरि सम्मूर्च्छ-
नके पृथ्वी अप् तेज वायु नित्य निगोदके सूक्ष्म बादरकरि
बारह बहुरि वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसैं चौदह तौ
एकेन्द्रिय भेद बहुरि विकलत्रय तीन, बहुरि पंचेन्द्रिय कर्म-
भूमिके जलचर थलचर नभचर सैनी असैनी करि छह भेद,
ऐसैं सब मिलि तेईस. ताकै पर्याप्त अपर्याप्त लब्धपर्याप्त-
करि गुणहत्तरि ऐसैं पच्यासी होय हैं ॥ १३१ ॥

आगें मनुष्यनिके भेद कहै हैं—

अज्जव मिलेच्छखंडे भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु
मणुआ हवन्ति दुविहा णिव्वित्तिअपुण्णग्गा पुण्णा ॥

भावार्थ—मनुष्य आर्यखंडविषै श्लेक्षखंड विषैं तथा
भोगभूमिविषैं तथा कुभोगभूमिविषैं हैं ते च्यारि ही पर्याप्त
निवृत्ति अपर्याप्तकरि आठ भेद भये ॥ १३२ ॥

सम्मुच्छणा मणुस्सा अज्जवखंडेसु होंति णियमेण
ते पुण लद्धिअपुण्णा णारय देवा वि ते दुविहा १३३

भाषार्थ—सम्मुच्छन्न मनुष्य आर्यखंडविषै ही नियम करि होय हैं. ते लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं. बहुरि नारक तथा देव ते पर्याप्त तथा निवृत्त्यपर्याप्तके भेद करि च्यारि भेद हैं. ऐसैं तिर्यचके भेद पिच्यासी, मनुष्यके नव नारक देवके च्यारि, सर्व मिलि अठ्यास्रवैं भेद भये. बहुतनिको समानता करि भेले करि कहिये संक्षेप करि संग्रह करि कहिये ताकूं समास कहिये है. सो यहां बहुत जीवनिका संक्षेप करि कहना सो जीवसमास जानना. ऐसैं जीव समास कहे ।

आगें पर्याप्तिका वर्णन करै हैं,—

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्सासहासमणसाण ।

परिणइ वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥ १३४ ॥

भाषार्थ—जो आहार शरीर इन्द्रिय स्वासोस्वास भाषा मन इनका परिणमनकी प्रवृत्तिविषैं सामर्थ्य सो छह प्रकार है. भावार्थ—आत्मकै यथायोग्य कर्मज्ञा उदय होतैं आहारदिक ग्रहणकी शक्तिका होना सो शक्तिरूपपर्याप्ति कहिये सो छह प्रकार है ।

आगें शक्तिका कार्य कहै हैं ।

तस्सेव कारणाणं पुग्गलखंधाण जा हु णिप्पत्ति ।

सा पज्जत्ती भण्णदि छब्भेया जिणवरिंदेहिं ॥ १३५ ॥

भाषार्थ—तिस शक्ति प्रवृत्तिकी पूर्णताकूं कारण जे पु-
द्गलके स्कंध तिनकी प्रगटपण निष्पत्ति कहिये पूर्णता होना
ताकूं पर्याप्ति ऐसा जिनेन्द्रदेवने कह्या है।

आगे पर्याप्त निवृत्त्यपर्याप्तके कालकूं कहै हैं,—
पञ्जात्तिं गिह्मतो मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि ।

ता णिव्वतिअपुण्णो मणुपुण्णो भण्णदे पुण्णो ॥१३६॥

भाषार्थ—यह जीव पर्याप्तिकू ग्रहण करता संता जेतैं म-
नःपर्याप्तिकूं पूर्ण न करै तेतैं निवृत्त्यपर्याप्त कहिये. बहुरि जब
मनःपर्याप्ति पूर्ण होय तब पर्याप्त कहिये, भावार्थ—इहां सैनी
पंचेन्द्रिय जीवकी अपेक्षा मनमें धारि ऐसैं कथन किया है.
अन्य ग्रन्थनिमें जेतैं शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होय तेतैं निवृत्त्य-
पर्याप्त है. ऐसैं कथन सर्व जीवनिका कह्या है।

आगे लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहै हैं,—

उत्सासट्टारसमे भागे जो मरदि ण य समणोदि ।

एका वि य पज्जत्ती लोद्धिअपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

भाषार्थ—जो जीव स्वासके अट्टारवैं भागमें मरै एक भी
पर्याप्ति पूर्ण न करै सो जीव लब्ध्यपर्याप्तिक कहिये ।

१ पज्जतस्स य उदये णिय णिय पज्जति णिट्ठिहो होदि ।

जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णो ताव ॥ १ ॥

तिण्णसया छत्तोसा छावट्ठोसहस्सगाणि मरणानि ।

अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दमवा ॥ २ ॥

सीदोसट्टातालं वियले चउवास हांति पंचक्खे ।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनि कै पर्याप्तिनि की संख्या कहै हैं,
 लद्धिअपुण्णो पुण्णं पज्जत्ती एयक्खवियलसणीणं ।
 चट्ठ पण छक्कं कमसो पज्जत्तीए वियाणेह ॥ १३८ ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै चारि विकलत्रयकै पांच, सैनी पंचेन्द्रियकै छह ऐसै क्रमतै पर्याप्ति जाणूं बहुरि लब्धपर्याप्तिक है सो अपर्याप्तिक है. याकै पर्याप्ति नाहीं. भावार्थ—एकेन्द्रियादिककै क्रमतै पर्याप्ति कहे. इहां असैनीका नाम लाया नहीं तहां तो सैनीकै छह असैनीकै पांच जानने. बहुरि निर्वृत्यपर्याप्त ग्रहण कीय ही हैं पूर्ण हासी ही तातैं जो संख्या बही है सो ही है. बहुरि लब्धपर्याप्त यद्यपि ग्रहण कीया है तथापि पूर्ण होय शक्या नाहीं, तां ताकूं अपूर्ण ही कहया ऐसा सूचै है. ऐसै पर्याप्तिका वर्णन कीया ।

आगें प्राणनिका वर्णन करै हैं तहां प्रथमही प्राणनिका स्वरूप वा संख्या बहै हैं—

मणवयणकायइंदियणिस्सासुस्सासआउरुदयाणं ।
 जोसिं जोए जम्भदि मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा

छावट्ठ च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयवळे ॥ ३ ॥

पुट्ठदिदगाणिमारुदसाहारणथूलसुहुम ॥ ४ ॥

पदेसु अपुण्णेषु य एवववके वारुणं छक्कं ॥ ४ ॥

पर्याप्तिनामा नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति बनाता है । जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भाषार्थ— जो मन वचन वाय इन्द्रिय स्वासोस्वास आयु है तिनके संयोगतैं तौ उपजै जीवै, बहुरि इनिके वि-
योगतैं मरै ते प्राण कहिये. ते दश हैं. भावार्थ—जीव ऐसा

उसको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं । भावार्थ—जो पर्याप्ति क-
र्मका उदय होनेसे लब्धि (शक्ति) की अपेक्षासे पर्याप्ति है
किंतु निर्वृत्ति (शरीरपर्याप्ति बनने) की अपेक्षा पूर्ण नहीं
है वह निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहलाता है ॥ १ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक जीवके एक अंतर्मुहूर्तमें ६६३३६ क्षुद्र-
जन्म होते हैं और उतने ही क्षुद्रमरण होते हैं ॥ २ ॥

अंतर्मुहूर्तकालमें द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ८०, त्रीन्द्रिय
लब्ध्यपर्याप्तक ६०, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ४०, और पंचे-
न्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक २४ मरण करते हैं तथा जन्म लेते हैं ।
एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव उतने ही समयमें ६६१३२ जन्म
मरण करते हैं (इसप्रकार एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय तथा पंचेंद्रियके
समस्त भवोंको मिलानेसे ६६३३६ क्षुद्रभव होते हैं) ॥ ३ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चारों ही बादर और
सूक्ष्म इस प्रकार आठ भेद हुए तथा बादरसाधारण, सूक्ष्म-
साधारण और प्रत्येक इस प्रकार तीन भेद वनस्पतीके हुये ।
इन ग्यारह प्रकारके एकेंद्रिय जीवोंमें हर एक जीवके एक अंत-
र्मुहूर्तमें ६०१२ जन्म मरण होते हैं इसप्रकार सबोंका योग
करनेसे एकेंद्रिय जीवोंके ६६१३२ भव होते हैं ॥ ४ ॥

प्राणधारण अर्थ है सो व्यवहार नयकरि दश प्राण हैं. तिनमें यथायोग्य प्राणसहित जीवै ताकूं जीवसंज्ञा है ।

आगे एकेन्द्रियादि जीवनिकै प्राणनिकी संख्या कहै हैं,
एयक्खे चदुपाणा वितिचउरिंदिय असणिसण्णीणं ।
छह सत्त अट्ठ णवयं दह पुण्णाणं कमेपाणा ॥ १४० ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै चारि प्राण हैं वेन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रियनिकै, पर्याप्तनिकै अनुक्रमतैं छह सात आठ नव दश प्राण हैं ए प्राण पर्याप्त अवस्थाविषै कहे ॥ १४० ॥

आगे इनिही जीवनिकै अपर्याप्त अवस्थाविषै कहै हैं—
दुविहाणमपुण्णाणं इगिवितिचउरक्ख अंतिमदुगाणं
तिय चउ पण छह सत्त य कमेण पाणा मुणेयव्वा

भाषार्थ—दोय प्रकारके अपर्याप्त जे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी तथा सैनी पंचेन्द्रियनिके तीन चारि पांच छह सात ऐसैं अनुक्रमतैं प्राण जानने. भावार्थ—निर्वृत्त्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त एकेन्द्रियके तीन, वेइन्द्रियके चारि तेइन्द्रियके पांच, चतुरिन्द्रियके छह, असैनी सैनी पंचेन्द्रियके सात ऐसैं प्राण जानने ।

आगे विकलत्रय जीवनिका ठिकाणा कहैं हैं—

वितिचउरक्खा जीवा हवन्ति णियमेण कम्मभूमीसु ।

चरमे दीवे अद्धे चरमसमुद्दे वि सव्वेसु ॥ १४२ ॥

भाषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जे विकलत्रय कहावै ते जीव नियमकरि कर्मभूमिविषे ही होय हैं तथा अंतका आधा द्वीप तथा अंतका सारा समुद्रविषे होय हैं. भोगभूमिविषे न होय हैं. भावार्थ—पंच भरत पंच ऐरावत पंच विदेह ए कर्मभूमिके क्षेत्र है तथा अंतका स्वयंप्रभ द्वीपके बीचि स्वयंप्रभ पर्वत है तातैं परै आधा द्वीप तथा अंतका स्वयंभूरमण सारा समुद्र एती जायगां विकलत्रय हैं और जायगा नहीं ॥ १४२ ॥

आगे अढाई द्वीपतैं बाह्य तिर्यच हैं तिनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत सारिखी है ऐसैं कहै हैं—

माणुसखित्तस्स बहिं चरमे दीवस्स अद्धयं जाव ।

सव्वत्थे वि तिरिच्छा हिमवदातिरिण्हिं सारित्था ॥

भाषार्थ—मनुष्य क्षेत्रतैं बारै मानुषोत्तर पर्वततैं परैं अंतका द्वीप जो स्वयंप्रभ ताका आधाके उरैं बीचिके सर्व द्वीप समुद्रके तिर्यच हैं ते हैमवत क्षेत्रके तिर्यचनि सारिखे हैं.

भावार्थ—हैमवतक्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि है. सो मानुषोत्तर पर्वततैं परैं असंख्यात द्वीप समुद्र आधा स्वयंप्रभ नामा अंतका द्वीपताईं समस्तमें जघन्य भोगभूमिकी रचना है वहांके तिर्यचनिकी आयु काय हैमवत क्षेत्रके तिर्यचनिसारिखी है ।

आगे जलचर जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

लवणोए कालोए अंतिमजलहिम्मि जलयरा संति ।
 सेससमुद्देषु पुणो ण जलयरा संति णियमेण ॥ १४४ ॥

भाषार्थ—लवणोद समुद्रविषै बहुरि कालोद समुद्रविषै
 तथा अंतका स्वयंभूरमण समुद्रविषै जलचर जीव हैं, बहुरि
 अवशेष बीचिके समुद्रनिविषै नियमकरि जलचर जीव नहीं हैं ।

आगे देवनिके ठिकाणो कहै हैं, तहां प्रथम भवनवासी
 व्यंतरनिके कहै हैं—

खरभायपंकभाए भावणदेवाण होंति भवणाणि ।

वितरदेवाण तहा दुल्लं पि य तिरियलोए वि ॥ १४५ ॥

भाषार्थ—खरभाग पंकभागविषै भवनवासीनिके भवन
 हैं तथा व्यन्तर देवनिके निवास हैं, बहुरि इन दोउनिके
 तिर्यग्लोकविषै भी निवास हैं, भावार्थ—पहली पृथ्वी रत्न-
 प्रभा एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटी, ताके तीन
 भाग तामें खरभाग सोलह हजार योजनका, ताविषै असुर-
 कुमार विना नवकुमार भवनवासीनिके भवन हैं, तथा राजसकुल
 विना सात कुल व्यंतरनिके निवास हैं, बहुरि दूसरा पंक-
 भाग चौरासी हजार योजनका तामें असुरकुमार भवनवा-
 सी तथा राक्षसकुल व्यंतर वसै हैं, बहुरि तिर्यग्लोक जो
 मध्यलोक असंख्याते द्वीप समुद्र तिनिमें भवनवासीनिके भी
 भवन हैं, बहुरि व्यन्तरनिके भी निवास हैं ।

आगे ज्योतिषी तथा कल्पवासी तथा नारकीनिकी व-
 सती कहै हैं—

जोइसियाण विमाणा रज्जूमित्ते वि तिरियलोए वि ।
कप्पसुरा उड्ढह्मि य अहलोए होंति णेरइया ॥१४६॥

भाषार्थ—ज्योतिषी देवनिके विमान एक राजू प्रमाण तिर्यग्लोकविषै असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, तिनके ऊपरि तिष्ठै हैं. बहुरि कल्पवासी ऊर्ध्वलोकविषै हैं. बहुरि नारकी अधोलोकविषै हैं ।

आगें जीवनिकी संख्या कहै हैं, तहां तेजवातकायके जीवनिकी संख्या कहै हैं—

वादरपज्जत्तिजुदा घणआवलिया असंखभागो दु ।
किंचूणलोयमित्ता तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥ १४७ ॥

भाषार्थ—अग्निकाय वातकायके वादरपर्याप्तसहित जीव हैं ते घन आबलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ घाटि लोकके प्रदेशप्रमाण यथा अनुक्रम जानने. भाषार्थ—अग्निकायके घनआबलीके असंख्यातवें भाग, वातकायके कुछ एक घाटि लोकप्रदेशप्रमाण हैं ।

आगें पृथ्वी आदिकी संख्या कहै हैं—

पुढवीतोयसरीरा पत्तेया वि य पइट्टिया इयरा ।

होंति असंखा सेढी पुण्णापुण्णा य तह य तसा १४८

भाषार्थ—पृथ्वीकायिक अप्कायिक प्रत्येकवनस्पतिकायिक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ये सारे पर्याप्त अंश पर्याप्त जीव हैं ते जुदे जुदे असंख्यात जगत्त्रेणीप्रमाण हैं ।

वादरलद्धिअपुण्णा असंखलोया हवन्ति पत्तेया ।

तह य अपुण्णा सुहुमा पुण्णा वि य संखगुणगुणिया

भाषार्थ—प्रत्येक वनस्पति तथा वादर लब्धपर्याप्तक जीव हैं ते असंख्यात लोकप्रमाण हैं. ऐसैं ही सूक्ष्मअपर्याप्तक असंख्यात लोकप्रमाण हैं बहुरि सूक्ष्मपर्याप्तक जीव हैं ते संख्यातगुणो हैं ।

सिद्धा संति अणंता सिद्धाहिंतो अणंतगुणगुणिया ।

होति णिगोदा जीवा भाग अणंता अभव्वा य १५०

भाषार्थ—सिद्धजीव अनन्ते हैं बहुरि सिद्धनितैं अनन्त गुणो निगोद जीव हैं बहुरि सिद्धनिके अनन्तवे भाग अभव्य जीव हैं ।

सम्मच्छिया हु मणुया सेटियसंखिज्ज भागमित्ता हु
गढभजमणुया सव्वे संखिज्जा होति.णियमेण १५१

भाषार्थ—सम्मूर्छन मनुष्य हैं ते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं बहुरि गर्भज मनुष्य हैं ते नियमकरि संख्यात ही हैं ।

आगें सान्तर निरन्तरकूं कहै हैं—

देवा वि णारया वि य लद्धियपुण्णा हु संतरा होति
सम्मच्छिया वि मणुया सेसा सव्वे णिरंतरया ॥१५२॥

भाषार्थ—देव तथा नारकी बहुरि लब्धपर्याप्तक बहुरि सम्मू-

छैन मनुष्य एते तौ सान्तर कहिये अन्तरसहित हैं. अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं. भावार्थ—पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेते बीचमें अन्तर रहै ताकूं सांतर कहिये सो इहां नाना जीव अपेक्षा अन्तर कहा है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्धपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमें न होय सो तौ अन्तर कहिये. बहुरि अंतर न पढ़ै सो निरन्तर कहिये. सो वैक्रियकमिश्रकाययोगी जे देव नारकी तिनिका तौ बारह मुहूर्त्तका कहा है. कोई ही न उपजै तो बारह मुहूर्त्त ताई न उपजै. बहुरि सम्मूछन मनुष्य कोई ही न होय तौ पल्यके असंख्यातवें भाग काल-ताई न होय. ऐसैं अन्य ग्रन्थनिमें कहा है अवशेष सर्व जीव निरन्तर उपजै हैं ।

आगें जीवनिंकूं संख्याकरि अल्प बहुत कहै हैं—
मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया ।
सव्वे हवन्ति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो ॥ १५३ ॥

भाषार्थ—मनुष्यनितैं नारकी असंख्यात गुणो हैं. नारकीनितैं सर्व देव असंख्यात गुणो हैं, देवनितैं प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणो हैं ।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा ।
वेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संखाए

भाषार्थ—पंचेन्द्रिय चौहन्द्रिय तेइन्द्रिय वेइन्द्रिय ये लब्ध-

पर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं, किछू अधिककूं
विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतैं बधते २ हैं ।

चउरक्खा पंचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा ।

एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव ॥ १५५ ॥

भाषार्थ—चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसैं ही तेइन्द्रिय
ये पर्याप्तिसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु ।

परिवाज्जिय सुहुमाणं सेसातिरिक्खाण पुण्णदेहाणं ।

इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णणं ॥ १५६ ॥

भाषार्थ—सूक्ष्म जीवनिकूं छोडि अवशेष पर्याप्तिर्यच
हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त हैं, बहुरि बहुभाग असंख्याते
अपर्याप्त हैं, भावार्थ—वादर जीवनिविषैं पर्याप्त थोरे हैं, अ-
पर्याप्त बहुत हैं ।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण ।

संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाणं ॥ १५७ ॥

भाषार्थ—सूक्ष्मपर्याप्त जीव संख्यात भाग हैं इनिमें अप-
र्याप्तक एक भाग हैं, भावार्थ—सूक्ष्म जीवनिमें पर्याप्त बहुत हैं
अपर्याप्त थोरे हैं ।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला दु आणदं जाव ।

तत्तो असंखगुणिदा सोहम्मं जाव पडिपडलं ॥ १५८ ॥

भाषार्थ—देव हैं ते अंतिम पटल जो अनुत्तर विमान

तातैं ले अर नीचै आनत स्वर्गका पटलपर्यंत संख्यातगुणो हैं।
 ताणीछे नीचै सौधर्मपर्यंत असंख्यातगुणो पटलपटलप्रति हैं ।
 सत्तमणारयहितो असंखगुणिदा हवन्ति णेरइया ।

जावय पढमं णरयं बहुदुक्खा होंति हेइट्ठा ॥ १५९ ॥

भाषार्थ—सातवां नरकतैं ले ऊपरि पहला नरकताई जीव असं-
 ख्यात २ गुणो हैं. बहुरि प्रथम नरकतैं ले नीचै २ बहुत दुःख हैं ।

कम्पसुरा भावणया वितरदेवा तहेव जोइसिया ।

बे होंति असंखगुणा संखगुणा होंति जोइसिया ॥

भाषार्थ—कल्पवासी देवानेतैं मवनवासी देव व्यंतरदेव
 ए दोय राशि ओ असंख्यात गुणी हैं । बहुरि ज्योतिषी देव
 व्यंतरनितैं संख्यातगुणो हैं ॥ १६० ॥

आगै एकेंद्रियादिक जीवनिकी आयु कहै हैं—

पत्तेयाणं आऊ वाससहस्साणि दह हवे परमं ।

अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं ॥ १६१ ॥

भाषार्थ— प्रत्येक वनस्पतिकी उत्कृष्ट आयु दश हजार
 वर्षकी है. बहुरि साधारणनित्य, इतरनिगोद सूक्ष्म वादर
 तथा सर्व ही सूक्ष्म पृथ्वी अप तेज वातकायिक जीवनिकी उ-
 त्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ १६१ ॥

आगै वादर जीवनिकी आयु कहै हैं,—

बावीस सत्तसहसा पुढवीतोयाण आउसं होदि ।

अग्गीणं तिण्णि दिणा तिण्णि सहस्साणि वाऊणं १६२

भाषार्थ—पृथ्वीकायिक जीवनि की उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष की है. अप्कायिक जीवनि की उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष की है. अग्नि कायिक जीवनि की उत्कृष्ट आयु तीन दिन की है. वायु कायिक जीवनि की उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष की है ॥ १६२ ॥

आगें बेंद्रिय आदिक की आयु कहै हैं,—

वारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे ।
चउरक्खे छम्मासा पंचक्खे तिण्णि पल्लाणि ॥ १६३ ॥

भाषार्थ—वेइन्द्रिय जीवनि की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष की है. तेइन्द्रिय जीवनि की उत्कृष्ट आयु गुणचास दिन की है. चौइन्द्रिय जीवनि की उत्कृष्ट आयु छह महीना की है. पंचेन्द्रिय जीवनि की उत्कृष्ट आयु भोगभूमि की अपेक्षा तीन पल्य की है ॥

आगें सर्व ही तिर्यच अर मनुष्यनि की जघन्य आयु कहै हैं—
सव्वजहणं आऊ लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।

मज्झिमहीणमुहुत्तं पज्जत्तिजुदाण णिक्किट्ठं ॥ १६४ ॥

भाषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनि की जघन्य आयु मध्यमहीनमुहूर्त्त है. सो यह लुद्रभवमात्र जाननी. एक उस्कासके अठारहवें भाग मात्र है. बहुरि जिनकै लब्ध्यपर्याप्ति होय, ऐसे कर्मभूमिके तिर्यच मनुष्य तिन सर्व ही पर्याप्ति जीवनि की जघन्य आयु भी मध्यहीनमुहूर्त्त है, सो यह पहले-तैं बड़ा मध्यअन्तमुहूर्त्त है ।

अब देवनारकीनिकी आयु कहै हैं,—

देवाण णारयाणं सायरसंखा हवंति तेतीसा ।

उक्किट्ठं च जहण्णं वासाणं दस सहस्साणि ॥१६५॥

भाषार्थ—देवनिकी तथा नारकी जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है. बहुरि जघन्य आयु दस हजार वर्षकी है. भावार्थ—यह सामान्य देवनिकी अपेक्षा कही है विशेष त्रै-लोक्यसार आदि ग्रंथनितैं जाननी ॥ १६५ ॥

आगें एकेन्द्रिय आदि जीवनिकी शरीरकी अवगाइना उत्कृष्ट जघन्य दश गाथानिमैं कहै हैं,—

अंगुलअसंखभागो एयक्खचउक्कदेहपरिमाणं ।

जोयणसहस्समहियं पउमं उक्कस्सयं जाण ॥१६६॥

भाषार्थ—एकेन्द्रिय चतुष्क कहिये पृथ्वी अप तेज वायु कायके जीवनिकी अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. इहां सूक्ष्म तथा वादर पर्याप्तक अपर्याप्तकका शरीर छोटा बड़ा है. तोऊ घनांगुलके असंख्यातवें भाग ही सामान्यकरि कहा. विशेष गोम्पटसारतैं जानना. बहुरि अंगुल उत्सेधअंगुल आठ यव प्रमाण लेणी, प्रमाणांगुल न लेणी, बहुरि प्रत्येक वनस्पती कायविषैं उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है ताकी अवगाहना किछू अधिक हजार योजन है ॥ १६६ ॥

बायसजोयण संखो कोसतियं गुब्भिया समुहिट्ठा ।

अमरो जोयणमेगं सहस्स सम्मुच्छिदो मच्छो ॥१६७॥

भाषार्थ—वेइन्द्रियविषै शंख बडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन लांबी है. तेइन्द्रियविषै गोमिका कहिये कानखिजूरा बडा है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश लांबी है. बहुरि चौइन्द्रियविषै बडा भ्रपर है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन लांबी है. बहुरि पंचेन्द्रियविषै बडा मच्छ है ताकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लांबी है. ए जीव अंतका स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्रमें जानने ॥ १६७ ॥

अब नारकीनकी उत्कृष्ट अवगाहना कहै हैं,—

पंचसयाधणुछेहा सत्तमणरए हवन्ति पारइया ।

तत्तो उस्सेहेण य अद्धच्चा होंति उवरुवरिं ॥१६८॥

भाषार्थ—सातवें नरकविषै नारकी जीवनिका देह पांचसै धनुष ऊंचा है. ताकै ऊपरि देहकी ऊंचाई आधी आधी है. छट्टामें दोसै पचास धनुष, पांचवामें एकसौ पच्चीस धनुष, चौथेमें साठवासठ धनुष, तीसरामें सवाइकतीस धनुष, दूसरामें पनरा धनुष आना दश, पहलामें सात धनुष तेरह आना, ऐसैं जानना. इनमें पटल गुणचास हैं तिनविषै न्यारी न्यारी विशेष अवगाहना त्रैलोक्यसारतैं जाननी ॥ १६८ ॥

अब देवनिकी अवगाहना कहै हैं,—

असुराणं पणवीसं सेसं णवभावणा य दहदंडं ।

विंतरदेवाण तहा जोइसिया सत्तधणुदेहा ॥ १६९॥

भाषार्थ—भवनवासीनिविषैं असुरकुमार हैं तिनकी देह की ऊंचाई पच्चीस धनुष, बाकी नवनिकी दश धनुष, अर व्यंतरनिकी देहकी ऊंचाई दश धनुष है, अर ज्योतिषी देवनिकी देहकी ऊंचाई सात धनुष है ॥ १६९ ॥

अब स्वर्गके देवनिकी कहै हैं,—

दुग्दुग्चदुचदुग्दुग्दुग्कप्पसुराणं सररीरपरिमाणं ।
सत्तल्लहपंचहत्था चउरा अद्धद्ध हीणा य ॥ १७० ॥
हिट्ठिममज्झिमउवरिमगेवज्झो तह विमाणचउदसए ।
अद्धजुदा वे हत्था हीणं अद्धद्धयं उवरिं ॥ १७१ ॥

भाषार्थ—सौधर्म ईशान जुगलके देवनिका देह सात हाथ ऊंचा है. सानत्कुमार माहेन्द्र युगलके देवनिका देह छह हाथ ऊंचा है. ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह पांच हाथ ऊंचा है. शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इनि च्यारि स्वर्गके देवनिका देह च्यारि हाथ ऊंचा है आनत प्राणत युगलके देवनिका देह साढा तीन हाथ ऊंचा है आरण अच्युतविषैं देवनिका देह तीन हाथ ऊंचा है । अधो-ग्रैवेयकविषैं देवनिका देह अढाई हाथ ऊंचा है. मध्यमग्रैवेय-कविषैं देवनिका देह दोय हाथ ऊंचा है । ऊपरिके ग्रैवेयक-विषैं देवनिका देह ड्योढ हाथ ऊंचा है. नव अनुदिस पंच अनुत्तरविषैं देवनिका देह एक हाथ ऊंचा है ॥ १७०-१७१ ॥

आगे भरत ऐरावत क्षेत्रविषै कालकी अपेक्षातैं मनुष्य-
निका शरीरकी ऊंचाई कहै हैं—

अवसर्पिणिणं पठमे काले मणुया तिकोसउच्छेहा ।
छट्ससवि अवसाणे हत्थपमाणा विवत्था य ॥१७२॥

भाषार्थ—अवसर्पिणीका पहला कालविषै आदिमें मनु-
ष्यनिका देह तीन कोश ऊंचा है. बहुरि छटाकालका अंतमें
मनुष्यनिका देह एक हाथ ऊंचा है. बहुरि छटा कालका
जीव वस्त्रादिकरि रहित होय हैं ॥ १७२ ॥

आगे एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह कहै हैं,—
सव्वजहण्णो देहो लद्धियपुण्णण सव्वजीवाणं ।
अंगुलअसंखभागो अण्येयभेओ हवे सो वि ॥१७३॥

भाषार्थ—लब्धपर्याप्तक सर्व जीवनिका देह घनअंगुल-
के असंख्यातवें भाग है. सो यह सर्व जघन्य है. सो यामें
भी अनेक भेद हैं. भावार्थ—एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह
भी छोटा बड़ा है. सो घनांगुलके असंख्यातवें भागमें भी
अनेक भेद हैं. सो गोम्मटसारविषै अवगाहनाके चौसठि भे-
दनिका वर्णन है तहांतैं जानना ॥ १७३ ॥

आगे वेइन्द्रिय आदिकी जघन्य अवगाहना कहै हैं,—
वित्तिचउपंचक्खाणं जहण्णदेहो हवेइ पुण्णणं ।
अंगुलअसंखभाओ संखगुणो सो वि उवरुवरिं १७४

भाषार्थ—वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय पंचेंद्रिय पर्याप्त जी-
वनिका जघन्य देह घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. सो
भी ऊपरि ऊपरि संख्यात गुणो हैं. भावार्थ—वेइंद्रियका देहतैं
संख्यातगुणा तेइंद्रियका देह है. तेइंद्रियतैं संख्यातगुणा चौ-
इंद्रियका देह है. तातैं संख्यात गुणा पंचेंद्रियका है ॥ १७४ ॥

आगें जघन्य अवगाहनाका धारक वेइंद्रिय आदि जीव
कौन कौन हैं सो कहै हैं—

आणुधरीयं कुंथं मच्छाकाणा य सालिसिच्छो य ।
पञ्जत्ताण तसाणं जहण्णदेहो विणिहिट्ठो ॥ १७५ ॥

भाषार्थ—वेइंद्रियमें तौ अणुधरी जीव, तेइंद्रियमें कुंथ जीव,
चौइंद्रियमें काणमक्षिका, पंचेंद्रियमें शालिसिक्क नामा
मच्छ इति त्रस पर्याप्त जीवनिकें जघन्य देह कहा है ॥ १७५ ॥

आगें जीवका लोक प्रमाण अर देहप्रमाणपणा कहै हैं ।
लोयपमाणो जीवो देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते ।
ओगाहणसत्तीदो संहरणाविसप्पधम्मादो ॥ १७६ ॥

भाषार्थ—जीव है सो लोक प्रमाण है. बहुरि देहप्रमाण
भी है जातैं संकोच विस्तार धर्म यामें पाइये है. ऐसी अवगा-
हनाकी शक्ति है. भावार्थ—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं.
सो जीवके भी एते ही प्रदेश हैं केवल समुद्घात करै तिस
काल लोकपूरण होय. बहुरि संकोचविस्तारशक्ति यामें है

तातैं जैसी देह पावै तैसाही प्रमाण रहै है. अर समुद्रघात करै तब देहतैं भी प्रदेश नीसरै हैं ॥ १७६ ॥

आगें कोई अन्यमती जीवकुं सर्वथा सर्वगत ही कहै हैं तिनि का निषेध करै हैं,—

सव्वगओ जदि जीवो सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती
जाइज्ज ण सा दिट्ठी णियतणुमाणो तदो जीवो ॥

भाषार्थ—जो जीव सर्वगत ही होय तौ सर्व क्षेत्रसंबंधी सुखदुःखकी प्राप्ति याकै भई सो तौ नाहीं देखिये है. अपने शरीरमें ही सुखदुःखकी प्राप्ति देखिये है. तातैं अपने शरीरप्रमाण ही जीव है ॥ १७७ ॥

जीवो णाणसहावो जह अग्गी उल्लओ सहावेण ।

अत्यंतरभूदेण हि णाणेण ण सो हवे णाणी ॥ १७८ ॥

भाषार्थ—जैसेँ अग्नि स्वभावकरि ही उष्ण है तैसेँ जीव है सो ज्ञानस्वभाव है तातैं अर्गान्तरभूत कहिये आपतैं प्रदेशरूप जुदा ज्ञानकरि ज्ञानी नाहीं है. भावार्थ—नैयायिक आदि हैं ते जीवकै अर ज्ञानकै प्रदेशभेद मानिकरि कहै हैं जो आत्मातैं ज्ञान भिन्न है सो समवायतैं तथा संसर्गतैं एक भया है तातैं ज्ञानी कहिये है. जैसेँ धनतैं धनी कहिये तैसेँ. सो यह मानना असत्य है. आत्माकै अर ज्ञानकै अग्नि अर उष्णताकै जैसेँ अभेदभाव है तैसेँ तादात्म्यभाव है ॥ १७८ ॥

आगें भिन्नमाननेमें दूषण दिखावै हैं,—

जदि जीवादो भिण्णं सत्त्वपयारेण हवदि तं णाणं ।
गुणगुणिभावो य तदा दूरेण प्पणस्सदे दुल्लं ॥ १७९ ॥

भाषार्थ— जो जीवतैं ज्ञान सर्वथा भिन्न ही मानिये तौ
तिन दोऊनिकै गुणगुणिभाव दूरतैं ही नष्ट होय. भावार्थ—यह
जीव द्रव्य है यह याका ज्ञान गुण है. ऐसा भाव न ठहरै ।

आगें कोई पूछै जो गुण अर गुणीका भेद विना दोय
नाम कैसे कहिये ताका समाधान करै हैं—

जीवस्स वि णाणस्स वि गुणगुणिभावेण कीरए भेओ ।
जं जाणदि तं णाणं एवं भेओ कहं होदि ॥ १८० ॥

भाषार्थ—जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि भेद
कथंचित् कीजिये है. बहुरि जो जाणो सो ही आत्माका
ज्ञान है ऐसैं भेद कैसे होय. भावार्थ—सर्वथा भेद होय तौ
जाणौ सो ज्ञान है ऐसा अभेद कैसे कहिये तातें कथंचित् गु-
णगुणीभाव करि भेद कहिये है, प्रदेशभेद नाहीं ।

ऐसैं केई अन्यमती गुणगुणीमें सर्वथा भेद मानि जी-
वकै अर ज्ञानकै सर्वथा अर्थान्तरभेद मानै हैं तिनिका मत
निषेध्या ॥

आगें चार्वाकमती ज्ञानकं पृथ्वी आदिका विकार मानै
है ताकूं निषेधै हैं—

णाणं भूयवियारं जो मण्णदि सो वि भूदगहिदव्वो ।

जीवेण विणा णाणं किं केणवि दीसए कत्थ ॥ १८१ ॥

भाषार्थ—जो चार्वाकमती ज्ञानकू पृथ्वी आदि जे पंच भूत तिनिका विकार मानै है सो चार्वाक, भूत कहिये पि-
शाच ताकरि गृह्या है गहिछा है. जातैं विना ज्ञानके जीव
कहां कोईकरि कहूं देखिये है ? कहूं भी नाहीं देखिये है ।

आगें याकूं दूषणा बतावैं हैं ॥ १८१ ॥

सच्चेयणपच्चक्खं जो जीवं णेय मण्णदे मूढो ।

सो जीवं ण मुणंतो जीवाभावं कहं कुणदि ॥ १८२ ॥

भाषार्थ—यह जीव सत्तरूप अर चैतन्यरूप स्वसंवेदन
प्रत्यक्ष प्रमाणकरि प्रसिद्ध है. ताहि चार्वाक नाहीं मानै है.
सो मूर्ख है. जो जीवकूं नाहीं जाणै है नाहीं मानै है तो जी-
वका अभाव कैसें करें है. भावार्थ—जो जीवकूं जानै ही नाहीं
सो अभाव भी न कहि सकै. अभावका कहनेवाला भी तो
जीव ही है. जातैं सद्भावविना अभाव कहा न जाय १८२

आगें याहीकूं युक्तिकरि जीवका सद्भाव दिखावैं हैं—

जदि ण य हवेदि जीओ तो को वेदेदि सुक्खदुक्खाणि
इंदियविसया सव्वे को वा जाणदि विसेसेण ॥ १८३ ॥

भाषार्थ—जो जीव नाहीं होय तो अपने सुखदुःखकूं
कौन जानै तथा इन्द्रियनिके स्पर्श आदि विषय हैं तिन स-
र्वानकूं विशेषकरि कौन जानै. भावार्थ—चार्वाक प्रत्यक्ष प्र-

माण मानै है. सो अपने सुखदुःखकूं तथा इंद्रियनिके विषयनिकूं जानै सो प्रत्यक्ष, सो जीव विना प्रत्यक्षप्रमाण कौनकै होय ? तातैं जीवका सद्भाव अवश्य सिद्ध होय है ॥ १८३ ॥

आगें आत्माका सद्भाव जैसें बणै तैसें कहै हैं—

संकल्पमओ जीवो सुहदुःखमयं हवेइ संकल्पो ।
तं चिय वेयदि जीवो देहे मिलिदो वि सव्वत्थ ॥

भाषार्थ—जीव है सो संकल्पमयी है. बहुरि संकल्प है सो दुःखसुखमय है. तिस सुखदुःखमयी संकल्पकूं जाणै सो जीव है जो देहविषै सर्वत्र मिलि रह्या है तोऊ जाननेवाला जीव है ॥ १८४ ॥

आगें जीव देहसूं मिल्या हूवा सर्व कार्यनिकूं करै है यह कहै हैं—

देहमिलिदो वि जीवो सव्वकम्माणि कुव्वदे जह्मा ।
तह्मा पयट्टमाणो एयत्तं बुद्धदे दोल्लं ॥ १८५ ॥

भाषार्थ—जातैं जीव है सो देहतैं मिल्या हूवा ही सर्व कर्म नोकर्मरूप सर्व कार्यनिकूं करै हैं तातैं तिनि कार्यनिके प्रवर्त्तता संता जो लोक ताकूं देहकै अर जीवकै एकपणा भासै है. भावार्थ—लोककूं देह अर जीव न्यारे तौ दीखै नाहीं दोऊ मिलेहुये दीखै हैं संयोगतैं ही कार्यनिकी प्रवृत्ति दीखै है तातैं दोऊनिको एक ही मानै है ॥ १८६ ॥

आगे जीवकं देहतै भिन्न जाननेकं लक्षण दिखावै हैं—
 देहमिलिदो वि पिच्छदि देहमिलिदो वि णिसुण्णदे सदं ।
 देहमिलिदो वि भुंजदि देहमिलिदो वि गच्छेई ॥

भाषार्थ—जीव है सो देहसं मिल्या ही नेत्रनिकरि प-
 दार्थनिकं देखै है. बहुरि देहसं मिल्या ही काननिकरि श-
 ब्दनिकों सुणै है. बहुरि देहसं मिल्या ही मुखतै स्वाय है,
 जीभतै स्वाद ले है बहुरि देहतै मिल्या ही पगनिकरी ग-
 मन करै है. भावार्थ—देहमें जीव न होय तो जडरूप केवल
 देहहीकै देखना स्वाद लेना सुनना गमन करना ए क्रिया
 न होय. तातै जानिये है देहमें न्यारा जीव है. सो ही ये क्रिया
 करै है ॥ १८६ ॥

आगे ऐसैं जीवकं मिले ही मानता लोक भेदकं न
 जानै है,—

राओ हं भिच्चो हं सिट्ठी हं चेव दुव्वलो बलिओ ।
 इदि एयत्ताविट्ठो दोळं भेयं ण वुज्जेदि ॥ १८७ ॥

भाषार्थ—देहकै अर जीवकै एकपणाकी मानिकरि स-
 हित जो लोक है सो ऐसैं मानै है जो मैं राजा हूं मैं चाकर
 हूं मैं श्रेष्ठी हूं मैं दुर्बल हूं मैं दरिद्र हूं निबल हू बलवान हूं
 ऐसैं मानता संता देह जीव दोऊनिकै भेद नहीं जानै है ॥ १८७ ॥

आगे जीवकै कर्त्तापणा आदिकूं च्यारि गायानिकरि
 कहै हैं—

जीवो हवेइ कत्ता सठवं कम्माणि कुव्वदे जह्मा ।

कालाइलद्धिजुत्तो संसारं कुणदि मोक्खं च ॥ १८८ ॥

भाषार्थ—जातैं यह जीव सर्व जे कर्म नो कर्म तिनिकूं करता संता आपका कर्त्तव्य मानै है तातैं कर्त्ता भी है सो आपकैं संसारकूं करै है. बहुरि काल आदि लब्धिकरि युक्त हुवा संता आपकैं मोक्षकूं भी आप ही करै है. भावार्थ—कोई जानैगा कि या जीवकैं सुखदुःख आदि कार्यनिकूं ईश्वर आदि अन्य करै है सो ऐसैं नाहीं है आप ही कर्त्ता है. सर्व कार्य-निकूं आप ही करै है. संसार भी आप ही करै है. काल लब्धि आवै तब मोक्ष भी आप ही करै है सर्वकार्यनिप्रतिद्रव्य क्षेत्र-काल भावरूप सामग्री निमित्त है ही ॥ १८८ ॥

जीवो वि हवइ भुत्ता कम्मफलं सो वि भुंजदे जह्मा
कम्मविवायं विविहं सो चिय भुंजेदि संसारे १८९॥

भाषार्थ—जातैं जीव है सो कर्मका फल या संसारमें भोगवै है तातैं भोक्ता भी यह ही है. बहुरि सो कर्मका वि-पाक संसारविषै सुखदुःखरूप अनेक प्रकार है तिनकूं भी भोगै है ॥ १८९ ॥

जीवो वि हवइ पावं अइतिठ्वकसायपरिणदो णिच्चं ।

जीवो हवेइ पुण्णं उवसमभावेण संजुत्तो ॥ १९० ॥

भाषार्थ—यह जीव अति तीव्र कषायकरि संयुक्त होय

तब यह ही जीव पापरूप होय है. बहुरि उपशम भाव जो मन्द कषाय ताकरि संयुक्त होय तब यह ही जीव पुण्यरूप होय है. भावार्थ—क्रोध मान माया लोभका अतितीव्रपणातैं तो पाप परिणाम होय है. अर इतिका मंदपणातैं पुण्यपरिणाम होय है तिनि परिणामनिसहित पुण्यजीव पापजीव कहिये है एक ही जीव दोऊं परिणामयुक्त हुवा कै पुण्यजीव पापजीव कहिये है. सो सिद्धान्तकी अपेक्षा ऐसैं ही हैं. जातैं सम्यक्त्व सहित जीव होय ताकै तो तीव्रकषायनिकी जड़ कटनेतैं पुण्य जीव कहिये. बहुरि मिथ्यादृष्टि जीवकै भेदज्ञानविना कषायनिकी जड़ कटै नाहीं तातैं बाह्यतैं कदाचित् उपशम परिणाम भी दीखै तौ ताकूं पापजीव ही कहिये ऐसा जानना ॥

रयणत्तयसंजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।

संसारं तरइ जदो रयणत्तयदिठवणावाए ॥ १९१ ॥

भावार्थ—जातैं यह जीव रत्नत्रयरूप सुंदर नावकरि संसारतैं तिरै है पार होय है. तातैं यह ही जीव रत्नत्रयकरि संयुक्त भया संता उत्तम तीर्थ है, भावार्थ—तीर्थ नाम जो तिरै तथा जाकरि तिरिये सो है. सो यह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भये रत्नत्रय, सोई भई नाव, ताकरि तरै है तथा अन्यकूं तिरनैको निमित्त होय है तातैं यह जीव ही तीर्थ है ॥

आगै अन्यप्रकार जीवका भेद कहै हैं—

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।

परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ॥

भाषार्थ—जीव बहिरात्मा अन्तरात्मा परमात्मा ऐसैं तीन प्रकार हैं बहुरि परमात्मा भी अरहन्त तथा सिद्ध ऐसैं दोय प्रकार हैं ॥ १९२ ॥

अब इनिका स्वरूप कहै हैं तहां बहिरात्मा कैसा है सो कहै हैं—

मिच्छत्तपरिणदाप्पा तिठ्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीवं देहं एक्कं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥ १९३ ॥

भाषार्थ—जो जीव मिथ्यात्व कर्मका उदयरूप परिणाम्या होय बहुरि तीव्र कषाय अनन्तानुबन्धीकरि सुष्ठु कहिये अतिशयकरि युक्त होय इस निमित्तैं जीवकूं अर देहकूं एक मानता होय सो जीव बहिरात्मा कहिये. भावार्थ—बाह्य पर द्रव्यको आत्मा मानै सो बहिरात्मा है. सो यह मानना मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषायके उदयकरि होय है तातैं भेदज्ञानकरि रहित हूवा संता देहकं आदिदेकरि समस्त परद्रव्यविषै अहंकार ममकारकरि युक्त हूवा सन्ता बहिरात्मा कहावै है ॥ १९३ ॥

आगें अंतरात्माका स्वरूप तीन गायानिकरि कहै हैं—
जे जिणवयणे कुसलो भेदं जाणंति जीवदेहाणं ।
णिज्जियदुट्ठमया अंतरअप्पा य ते तिविहा ॥

भाषार्थ—जे जीव जिनवचनविषै प्रवीण हैं बहुरि जीवकै अर देहकै भेद जाणै हैं. बहुरि जीते हैं आठ मद जिनने ते अंतरात्मा हैं. ते उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार हैं । भावार्थ—जो जीव जिनवानीका भले प्रकार अभ्यासकरि जीव अर देहका स्वरूप भिन्न भिन्न जानै ते अंतरात्मा हैं. तिनि कैं जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य ये आठ मदके कारण हैं तिनि विषै अहंकार ममकार नाहीं उपजै है जातैं ये परद्रव्यके सयोगजनित हैं तातैं इनि विषै गर्व नाहीं करै हैं ते तीन प्रकार हैं ॥ १९४ ॥

अब इनि तीन प्रकारविषै उत्कृष्टकूं कहै हैं—

पंचमहव्यजुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिया णिच्चं ।

णिज्जियसयलपमाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥ १९५ ॥

भाषार्थ—जे जीव पांच महाव्रतकरि संयुक्त होय बहुरि धर्म्यध्यान शुक्लध्यानविषै नित्य ही तिष्ठे होय बहुरि जीते हैं सकल निद्रा आदि प्रमाद जिनने ते उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं ।

अब मध्यम अन्तरात्माकूं कहै हैं—

सावयगुणेहिं जुत्ता पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति ।

जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥

भाषार्थ—जे जीव श्रावकके व्रतनिकरि संयुक्त होय बहुरि प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जे मुनि होय ते मध्यम अन्तरा-

त्मा हैं. कैसे हैं ते, जिनवरवचनविषै अनुरक्त हैं लीन हैं. आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तन न करें. बहुरि उपशमभाव कहिये मन्द कषाय तिसरूप है. स्वभाव जिनि का, बहुरि महापरा-क्रमी हैं परीषदादिकके सहनेमें दृढ़ हैं उपसर्ग आये प्रति-ज्ञातैं तलैं नाहीं ऐसे हैं ॥ १९६ ॥

अब जघन्य अंतरात्माकुं कहै हैं—

अविरयसम्मादिष्टी होंति जहणणा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥१९७॥

भाषार्थ—जे जीव अविरत सम्यग्दृष्टो हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन तौ जिनके पाइये है अर चारित्रमोहके उदयकरि व्रत-धारि सकैं नाहीं ऐसे जघन्य अंतरात्मा हैं. ते कैसे हैं ? जिनेन्द्रके चरननिके भक्त हैं, जिनेन्द्र, तिनकी वाणी, तथा तिनिके अनुसार निर्ग्रन्थ गुरु तिनिकी भक्तिविषै तत्पर हैं. बहुरि अपने आत्माकुं निरन्तर निंदते रहै हैं जातैं चारित्र-मोहके उदयतैं व्रत धारे जांय नाहीं, अर तिनकी भावना निरन्तर रहै तातैं अपने विभाव परिणामनिकी निन्दा क-रते ही रहै हैं. बहुरि गुणनिके ग्रहणविषै भले प्रकार अनु-रागी हैं जातैं जिनिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण देखैं तिनितैं अत्यन्त अनुरागरूप प्रवर्त्तैं हैं गुणनितैं अपना अर परका हित जान्या है, तातैं गुणनितैं अनुराग ही होय है. ऐसैं तीन प्र-कार अंतरात्मा कहा सो गुणस्थाननिकी अपेक्षातैं जानना ।
भाषार्थ—चौथा गुणस्थानवर्ती तौ जघन्य अंतरात्मा, पांचवां

छठा गुणस्थानवर्ती मध्यम अंतरात्मा अर सातवां गुणस्थान-
नतें लगाय बारहमां गुणस्थानतई उत्कृष्ट अंतरात्मा
जानना ॥ १९७ ॥

अब परमात्माका स्वरूप कहै हैं,—

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणियसयलत्था ।

णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्खसंपत्ता ॥ १९८ ॥

भाषार्थ—जे शरीरसहित ते अरहंत हैं। कैसे हैं ? केवलज्ञा-
नकरि जाने हैं सकलपदार्थ जिनूतें ते परमात्मा हैं. बहुरि
शरीरकरि रहित हैं ज्ञान ही है शरीर जिनकैं, ते सिद्ध हैं.
कैसे हैं ? सर्व उत्तम सुखकूं प्राप्त भये हैं ते शरीररहित परमा-
त्मा हैं. भावार्थ—तेरहमां चौदहमां गुणस्थानवर्ती अरहंत श-
रीरसहित परमात्मा हैं. अर सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित
परमात्मा हैं ।

अब परा शब्दका अर्थकूं कहै हैं,—

णिस्सेसकम्मणासे अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती ।

कम्मजभावखए विय सा विय पत्ती परा होदि ॥ १९९ ॥

भाषार्थ—जो समस्त कर्मका नाश होतेसंतें अपने स्व-
भावकरि उपजै सो परा कहिये. बहुरि कर्मतें उपजे जे औ-
दयिक आदि भाव तिनका नाश होतैं उपजै सो भी परा क-
हिये. भावार्थ—परमात्मा शब्दका अर्थ ऐसा है जो परा क-
हिये उत्कृष्ट मा कहिये लक्ष्मी जाकैं होय ऐसा आत्माकूं प-

रमात्मा कहिये है, सो समस्त कर्मनिका नाशकरि स्वभावरूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे सिद्ध, ते परमात्मा हैं, बहुरि घातिकर्मनिका नाशकरि अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीकं प्राप्त भये ऐसे अरहंत ते भी परमात्मा हैं, बहुरि ते ही औदयिक आदि भावनिका नाश करि भी परमात्मा भये कहिये।

आगे कोई जीवनिकूं सर्वथा शुद्ध ही कहै हैं तिनके मतकूं निषेधै हैं,—

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकाले वि ।
तो तवचरणविहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥ २०० ॥

भाषार्थ—जो सर्व जीव अनादि कालविषै भी शुद्ध स्वभाव हैं तो सर्वहीके तपश्चरणाविधान है सो निष्फल होय है।
ता किह गिह्मदि देहं णाणाकम्माणि ता कहं कुडइ ।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य णाणारूवा कहं होंति २०१

भाषार्थ—जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहकूं कैसें ग्रहण करै है ? बहुरि नाना प्रकारके कर्मनिकूं कैसें करै है ? बहुरि कोई सुखी है कोई दुःखी है ऐसें नानारूप कस होय है ? तातैं सर्वथा शुद्ध नहीं है।

आगे अशुद्धता शुद्धताका कारण कहै हैं,—
सव्वे कम्माणबद्धा संसरमाणा अणाइकालहि ।
पच्छा तोडिय बंधं सुद्धा सिद्धा धुवा होंति ॥ २०२ ॥

भाषार्थ—जीव हैं ते सर्व ही अनादिकालतैं कर्मकरि बंधे हुये हैं तातैं संसारविषै भ्रमण करै हैं. पीछैं कर्मनिके बंधनिकूं तोडि सिद्ध होय हैं, तब शुद्ध हैं अर निश्चल होय हैं ।

आगें जिस बंधकरि जीव बंधे हैं तिस बंधका स्वरूप कहै हैं,—

जो अण्णोण्णपेवसो जीवपएसाण कम्मखंधाणं ।
सव्वबंधाण विलओ सो बंधो होदि जीवस्स ॥२०३॥

भाषार्थ—जो जीवनिके प्रदेशनिका अर कर्मनिके बंधनिका परस्पर प्रवेश होना एक क्षेत्ररूप सम्बन्ध होना सो जीवकैं प्रदेशबन्ध है. सो यह ही प्रकृति स्थिति अनुभाररूप जे सर्व बंध तिनिका भी लय कहिये एकरूप होना है ।

आगें सर्व द्रव्यनिविषैं जीव द्रव्य ही उत्तम परम तत्त्व है ऐसा कहै हैं,—

उत्तमगुणाण धामं सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परमतच्चं जीवं जाणेहि णिच्छयदो ॥२०४॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो उत्तम गुणनिका धाम है ज्ञान आदि उत्तम गुण याहीमें हैं. बहुरि सर्व द्रव्यनिमें यह ही द्रव्य प्रधान है. सर्व द्रव्यनिकं जीव ही प्रकासै है. बहुरि सर्व तत्त्वनिमें परम तत्त्व जीव ही है, अनन्तज्ञान सुख आदिका भोक्ता यह ही है ऐसैं हे भव्य ! तू निश्चयतैं जाणि ।

आगें जीवहीकै उत्तम तत्त्वपणा कैसें है सो कहै हैं,—
 अंतरतत्त्वं जीवो बाहिरतत्त्वं हवन्ति सेसाणि ।
 णाणविहीणं दत्त्वं हियाहियं णेय जाणादि ॥२०५॥

भाषार्थ—जीव है सो तो अन्तरतत्त्व है. बहुरि बाकी-
 के सर्व द्रव्य हैं ते बाह्यतत्त्व हैं. ते ज्ञानकरि रहित हैं सो
 जो ज्ञानकरि रहित है सो द्रव्य हेय उपादेय नस्तुकूं कैसें
 जानै ? भावार्थ—जीवतत्त्वबिना सर्व शून्य है तातैं सर्वका जा-
 ननेवाला तथा हेय उपादेयका जाननेवाला जीव ही परम
 तत्त्व है ॥ २०५ ॥

आगें जीव द्रव्यका स्वरूप कहकरि अब पुद्गल द्रव्यका
 स्वरूप कहै हैं,—

सठ्वो लोयायासो पुग्गलदठ्वेहिं सठ्वदो भरिदो ।
 सुहमेहिं वायरेहिं य णाणाविहसत्तिजुत्तेहिं ॥२०६॥

भाषार्थ—सर्व लोकाकाश है सो सूक्ष्म वादर जे पुद्गल
 द्रव्य तिनकरि सर्व प्रदेशनिविधै भरया है. कैसें हैं पुद्गल द्रव्य ?
 नाना शक्तिकरि सहित हैं. भावार्थ—शरीर आदि अनेकप्रका-
 र परिणामन शक्तिकरि युक्त जे सूक्ष्म वादर पुद्गल तिनक-
 रि सर्वलोकाकाश भरया है ॥ २०६ ॥

जे इंदिएहिं गिज्झं रूवरसगंधफासपरिणामं ।
 तं चिय पुग्गलदठ्वं अणंतगुणं जीवरासीदो ॥

भाषार्थ—जो रूप रस गन्ध स्पर्श परिणाम स्वरूपकरि इन्द्रियनिके ग्रहण करने योग्य हैं ते सर्व पुद्गल द्रव्य हैं. ते संख्याकरि जीवराशितैं अनन्तगुणो द्रव्य हैं ॥ २०७ ॥

अब पुद्गल द्रव्यकै जीवका उपकारीपणाकूं कहै हैं,—

जीवस्स बहुपयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दठवं ।
देहं च इंदियाणि य त्राणी उस्सासाणिस्सासं । २०८ ।

भाषार्थ—पुद्गल द्रव्य है सो जीवके बहुत प्रकार उपकार करै है. देह करै है, इन्द्रिय करै है, बहुरि वचन करै है, उ-
स्वास निस्वास करै है. भावार्थ—संसारी जीवके देहादिक पु-
द्गल द्रव्यकरि रचित हैं. इनकरि जीवका जीवतव्य है यह
उपकार है ॥ २०८ ॥

अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव संसारं ।
मोहं अणाणमयं पि य परिणामं कुणइ जीवस्स ॥

भाषार्थ—पुद्गल द्रव्य है सो जीवके पूर्वोक्तकूं आदिकरि
अन्य भी उपकार करै है. जेतैं या जीवकै संसार है तेतैं घणो
ही परिणाम करै है. मोहपरिणाम, पर द्रव्यनितैं ममत्त्व परि-
णाम, तथा अज्ञानमयी परिणाम, ऐसैं सुख दुःख जीवित
मरण आदि अनेक प्रकार करै है. यहां उपकार शब्दका अर्थ
किछू परिणाम विशेष करै सो सर्व ही लेणा ॥ २०९ ॥

आगें जीव भी जीवकूं उपकार करे है, ऐसा कहै हैं ।

जीवा वि दु जीवाणं उवयारं कुणइ सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेओ पुण्णं पावं च णियमेण ॥२१०॥

भाषार्थ—जीव हैं ते भी जीवनिके परस्पर उपकार करें हैं सो यह सर्वके प्रत्यक्ष ही है. सिरदार चाकरके, चाकर सिरदारके, आचार्य शिष्यके, शिष्य आचार्यके, पितामाता पुत्रके, पुत्र पितामाताके, मित्र मित्रके, स्त्री भरतारके इत्यादि प्रत्यक्ष देखिये है. सो तहां परस्पर उपकारकेविषे पुण्य-पापकर्म नियमकरि प्रधान कारण है ॥ २१० ॥

आगे पुद्गलकें बड़ी शक्ति है ऐसा कहै हैं,—
का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

भाषार्थ—पुद्गल द्रव्यकी कोई ऐसी अपूर्व शक्ति देखिये है जो जीवका केवलज्ञानस्वभाव है सो भी जिस शक्तिकरि विनश्या जाय है । भाषार्थ—अनन्त शक्ति जीवकी है तामें केवलज्ञानशक्ति ऐसी है कि जाकी व्यक्ति (प्रकाश) होय तब सर्व पदार्थनिकुं एकै काल जानै । ऐसी व्यक्तिकुं पुद्गल नष्ट करै है, न होने दे है, सो यह अपूर्व शक्ति है । ऐसैं पुद्गलद्रव्यका निरूपण किया ।

अब धर्मद्रव्य अरु अधर्मद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—
धम्ममधम्मं दव्वं गमणट्ठाणाण कारणं कमसो ।

जीवाण पुग्गलाणं विण्ण वि लोगप्पमाणाणि २१२

भाषार्थ—जीव अर पुद्गल इनि दोऊं द्रव्यनिकुं गमन अवस्थानका सहकारी अनुक्रमतै कारण हैं, ते धर्म अर अधर्म द्रव्य हैं । ते दोऊं ही लोकाकाश परिमाणप्रदेशकूं धरै हैं । भावार्थ—जीव पुद्गलकूं गमनसहकारी कारण तौ धर्मद्रव्य है अर स्थितिसहकारी कारण अधर्मद्रव्य है । ए दोऊं लोकाकाशप्रमाण हैं ।

आगे आकाशद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सयलाणं दव्वाणं जं दादुं सक्कदे हि अवगासं ।

तं आयासं दुविहं लोयालोयाण भेयेण ॥ २१३ ॥

भाषार्थ—जो समस्त द्रव्यनिकों अवकाश देनेकूं समर्थ है सो आकाश द्रव्य है । सो लोक अलोकके भेदकरि दोय प्रकार है । भावार्थ—जामें सर्व द्रव्य वसै ऐसे अवगाहनगुणकूं धरै है सो यह आकाश द्रव्य है । सो जामें पांच द्रव्य वसै हैं सो तौ लोकाकाश है अर जामें अन्य द्रव्य नाहीं सो अलोकाकाश है, ऐसैं दोय भेद हैं ।

आगे आकाशविषै सर्व द्रव्यनिकुं अवगाहन देनेकी शक्ति है तैसी अवकाश देनेकी शक्ति सर्व ही द्रव्यनिमें है ऐसैं कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं अवगाहनसत्ति अत्थि परमत्थं ।

जह भसमपाणियाणं जीवपएसाण जाण बहुआणं ॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति है । यह निश्चयतै जाणहु । जैसें भस्मकैँ अर जलकैँ अवगाहन शक्ति है तैसें जीवके असंख्यात प्रदेशनिकै जानू ।

भावार्थ—जैसें जलकं पात्रविषै भरि तामें भस्म डारिये सो समावै । बहुरि तामें मिश्री डारिये सो भी समावै । बहुरि तामें सुई चोपिये सो भी समावै तैसें अवगाहनशक्ति जाननी । इहां कोई पूछै कि सर्व ही द्रव्यनिमें अवगाहन शक्ति है तो आकाशका असाधारण गुण कैसेँ है ? ताका समाधान—जो परस्पर तो अवगाह सर्व ही देहैं तथापि आकाशद्रव्य सर्वतै बडा है । तातैं यामें सर्व ही समावै यह असाधारणता है ।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं एक्केकास पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥ २१५ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै स्वभावभूत अवगाहनशक्ति न होय तो एक एक आकाशके प्रदेशविषै सर्व द्रव्य कैसेँ वट्टैं । भावार्थ—एक आकाश प्रदेशविषै अनन्त पुद्गलके परमाणु द्रव्य तिष्ठैं हैं । एक जीवका प्रदेश एक धर्मद्रव्यका प्रदेश एक अधर्मद्रव्यका प्रदेश एक कालाणुद्रव्य ऐसेँ सर्व तिष्ठैं हैं सो वह आकाशका प्रदेश एक पुद्गलके परमाणुकी बराबर है सो अवगाहनशक्ति न होय तो कैसेँ तिष्ठै ?

आगें कालद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो ।

एक्केकासपएसे सो वट्टदि एक्किंको चेव ॥ २१६ ॥

भाषार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै परिणाम करै है सो काल द्रव्य है । सो एक एक आकाशके प्रदेशविषै एक एक कालाणुद्रव्य वतै है । भावार्थ—सर्व द्रव्यनिके समय समय पर्याय उपजै हैं अरु विनसै हैं सो ऐसे परिणामनकुं निमित्त कालद्रव्य है । सो लोकाकाशके एक एक प्रदेशविषै एक २ कालाणु तिष्ठै है । सो यह निश्चय काल है ॥ २१६ ॥

आगे कहै हैं कि परिणामनेकी शक्ति स्वभावभूत सर्व द्रव्यनिमें है, अन्य द्रव्य निमित्तमात्र हैं—

णियणियपरिणामाणं णियणियद्वं पि कारणं होदि ।

अण्णं बाहिरद्वं णिमित्तमत्तं वियाणेह ॥ २१७ ॥

भाषार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामनिके उपादान कारण हैं । अन्य बाह्य द्रव्य हैं सो अन्यके निमित्तमात्र जानां । भावार्थ—जैसे घट आदिकुं माटी उपादान कारण है अरु चाक दंडादि निमित्त कारण हैं । तैसें सर्व द्रव्य अपने पर्यायनिकुं उपादान कारण हैं । कालद्रव्य निमित्त कारण है ॥

आगे कहै हैं कि सर्वही द्रव्यनिकै परस्पर उपकार है सो सहकारीकारणभावकरि है—

सव्वाणं दव्वाणं जो उवयारो हवेइ अण्णोणं ।

सो चिय कारणभावो हवादे हु सहयारिभावेण ॥

भाषार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै जो परस्पर उपकार है सो सहकारीभावकरि कारणभाव हो है यह प्रगट है ॥ २१८ ॥

आगे द्रव्यनिके स्वभावभूत नाना शक्ति हैं ताको कौन निषेधि सके है ऐसैं कहै हैं,—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिं संजुदा अत्था ।

परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं ॥

भाषार्थ—सर्व ही पदार्थ काल आदि लब्धिकर सहित भये नाना शक्तिसंयुक्त हैं तैसैं ही स्वयं परिणामै हैं तिनकूं परिणमतै कोई निवारनेकूं समर्थ नाहीं । भावार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामरूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्रीकूं पाय आय ही भावरूप परिणामै हैं । तिनकूं कोई निवारि न सकै है ॥ २१९ ॥

आगे व्यवहारकालका निरूपण करै हैं,—

जीवाण पुग्गलाणं ते सुहुमा वादरा य पज्जाया ।

तीदाणागदभूदा सो ववहारो हवे कालो ॥ २२० ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य अर पुद्गल द्रव्यके सूक्ष्म तथा वादर पर्याय हैं ते अतीत भये अनागत-आगामी होयगे, भूत कहिये वर्तमान हैं सो ऐसा व्यवहारकाल होय है. भावार्थ—जो जीव पुद्गलके स्थूल सूक्ष्म पर्याय हैं ते अतीतभये तिनिकूं अतीत नाम कहा. बहुरि जो आगामी होयगे तिनिकूं अनागत नाम कहा. बहुरि जो वर्ते हैं तिनिकूं वर्तमान नाम कहा. इनिकूं जेतीवार लगै है तिसहीकूं व्यवहार काल नाम करि कहिये हैं. सो जघन्य तौ पर्यायकी स्थिति एक समय

मात्र है बहुरि मध्य उत्कृष्ट अनेक प्रकार है. तहां आकाशके एक प्रदेशतैं दूजे प्रदेशपर्यंत पुद्गलका परमाणु मन्दगतिकरि जाय तेता कालकूं समय कहिये. ऐसे जघन्ययुक्ताऽसंख्यात समयकी एक आवली कहिये, संख्यात आवलीके समूहको एक उस्वास कहिये, सात उच्छ्वासका एक स्तोक कहिये, सात स्तोकका एक लव कहिये, साढा अठतीस लवकी एक घटी कहिये, दोय घटीका मुहूर्त कहिये। तीस मूहूर्तका रात दिन कहिए, पनरै अहोरात्रिका पक्ष कहिये, दोय पक्षका मास कहिये, दोय मासका ऋतु कहिये, तीन ऋतुका अयन कहिये, दोय अयनका वर्ष कहिये, इत्यादि पल्यसागर कल्प आदि व्यवहार काल अनेक प्रकार है ॥ २२० ॥

आगे अतीत अनागत वर्तमान पर्यायनिकी संख्या कहैं हैं,—

तेसु अतीदा णंता अणंतगुणिदा य भाविपज्जाया ।

एक्को वि वट्टमाणो एत्तियमित्तो वि सो कालो ॥२२१॥

भाषार्थ—तिनि द्रव्यनिके पर्यायनिविषै अतीतपर्याय अनन्त हैं. बहुरि अनागत पर्याय तिनिं अन्नन्तगुणा हैं वर्तमान पर्याय एक ही है. सो जेता पर्याय है, तेता ही सो व्यवहार काल है. ऐसैं द्रव्यनिका निरूपण कीया—

अब द्रव्यनिकै कार्यकारणभावका निरूपण करैं हैं,—
पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दठ्वं ।

उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे गियमा ॥२२२॥

भाषार्थ—पूर्व परिणाम सहित द्रव्य है सो कारणरूप है बहुतरि उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य है सो कार्यरूप नियमकरि है ॥ २२२ ॥

आगे वस्तुकै तीन कालविषै ही कार्यकारणभावका निश्चय करै हैं,—

कारणकज्जविसेसा तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।

एक्केक्कम्मि य समये पुठुत्तरभावमासिज्ज ॥२२३॥

भाषार्थ—वस्तुनिकै पूर्व अर उत्तर परिणामकों पायकरि तीनूं ही कालविषै एक एक समयविषै कारण कार्यके विशेष होय हैं. भावार्थ—वर्त्तमान समयमें जो पर्याय है सो पूर्वसमय सहित वस्तुका कार्य है. तैसें ही सर्व पर्याय जाननी. ऐसैं समय २ कार्यकारणभावरूप है ॥ २२३ ॥

आगे वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करै हैं—
संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।

सव्वं पि अणेयंतं तत्तो भणिदं जिणिदेहिं ॥२२४॥

भाषार्थ—सर्व द्रव्य हैं ते तीनूं ही कालमें अनंतानंत हैं अनन्त पर्यायनिसहित हैं तातैं जिनेन्द्र देवने सर्व ही वस्तु अनेकांत कहिये अनंतधर्मस्वरूप कहा है ॥ २२४ ॥

आगे कहै हैं जो अनेकांतात्मक वस्तु है सो अर्थ क्रिया-कारी है,—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेइ णियमेण ।

बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसए लोए ॥२२५॥

भाषार्थ—जो वस्तु अनेकांत है अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियमकरि कार्य करै है, लोकविषै बहुतधर्मकरियुक्त पदार्थ है सो ही कार्य करनेवाला देखिये है। भावार्थ—लोक-विषै नित्य अनित्य एक अनेक भेद इत्यादि अनेक धर्म-युक्त वस्तु हैं सो कार्यकारी दीखै हैं जैसे माटीके घट आदि अनेक कार्य बणै हैं सो सर्वथा मांटी एक रूप तथा नित्य-रूप तथा अनेक अनित्य रूप ही होय तो घट आदि कार्य बणै नाहीं, तैसें ही सर्व वस्तु जानना ॥ २२५ ॥

आगे सर्वथा एकान्त वस्तुके कार्यकारीपणा नाहीं है ऐसैं कहै हैं,—

एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमित्तं पि ।

जं पुणु ण करेदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥२२६॥

भाषार्थ—बहुदि एकांत स्वरूप द्रव्य है सो लेशमात्र भी कार्यकू नाहीं करै है, बहुरि जो कार्य ही न करै सो कैसा द्रव्य है, वह तो—शून्यरूपसा है, भावार्थ—जो अर्थक्रियास्वरूप होय सो ही परमार्थरूप वस्तु कखा है अर जो अर्थक्रियारूप नाहीं सो आकाशके फूलकी ज्यों शून्यरूप है ॥ २२६ ॥

आगे सर्वथा नित्य एकांतविषै अर्थक्रियाकारीपणाका अभाव दिखावै हैं,—

परिणामेण विहीणं णिच्चं दढ्वं विणस्सदे णेयं ।

णो उप्पज्जदि य सया एवं कज्जं कहं कुणइ ॥२२७॥

भाषार्थ—परिणामकरिहीण जो नित्य द्रव्य, सो विनसे नहीं, तब कार्य कैसे करै ? अर जो उपजै विनसै तो नित्य-पणा नाहीं ठहरै. ऐसे कार्य न करै सो वस्तु नाहीं है २२७

आगे पुनः क्षणस्थायीके कार्यका अभाव दिखावै हैं—
पज्जयमित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं ।

अण्णइदढ्वविहीणं ण य कज्जं किं पि साहेदि ॥२२८॥

भाषार्थ— जो क्षणस्थायी पर्यायमात्र तत्त्व क्षणक्षणेमें अन्य अन्य होय ऐसा विनश्वर मानिये तो अन्वयीद्रव्यकरि रहित हूवा संता कार्य किछू भी नाहीं साथै है. क्षणस्थायी विनश्वरके काहेका कार्य ॥ २२८ ॥

आगे अनेकान्तवस्तुके कार्यकारणभाव बाणै है सो दिखावै हैं,—

णवणवकज्जविसेसा तीसु वि कालेसु होति वत्थूणं ।

एक्केक्कस्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२९॥

भाषार्थ—जीवादिक वस्तुनिकै तीनूही कालविषै एक एक समयविषै पूर्वउत्तरपरिणामका आश्रयकरि नवे नवे कार्यविशेष होय हैं नवे नवे पर्याय उपजै हैं ॥ २२९ ॥

आगे पूर्वोत्तरभावके कारणकार्यभावकूं दढ करै हैं—
पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दढ्वं ।

उत्तरपरिमाणजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥ २३० ॥

भावार्थ—पूर्वपरिणामकरियुक्त द्रव्य है सो तौ कारण-
भावकरि वत्तै है बहुरि सो ही द्रव्य उत्तरपरिणामकरि युक्त
होय तब कार्य होय है. यह नियमतै जाणूं. भावार्थ—जैसे
मांटीका पिंड तौ कारण है अर ताका घट बरदा सो कार्य
है. तैसें पहले पर्यायका स्वरूप कहि अब जीव पिछले पर्याय
सहित भया तब सो ही कार्यरूप भया. ऐसें नियम है ऐसें
वस्तुका स्वरूप कहिये है ॥ २३० ॥

अब जीव द्रव्यकै भी तैसें ही अनादिनिधन कार्यका-
रणभाव साधै हैं—

जीवो अणाइणिहणो परिणयमाणो हु णवणवं भावं ।
सामग्गीसु पवट्ठदि कज्जाणि समासदे पच्छा ॥ २३१ ॥

भावार्थ—जीव द्रव्य है सो अनादिनिधन है सो नवे
नवे पर्यायनिरूप प्रगट परिणामै है. सो पहले द्रव्यक्षेत्र काल
भावकी सामग्रीविषै वत्तै है. पीछें कार्यानिक्कं पर्यायनिक्कं प्राप्त
होयहै । भावार्थ—जैसें कोई जीव पहले शुभ परिणामरूप
प्रवर्तै पीछें स्वर्ग पावै तथा पहलै अशुभ परिणामरूप प्रवर्तै
पीछें नरक आदि पर्याय पावे ऐसें जानना ॥ २३१ ॥

आगे जीवद्रव्य अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावविषै तिष्ठया
ही नवे पर्यायरूप कार्यकूं करै ऐसें कहै हैं—

ससरूवत्थो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि ।

खित्ते एकस्मि ठिदो णियदब्बं संठिदो चेव ॥२३२॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो अपने चैतन्यस्वरूपविषै तिष्ठया अपने ही क्षेत्रविषै तिष्ठया अपने ही द्रव्यमें तिष्ठता अपने परिणामनरूप समयविषै अपनी पर्यायस्वरूप कार्यकूं साथै है. भावार्थ—परमार्थतैं विचारिये तब अपने द्रव्य क्षेत्रकालभावस्वरूप होता संता जीव पर्यायस्वरूप कार्यरूप परिणामै है पर द्रव्यक्षेत्रकालभाव हैं तो निमित्तमात्र हैं ॥ २३२ ॥

आगें अन्यस्वरूप होय कार्य करे तौ तामें दूषण दिखावे हैं—

ससरूवत्थो जीवो अण्णसरूवस्मि गच्छए जदि हि ।
अण्णुण्णमेलणादो इक्कसरूवं हवे सव्वं ॥ २३३ ॥

भाषार्थ—जो जीव अपने स्वरूपविषै तिष्ठता पर स्वरूपविषै जाय तौ परस्पर मिलनेतैं सर्व द्रव्य एकस्वरूप होय जाय, तहां बड़ा दोष आवे. सो एकस्वरूप कदाचित् होय नाहीं यह प्रगट है ॥ २३३ ॥

आगें सर्वथा एकस्वरूप माननेमें दूषण दिखावे हैं—
अहवा बंभसरूवं एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि ।
चंडालबंभणाणं तो ण विसेसो हवे कोई ॥२३४॥

भाषार्थ—जो सर्वथा एक ही वस्तु मानि ब्रह्मका स्वरूप रूप सर्व मानिये तौ ब्राह्मण अर चाण्डालका किछू भी भेद न ठहरे. भावार्थ—एक ब्रह्मस्वरूप सर्व जगत्कूं मानिये

तौ नानारूप न ठहरे, बहुरि अविद्याकरि नाना दीखता माने तौ अविद्या उत्पन्न कोनतैं भई कहिये ! जो ब्रह्मतैं भई कहिये तौ ब्रह्मतैं भिन्न भई कि अभिन्न भई, अथवा सत्स्वरूप है कि असत्स्वरूप है कि एकरूप है कि अनेक रूप है, ऐसैं विचार कीये कहूं ठहरना नहीं तातैं वस्तुका स्वरूप अनेकांत ही सिद्ध होय है सो ही सत्यार्थ है ॥ २३४ ॥

आगें अणुमात्र तत्त्वकूं माननेमें दूषण दिखावै हैं—
अणुपरिमाणं तच्च अंसविहीणं च मण्णदे जदि हि ।
तो संबन्धाभावो तत्तो वि ण कज्जसांसिद्धि ॥ २३५ ॥

भावार्थ—जो एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानिये अर अंशकरि रहित अणुपरिणाम तत्त्व मानिये तौ दोय अंशके तथा पूर्वोत्तर अंशके सम्बन्धका अभावतैं अणुमात्र वस्तुतैं कार्यकी सिद्धि नाहीं होय है, भावार्थ—निगंश क्षणिक निरन्वयी वस्तुके अर्थक्रिया होय नाहीं, तातैं सांश नित्य अन्वयी वस्तु कथंचित् मानना योग्य है ॥ २३५ ॥

आगें द्रव्यके एकत्वपणा निश्चय करै हैं—
सव्वाणं दढ्वाणं दव्वसरूवेण होदि एयत्तं ।
णियणियगुणभेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि

भावार्थ—सर्व ही द्रव्यनिके द्रव्यस्वरूपकरि तौ एकत्वपणा है बहुरि अपने अपने गुणके भेदकरि सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं, भावार्थ—द्रव्यका लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप

सत् है सो इस स्वरूपकरि तो सर्वके एकपणा है. बहुरि अपने अपने गुण चेतनपणा जडपणा आदि भेदरूप हैं. तातैं गुणके भेदतैं सर्व द्रव्य न्यारे २ हैं. तथा एक द्रव्यके त्रिका-लवर्ती अनन्तपर्याय हैं सो सर्व पर्यायनिविषै द्रव्य स्वरूपकरि तो एकता ही है. जैसे चेतनके पर्याय सर्व ही चेतन स्वरूप हैं. बहुरि पर्याय अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न भी हैं. भिन्न कालवर्ती भी हैं. तातैं भिन्न २ भी कहिये. तिनके प्रदेश भेद भी नाहीं तातैं एक ही द्रव्यके अनेक पर्याय हो हैं यामें विरोध नाहीं ॥ २३६ ॥

आगें द्रव्यकें गुणपर्यायस्वभावपणा दिखावै हैं,—

जो अत्थो पडिसमयं उत्पादव्ययध्रुवत्तसम्भावो ।

गुणपञ्जयपरिणामो सत्तो सो भण्णदे समये ॥२३७॥

भाषार्थ—जो अर्थ कहिये वस्तु है सो समय समय उत्पाद व्यय ध्रुवपणाके स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्त्व सिद्धांतविषै कहै हैं. भावार्थ—जे जीव आदि वस्तु हैं ते उपजना विनसना अर धिर रहना इन तीनों भाव-मयी हैं. अर जो वस्तु गुणपर्याय परिणामस्वरूप है सो ही सत् हैं. जैसे जीवद्रव्यका चेतनागुण है तिसका स्वभाव विभावरूप परिणमन है. तैसें समय समय परिणामें हैं ते पर्याय हैं. तैसें ही पुद्गलका स्पर्श रस गन्धवर्ण गुण हैं ते स्वभावविभावरूप समय समय परिणामें हैं ते पर्याय हैं. ऐसें सर्व द्रव्य गुणपर्यायपरिणामस्वरूप प्रगटैं हैं ।

आगें द्रव्यनिके व्यय उत्पाद कहा है सो कहै हैं,—
 पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो ।
 वत्थुविणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ ॥२३८॥

भाषार्थ—जो वस्तुका परिणाम समयसमयप्रति पहलै तो विनसै है अर अन्य उपजै है सो पहला परिणामरूप वस्तुका तौ नाश है, व्यय है. अर अन्य दूसरा परिणाम उपज्या ताकूं उत्पाद कहिये. ऐसैं व्यय उत्पाद होय हैं ।

आगें द्रव्यकै ध्रुवपणाका निश्चय कहै हैं,—
 णो उप्पजदि जीवो दठवसरूवेण णेय णस्सेदि ।
 तं चेव दठवमित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स ॥ २३९ ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो द्रव्यस्वरूपकरि नाशकूं प्राप्त न होय है अर नाहीं उपजै है सो द्रव्यमात्रकरि जीवकै नित्यपणा जाणूं. भावार्थ—यह ही ध्रुवपणा है जो जीव सत्ता अर चेतनताकरि उपजै विनसै नाहीं, नवा जीव कोई नाहीं उपजै है विनसै भी नाहीं है ॥ २३९ ॥

आगें द्रव्यपर्यायका स्वरूप कहै हैं,—
 अण्णइरूवं दठवं विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ ।
 दठवं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सतदं ॥२४०॥

भाषार्थ—जीवादिक वस्तु अन्वयरूपाकरि द्रव्य है सो ही विशेषकरि पर्याय है. बहुरि विशेषरूपकरि द्रव्य भी निरंतर उपजै विनसै हैं. भावार्थ—अन्वयरूप पर्यायनिविधै सामान्य

भावकों द्रव्य कहिये. अर विशेष भाव हैं ते पर्याय हैं. सो विशेषरूपकरि द्रव्य भी उत्पादव्ययस्वरूप कहिये. ऐसा नहीं कि पर्याय द्रव्यतैं जुदा ही उपजै विनसै है किंतु अभेद विवक्षातैं द्रव्य ही उपजै विनसै है. भेदविवक्षातैं जुदे भी कहिये.

आगैं गुणका स्वरूप कहै हैं,—

सरिसो जो परिमाणो अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि ।
सो सामण्णसरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१॥

भाषार्थ—जो द्रव्यका परिणाम सदृश कहिये पूर्व उत्तर सर्व पर्यायनिविषै समान होय अनादिनिधन होय सो ही गुण है. सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नहीं है. भावार्थ—जैसैं जीवद्रव्यका चैतन्य गुण सर्व पर्यायनिमें विद्यमान है अनादिनिधन है सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नहीं है. विशेषरूपकरि पर्यायनिमें व्यक्तिरूप होय ही है, ऐसा गुण है. तैसैं ही अपैना अपना साधारण असाधारण गुण सर्व द्रव्यनिमें जानना ।

आगैं कहै हैं गुणाभास विशेषस्वरूपकरि उपजै विनसै है गुणपर्यायनिका एकपणा है सो ही द्रव्य है,—

सो वि विणस्सदि जायदि विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु ।
दव्वगुणपज्जयाणं एयत्तं वत्थु परमत्थं ॥२४२॥

भाषार्थ—जो गुण है सो भी द्रव्यनिविषै विशेषरूपकरि

उपजै विनसै है ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिका एकत्वगुणा है सो ही परमार्थभूत वस्तु है. भावार्थ-गुणका स्वरूप ऐसा नहीं जो वस्तुतै न्यारा ही है. नित्यरूप सदा रहै है. गुण गुणीके कथंचित् अभेदपेणा है, तातैं जे पर्याय उपजै विनसै हैं ते गुणगुणीके विकार हैं तातैं गुण उपजते विनसते भी कहिये. ऐसा ही नित्यानित्यात्मक वस्तुका स्वरूप है. ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिका एकता सो ही परमार्थरूप वस्तु है २४२

आशंका उपजै है जो द्रव्यनिविषै पर्याय विद्यमान उपजै है कि अविद्यमान उपजै है ? ऐसी आशंकाकूं दूर करैहैं,—

जदि दठवे पज्जाया विविज्जमाणा तिरोहिदा संति ।
ता उत्पत्ती विहला पडपिहिदे देवदत्तिव्व ॥२४३॥

भाषार्थ—जो द्रव्यविषै पर्याय हैं ते भी विद्यमान हैं अरु तिरोहित कहिये ठके हैं ऐसा मानिये तो उत्पत्ति कहना विफल है, जैसे देवदत्त कपड़ेसूं ठक्या या ताकों उघ डचा तब कहैं कि यह उपज्या सो ऐसा उपजना कहना तो परमार्थ नहीं विफल है, तैसें द्रव्यपर्याय ठकीकों उघडीकों उपजती कहना परमार्थ नहीं, तातैं अविद्यमानपर्यायकी ही उत्पत्ति कहिये ॥ २४३ ॥

सठवाण पज्जयाणं अविज्जमाणाण होदि उत्पत्ती ।
कालाईलद्धीए अणाइणिहणम्मि दठवम्मि ॥२४४॥

भाषार्थ—अनादि निधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धिकरि सर्व पर्यायनिकी अविद्यमानकी ही उत्पत्ति है. भावार्थ—अनादिनिधन द्रव्यविषै काल आदि लब्धिकरि पर्याय अविद्यमान कहिये अणछती उपजै हैं. ऐनै नाहीं कि सर्व पर्याय एक ही समय विद्यमान हैं ते ठकते जाय हैं. समय समय क्रमतैं नवे नवे ही उपजै हैं. द्रव्य त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायनिका समुदाय है, कालभेदकरि क्रमतैं पर्याय होय हैं ॥

आगे द्रव्य पर्यायनिकै कथंचित् भेद कथंचित् अभेद दिखावै हैं,—

दब्बाणपज्जयाणं धम्मविवक्खाइ कीरए भेओ ।

वत्थुसरूवेण पुणो ण हि भेओ सक्कदे काउं ॥२४५॥

भाषार्थ—द्रव्यके अर पर्यायके धर्मधर्मीकी विवक्षाकरि भेद कीजिये है बहुरि वस्तुस्वरूपकरि भेद करनेकूं नाहीं समर्थ हूजिये है. भावार्थ—द्रव्यपर्यायकै धर्म धर्मीकी विवक्षाकरि भेद करिये है. द्रव्य धर्मी है पर्याय धर्म है बहुरि वस्तुकरि अभेद ही है. केई नैयायिकादिक धर्मधर्मीके सर्वथा भेद मानै हैं तिनका मत प्रमाणबाधित है ॥ २४५ ॥

आगे द्रव्यपर्यायकै सर्वथा भेद मानै हैं तिनकूं दूषण दिखावै हैं,—

जदि वत्थुदो विभेदो पज्जयदब्बाण मण्णसे मूठ ।

तो णिरवेक्खा सिद्धी दोहं पि य पावदे णियमा ॥२४६॥

भाषार्थ—द्रव्य पर्यायकै भेद मानै ताकूं कहै हैं कि—हे मूढ ! जो तू द्रव्यकै अर पर्यायकै वस्तुतैं भी भेद मानै है तो द्रव्य अर पर्याय दोऊकै निरपेक्षासिद्धि नियमकरि प्राप्त होय है. भावार्थ—द्रव्यपर्याय न्यारे न्यारे वस्तु ठहरै हैं. धर्मधर्मीपणा नहीं ठहरै है ॥ २४६ ॥

आगे विज्ञानको ही अद्वैत कहै हैं अर बाह्य पदार्थ नहीं मानै है तिनकूं दूषण बतावै हैं,—

जदि सव्वमेव णाणं णाणारूवेहिं संठिदं एककं ।

तो ण वि किंपि वि णेयं णेयेण विणा कहं णाणं ॥ २४७ ॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु एक ज्ञान ही है सो ही नानारूप करि स्थित है तिष्ठै है. तो ऐसै मानै जेय किछू भी न ठहरया. बहुरि जेय विना ज्ञान कैसें ठहरे. भावार्थ—विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती कहै हैं जो ज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो ही नानारूप तिष्ठै है. ताकूं कहिये जो ज्ञानमात्र ही है तो जेय किछू भी नहीं. अर जेय नहीं तब ज्ञान कैसें कहिये ? जेयकूं जाणै सो ज्ञान कहावे. जेयविना ज्ञान नाही. ॥ २४७ ॥

घटपडजडदठ्ठाणि हि णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।

णाणं जाणेदि यदो अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥ २४८ ॥

भाषार्थ—घट पट आदि समस्त जडद्रव्य जेयस्वरूपकरि भलेप्रकार प्रसिद्ध हैं. तिनकूं ज्ञान जाणै है. तातैं ते आत्मातैं ज्ञानतैं भिन्नरूप न्यारे तिष्ठै हैं । भावार्थ—जेयपदार्थ जडद्रव्य

न्यारे न्यारे आत्मातैं भिन्नरूप प्रसिद्ध हैं, तिनकूं लोप कैसें करिये ? जो न मानिये तो ज्ञान भी न ठहरे, जाने बिना ज्ञान काहेका ? ॥ २४८ ॥

जं सव्वलोयसिद्धं देहं गेहादिवाहिरं अत्थं ।

जो तंपि णाणमण्णादि ण मुण्णादि सो णाणणामं पि ॥

भाषार्थ—जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध हैं तिनकूं भी जो ज्ञान ही माने तो वह वादी ज्ञानका नाम भी जाने नहीं, भावार्थ—बाह्य पदार्थकूं भी ज्ञान ही माननेवाला ज्ञानका स्वरूप नहीं जाणया सो तो दूर ही रहो ज्ञानका नाम भी नहीं जानै है ॥ २४९ ॥

आगे नास्तित्ववादीके प्रति कहै हैं,—

अच्छीहिं पिच्छमाणो जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं ।

जो भण्णादि णत्थि किंचि विं सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो ॥

भाषार्थ—जो नास्तिक वादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके अर्थजिकूं प्रत्यक्ष नेत्रनिकरि देखतो संतो भी कहै किछू भी नहीं है सो असत्यवादीनिमें महा असत्यवादी है भावार्थ—दीखती वस्तुकूं भी नहीं बतावै सो महाभूटा है ।

जं सव्वं पि य संतं तासो वि असंतउं कहं होदि ।

णत्थिन्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुण्णादि ॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु सत्वरूप है विद्यमान है सो वस्तु

असत्परूप अविद्यमान कैसें होय अथवा किछू भी नाहीं है
ऐसौ तो शून्य है ऐसा भी कैसें जानै. भावार्थ—छती वस्तु
अणछती कैसें होय तथा किछू भी नाहीं है तो ऐसा कहने-
वाला जाननेवाला भी नाहीं ठहरया. तब शून्य है ऐसा
कौन जाणै ॥ २५१ ॥

आगे इस ही गाथाका पाठान्तर है सो इस प्रकार है,
जदि सत्त्वं पि असंतं तासो वि य संतउं कहं भणदि ।
णत्थित्ति किं पि तच्चं अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥

भावार्थ—जो सर्व ही वस्तु असत् है तो वह ऐसें कहने-
वाला नास्तिकवादी भी असत्परूप ठहरया तब किछू
भी तत्त्व नाही है ऐसें कैसें कहै है. अथवा कहै भी नाही
सो शून्य है ऐसें कैसें जानै है. भावार्थ—आप छता है और
कहै कि किछू भी नाहीं सो यह कहना तो बड़ा अज्ञान है.
तथा शून्यतत्त्व कहना तो प्रज्ञाप ही है कहनेवाला ही नाही
तब कहै कौन ? सो नास्तिकवादी प्रज्ञापि है ॥ २५१ ॥

किं बहुणा उत्तेण य जित्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था २५२

भावार्थ—बहुत कहनेकरि कहा ? जेता नाम है तेता ही नि-
यमकरि पदार्थ परमार्थ रूप हैं . भावार्थ—जेते नाम हैं तेते स-
त्यार्थ पदार्थ हैं. बहुत कहनेकरि पूरी पदो. ऐसें पदार्थका
स्वरूप कहया ॥ २५२ ॥

अब तिनि पदार्थनिका जाननेवाला ज्ञान है ताका स्वरूप कहै हैं,—

णाणाधम्महिं जुदं अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो ।

जं जाणेदि सजोगं तं णाणं भण्णए समये ॥ २५३ ॥

भाषार्थ—जो नाना धर्मनि सहित आत्मा तथा पर द्रव्यनिकुं अपने योग्यकूं जाणै सो निश्चयतैं सिद्धान्तविषै ज्ञान कहिये. भावार्थ—जो आपकू तथा परकूं अपने आवरणके अयोपशम तथा क्षयके अनुसार जाननेयोग्य पदार्थकूं जानै सो ज्ञान है. यह सामान्य ज्ञानका स्वरूप कहया ॥ २५३ ॥

अब सर्वप्रत्यक्ष जो केवलज्ञान ताका स्वरूप कहै हैं,—
जं सव्वं पि पयासदि दव्वपज्जायसंजुदं लोयं ।

तह य अलोयं सव्वं तं णाणं सव्वपच्चक्खं ॥ २५४ ॥

भाषार्थ—जो ज्ञान द्रव्यपर्यायसंयुक्त लोककूं तथा अलोककूं सर्वकूं प्रकाशकै जाणै सो सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है ॥

आगे ज्ञानकूं सर्वगत कहै हैं—

सव्वं जाणदि जह्मा सव्वगयं तं पि वुच्चदे तह्मा ।

ण य पुण विसरदि णाणं जीवं चइऊण अण्णत्थ २५५

भाषार्थ—जातैं ज्ञान सर्व लोकालोककूं जाणै है तातैं ज्ञानकूं सर्वगत भी कहिये है. बहुरि ज्ञान है सो जीवकूं छोडि करि अन्य जे ज्ञेय पदार्थ तिनिविषै न जाय है. भावार्थ—ज्ञान सर्व लोकालोककूं जानै है. यातैं सर्वगत तथा सर्वव्याप-

क कहिये है परन्तु जीवद्रव्यका गुण है तातैं जीवकू छोड़ि
अन्य पदार्थमें जाय नाही है ॥ २५५ ॥

आगें ज्ञान जीवके प्रदेशनिविषै तिष्ठता ही सर्वकूं जानै है
ऐसैं कहै हैं,—

णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाणदेसम्मि ।
णियणियदेसठियाणं ववहारो णाणणेयाणं ॥ २५६ ॥

भाषार्थ—ज्ञान है सो ज्ञेयविषै नाही जाय है. बहुरि ज्ञेय
भी ज्ञानके प्रदेशनिविषै नाही आवै है. अपने अपने प्रदेश-
निविषै तिष्ठै है तौऊ ज्ञानकै अर ज्ञेयकै ज्ञेयज्ञायक व्यवहार
है. भावार्थ—जैसैं दर्पण अपने ठिकाणै है. घटादिक वस्तु अ-
पने ठिकाणै है. तौऊ दर्पणकी स्वच्छता ऐसी है मानूं दर्प-
णविषै घट आय ही बैठै है. ऐसैं ही ज्ञानज्ञेयका व्यवहार
जानना ॥ २५६ ॥

आगें मनःपर्यय अवधिज्ञान अर मति श्रुतज्ञानका सा-
मर्थ्य कहै हैं,—

मणपज्जयविण्णाणं ओहीणाणं च देसपचक्खं ।
मइसुयणाणं कमसो विसदपरोक्खं परोक्खं च २५७

भाषार्थ—मनःपर्ययज्ञान बहुरि अवधिज्ञान ए दोऊ तौ
देशप्रत्यक्ष हैं. बहुरि मतिज्ञान है सो विशद कहिये प्रत्यक्ष
भी है परोक्ष भी है. अर श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है. भा-
वार्थ—मनःपर्यय अवधिज्ञान तो एकदेशप्रत्यक्ष हैं जातैं जेते

अपना विषय है तेते विशद स्पष्ट जानै हैं सर्वकूं न जानै,
तातैं एकदेश कहिये. बहुरि मतिज्ञान है सो इन्द्रियमनकरि
उपजै है तातैं व्यवहारकरि इन्द्रियनिके संबंधतैं विशद भी
कहिये. ऐसैं प्रत्यक्ष भी है परमार्थतैं परोक्ष ही है. बहुरि
श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है जातैं यह विशद स्पष्ट जानै नाहीं ॥

आगें इन्द्रियज्ञान योग्य विषयकूं जानै है ऐसैं कहै हैं.—

इंद्रियजं मादिणाणं जुग्गं जाणेदि पुग्गलं दब्बं ।

माणसणाणं च पुणो सुयविसयं अक्खविसयं च ॥

भाषार्थ—इन्द्रियनितैं उपज्या जो मतिज्ञान सो अपने
योग्य विषय जो पुद्गल द्रव्य ताकूं जाणै है. जिस इन्द्रिय-
का जैसा विषय है तैसैं ही जाणै है. बहुरि मनसम्बन्धी ज्ञान
है सो श्रुतविषय कहिये शास्त्रका वचन सुणै ताके अर्थकूं
जानै है. बहुरि इन्द्रियकरि जानिये ताकूं भी जानै है ॥२५८॥

आगें इन्द्रियज्ञानके उपयोगकी प्रवृत्ति अनुक्रमतैं है ऐसैं
कहै हैं,—

पंचेदियणाणाणं मज्झे एगं च होदि उवजुत्तं ।

मणणाणे उवजुत्ते इंद्रियणाणं ण जाएदि ॥ २५९ ॥

भाषार्थ—पांचूं ही इंद्रियनिकरि ज्ञान हो है सो त्रिनि-
मेंसूं एकेन्द्रियद्वारकरि ज्ञान उपयुक्त होय है. पांचूं ही एक
काल उपयुक्त होय नाहीं. बहुरि मनःज्ञानकरि उपयुक्त होय
तब इन्द्रियज्ञान नाहीं उपजै है. भाषार्थ—इन्द्रिय मनसम्बन्धी

जो ज्ञान हैं सो तिनिकी प्रवृत्ति युगपत् नाहीं एककाल एक ही ज्ञानसुं उपयुक्त होय है. जब यह जीव घटकुं जानैं तिस काल पटकुं नाहीं जानैं, ऐसैं क्रमरूप ज्ञान है ॥ २५९ ॥

आगे इन्द्रियमनमन्त्रन्धी ज्ञानकी क्रमतैं प्रवृत्ति कही तहां आशंका उपजै है जो इन्द्रियनिका ज्ञान एककाल है कि नाहीं ? ताकी आशंका दूरि करनेकों कहै हैं,—

एके काले एगं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।

णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चंति ॥ २६० ॥

भावार्थ—जीवकै एक कालमें एक ही ज्ञान उपयुक्त कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति होय है. बहुरिलब्धिस्वभावकरि एक काल नाना ज्ञान कहे हैं. भावार्थ—भाव इन्द्रिय दोय प्रकारकी कही है. लब्धिरूप, उपयोगरूप. तहां ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं आत्माकै जाननेकी शक्ति होय सो लब्धि कहिये सो तो पांच इन्द्रिय अग मन द्वारा जाननेकी शक्ति एक कालही तिष्ठै है. बहुरि तिनिकी व्यक्तिरूप उपयोगकी प्रवृत्ति है सो ज्ञेयसुं उपयुक्त होय है तब एक काल एकहीसुं होय है ऐसी ही क्षयोपशमका योग्यता है ॥ २६० ॥

आगे वस्तुकै अनेकात्मपणा है तौऊ अपेक्षातैं एकात्मपणा भी है ऐसैं दिखावे हैं,—

जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।

सुयणाणेण णयेहिं य णिरविक्खं दीसएणेव ॥ २६१ ॥

भाषार्थ—जो वस्तु अनेकान्त है सो अपेक्षासहित एकान्त भी है तहां श्रुतज्ञान जो प्रमाण ताकरि साधिये तो अनेकान्त ही है. बहुरि श्रुतज्ञान प्रमाणके अंश जे नय तिनिकरि साधिये तब एकान्त भी है. सो अपेक्षारहित नाहीं है जातैं निरपेक्ष नय मिथ्या हैं. निरपेक्षातैं वस्तुका रूप नाहीं देखिये है. भावार्थ—प्रमाण तौ वस्तुके सर्व धर्मकों एक काल साथै है अर नय हैं ते एक एक धर्महीको ग्रहण करै हैं तातैं एकनयके दूसरी नयकी सापेक्षा होय तौ वस्तु सधे अर अपेक्षारहित नय वस्तुकों साथे नाहीं, तातैं अपेक्षातैं वस्तु अनेकान्त भी है ऐसे जानना ही सम्यग्ज्ञान है ॥२६१॥

आगैं श्रुतज्ञान परोक्षपणौ सर्वकू प्रकाशौ है यह कहै हैं,—
सर्वं पि अण्यंतं परोक्षरूपेण जं पयासेदि ।

तं सुयणाणं भण्णदि संसयपहुदीहिं परिचित्तं ॥२६२॥

भाषार्थ—जो ज्ञान सर्व वस्तुकू अनेकान्त परोक्षरूपकरि प्रकाशौ जाणै कहै सो श्रुतज्ञान है । सो कैसा है संशयविपर्यय अनध्यवसायकरि रहित है । ऐसा मिद्धांतमें कहे हैं । भावार्थ—जो सर्व वस्तुकू परोक्षरूपकरि अनेकान्त प्रकाशौ सो श्रुतज्ञान है । शास्त्रके वचन सुननेतैं अर्थक जाने सो परोक्ष ही जाने अर शास्त्रमें सर्व ही वस्तुका अनेकान्तात्मक स्वरूप कहा है सो सर्व ही वस्तुकू जाने । बहुरि गुरुनिके उपदेशपूर्वक जाने तब संशयादिक भी न रहै ॥ २६२ ॥

आगैं श्रुतज्ञानके विकल्प जे भेद ते नय हैं तिनिका

स्वरूप कहै हैं,—

लोयाणं व्यवहारं धम्मविवक्खाइ जो-पसाहेदि ।

सुयणाणस्स त्रियप्पो सो वि णओ लिंगसंभूदो २६३

भाषार्थ—जो लोकनिका व्यवहारकूं वस्तुका एक धर्मकी विवक्षाकरि साथै सो नय है सो कैसा है श्रुतज्ञानका विकल्प कहिये भेद है बहुरि लिंगकरि उपज्या है । भावार्थ—वस्तुका एक धर्मकी विवक्षा ले लोकव्यवहारकूं साथै सो श्रुतज्ञानका अंश नय है. सो साध्य जो धर्म ताकूं हेतुकरि साथै है. जैसे वस्तुका सत् धर्मकूं ग्रहणकरि याकूं हेतुकरि साथै जो अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावतैं वस्तु सत्स्वरूप है ऐसैं नय हेतुतैं उपजै है ।

आगें एक धर्मकूं नय कैसैं ग्रहण करै है सो कहै हैं,—
णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं ।

तस्सेयविवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं २६४

भाषार्थ—नाना धर्मकरि युक्त पदार्थ हैं तौऊ एक धर्मरूप पदार्थको कहै जातैं एक धर्मकी जहां विवक्षा करै तहां तिसही धर्मकूं कहै अवशेष सर्व धर्मकी विवक्षा नाहीं करै है. भावार्थ—जैसे जीव वस्तुविषै अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व अनेकत्व चेतनत्व अमूर्तत्व आदि अनेक धर्म हैं तिनिमें एक धर्मकी विवक्षाकरि कहै जो जीव चेतनस्वरूप ही है इत्यादि, तहां अन्य धर्मकी विवक्षा नाहीं करै

तहां ऐसा न जानना जो अन्यधर्मनिका अभाव है किंतु प्रयोजनके आश्रय एक धर्मकूं मुख्यकरि कहै है, अन्यकी विवक्षा नाहीं है ।

आगें वस्तुका धर्मकूं अर तिसके वाचक शब्दकूं अर तिसके ज्ञानकूं नय कहै हैं,—

सो चिय इक्को धम्मो वाचयसदो दि तस्स धम्मस्स ।
तं जाणदि तं णाणं ते तिण्णि वि णयविसेसा य २६५

भाषार्थ—जो वस्तुका एक धर्म बहुरि तिस धर्मका वाचक शब्द बहुरि तिस धर्मकूं जानने वाला ज्ञान ए तीनू ही नयके विशेष हैं. भावार्थ—वस्तुका ग्राहक ज्ञान अर ताका वाचक शब्द अर वस्तु इनकूं जैसे प्रमाणस्वरूप कहिये तैसे ही नय कहिये ।

आगें पूछै हैं कि वस्तुका एक धर्म ही ग्रहण करै ऐसा जो एक नय ताकूं मिथ्यात्व कैसे कहा है ताका उत्तर कहै हैं,—

ते साविक्खा सुणया णिराविक्खा ते वि दुण्णया होंति
सयलववहारसिद्धी सुणयादो होदि णियमेण २६६

भाषार्थ—ते पहले कहे जे तीन प्रकार नय ते परस्पर अपेक्षासहित होय तब तौ सुनय हैं. बहुरि ते ही जब अपेक्षारहित सर्वथा एक एक ग्रहण कोजै तब दुर्नय हैं बहुरि सुनयनितैं सर्व व्यवहार वस्तुके स्वरूपकी सिद्धि होय है. भावा-

र्थ-नय हैं ते सर्व ही सापेक्ष तौ सुनय हैं. निरपेक्ष कुनय हैं. तहां सापेक्षतैं सर्व वस्तु व्यवहारकी सिद्धि है, सम्यग्ज्ञानस्वरूप है. अर कुनयनितैं सर्व लोकव्यवहारका लोप होय है, मिथ्याज्ञानरूप है ।

आगें परोक्ष ज्ञानमें अनुमान प्रमाणभी है ताका उदाहरणपूर्वक स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं ।

तं अणुमाणं भण्णदि त पि णयं बहुविहं जाण २६७

भाषार्थ—जो इन्द्रियनिके व्यापार अर कायकी चेष्टानिकरि शरीरमें जीवकूं जाणये सो अनुमान प्रमाण कहिये है सो यह अनुमान ज्ञान भी नय है सो अनेक प्रकार है. भावार्थ—पहलैं श्रुतज्ञानके विकल्प नय कहे थे, इहां अनुमानका स्वरूप कहा जो शरीरमें तिष्ठता जीव प्रत्यक्ष ग्रहणमें नाहीं आवै यातैं इन्द्रियनिका व्यापार स्पर्शना स्वादलेना बोलना सूंघना सुनना देखना आदि चेष्टा गमन आदिक चिन्हनितैं जानिये कि शरीरमें जीव है सो यह अनुमान है जातैं साधनतैं साध्यका ज्ञान होय सो अनुमान कहिये. सो यह भी नय ही है. परोक्ष प्रमाणके भेदनिमें कह्या है सो परमार्थकरि नय ही है. सो स्वार्थ परमार्थके भेदतैं तथा हेतु चिन्हनिके भेदतैं अनेक प्रकार कह्या है ॥ २६७ ॥

आगें नयके भेदनिंकु कहै हैं,—

सो संगहेण इक्को दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।

तोसैं च विसेसादो णइगमपहुदी हवे णाणं २६८

भाषार्थ—सो नय संग्रहकरि कहिये सामान्यकरि तौ एक है. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदकरि दोय प्रकार है. बहुरि विशेषकरि तिनि दोऊनिके विशेषतैने गमनयकूं आदि देकरि हैं सो नय हैं ते ज्ञान ही हैं ॥ २६८ ॥

आगें द्रव्यनयका स्वरूप कहै हैं,—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।

णाणाजुत्तिबलादो दव्वत्थो सो णओ होदि २६९

भाषार्थ—जो नय वस्तुकूं विशेषरूपनितैं अविनाभूत सामान्य स्वरूपकूं नाना प्रकार युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो विशेषविना सामान्य नाहीं ऐसे सामान्यकूं युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है ॥ २६९ ॥

आगें पर्यायार्थिक नयकूं कहै हैं,—

जो साहेदि विसेसे बहुविहसामण्ण संजुदे सव्वे ।

साहणलिंगवसादो पज्जयविसयो णयो होदि २७०

भाषार्थ—जो नय अनेक प्रकार सामान्यकरि सहित सर्व विशेष तिनिके साधनका जो लिंग ताके वशतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. भावार्थ—सामान्य सहित विशेषनिकूं हेतुतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. जैसें सत् सामान्य करि स-

हित चेतन अचेतनपणा विशेष है, बहुरि चित् सामान्यकरि संसारी सिद्ध जीवपणा विशेष है, बहुरि संसारीपणा सामान्यकरिसहित त्रस यावर जीवपणाविशेष है इत्यादि. बहुरि अचेतन सामान्यकरिके सहित पुद्गल आदि पांच द्रव्यविशेष हैं. बहुरि पुद्गलसामान्यकरिसहित अणु स्कन्ध घट पट आदि विशेष हैं इत्यादि पर्यायार्थिक नय हेतुतैं साधै है ॥ २७० ॥

आगें द्रव्यार्थिक नयका भेदनिक्कू कहै हैं तहां प्रथमही नैगम नयकू कहै हैं,--

जो साहेदि अदीदं वियप्परूवं भविस्समत्थं च ।

संपडिकालाविट्ठं सो हु णयो णेगमो णेयो ॥ २७१ ॥

भाषार्थ—जो नय अतीत तथा भविष्यत तथा वर्तमानकू विकल्परूपकरि संकल्पमात्र साधै सो नैगम नय है. भावार्थ—द्रव्य है सो तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप है ताकू अपना विषयकरि अतीतकाल पर्यायकू भी वर्त्तमानवत् संकल्पमें ले आगामी पर्यायकू भी वर्त्तमानवत् संकल्पमें ले वर्त्तमानमें निष्पन्नकू तथा अनिष्पन्नकू निष्पन्नरूप संकल्पमें ले ऐसे ज्ञानकू तथा वचनकू नैगम नय कहिये है. यक्के भेद अनेक हैं. सर्वनयके विषयकू मुख्य गौणकरि अपना संकल्परूप विषय करै है. इहां उदाहरण ऐसा—जैसैं इस मनुष्य नामा जीव द्रव्यकै संसार पर्याय है अर सिद्धपर्याय है यह मनुष्य पर्याय है ऐसैं कहैं । तहां संसार अतीत अनागत वर्त्तमान तीन काल सम्बन्धी भी है, सिद्धपणा अनागत ही है, मनुष्यपणा वर्त्त-

मान ही है परन्तु इस नयके वचनकरि अभिप्रायमें विद्यमान संकल्पकरि परोक्ष अनुभवमें ले कहैं कि या द्रव्यमें मेरे ज्ञानमें अव्यार यह पर्याय भासै है॥ ऐसे संकल्पक नैगम नयका विषय कहिये. इनमेंसुं मुख्य गौण कोईकूं कहैं ।

आगें संग्रहनयकूं कहै हैं,—

जो संगहेदि सव्वं देसं वा विविहदव्वपज्जायं ।

अणुगमालिंगविसिट्ठं सो वि णयो संगहो होदि ॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुकूं तथा देश कहिये एक वस्तुके भेदकूं अनेक प्रकार द्रव्यपर्यायसहित अन्वय लिंगकरि विशिष्ट संग्रह करै, एकस्वरूप कहै, सो संग्रह नय है. भावार्थ—सर्व वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण सत्करि द्रव्य पर्यायनिसुं अन्वयरूप एक सत्पात्र है ऐसे कहै, तथा सामान्य सत्स्वरूप द्रव्य मात्र है, तथा विशेष सत्स्वरूप पर्याय मात्र है तथा जीव वस्तु चित् सामान्यकरि एक है तथा सिद्धत्व सामान्यकरि सर्व सिद्ध एक है तथा संसारित्व सामान्यकरि सर्व संसारी जीव एक है इत्यादि तथा अजीव सामान्यकरि पुद्गलादि पांच द्रव्य एक अजीव द्रव्य है तथा पुद्गलत्व सामान्यकरि अणु सूक्ष्म घटपटादि एक द्रव्य है इत्यादि संग्रहरूप कहै सो संग्रह नय है ।

आगें व्यवहार नयकूं कहै हैं,—

जो संगहेण गहिदं विसेसरहिदं पि भेददे सददं ।

परमाणूपज्जंतं व्यवहारणओ हवे सो वि ॥ २७३ ॥

भाषार्थ—जो नय संग्रह नयकरि विशेषरहित वस्तुकुं ग्रहण किया या, ताकूं परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदै सो व्यवहार नय है. भावार्थ—संग्रह नय सर्व सत् सर्वकूं कहथा तहां व्यवहार भेद करै सो सत्द्रव्यपर्याय है. बहुरि संग्रह द्रव्य सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार नय भेद करै. द्रव्य जीव अजीव दोय भेदरूप है बहुरि संग्रह जीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार भेद करै। जीव संसारी सिद्ध दोय भेदरूप है इत्यादि। बहुरि पर्यायसामान्यकूं संग्रहण करै तहां व्यवहार भेद करै पर्याय अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय भेदरूप है तैसे ही संग्रह अजीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहारनय भेद करि अजीव पुद्गलादि पंच द्रव्य भेदरूप है, बहुरि संग्रह पुद्गल सामान्यकूं ग्रहण करै तहां व्यवहारनय अणु स्कंध घट पट आदि भेदरूप कहै ऐसैं जाकूं संग्रह ग्रहै तामें भेद करता जाय तहां फेरि भेद न होय सकै तहां ताई संग्रह व्यवहारका विषय है. ऐसैं तीन द्रव्यार्थिक नयके भेद कहे ॥ २७३ ॥

अब पर्यायार्थिकके भेद कहै हैं तहां प्रथम ही ऋजुसूत्र नयकूं कहै हैं,—

जो वट्टमाणकाले अत्थपज्जायपरिणदं अत्थं ।

संतं साहदि सव्वं तं वि णयं रिजुणयं जाण २७४

भाषार्थ—जो नय वर्त्तमान कालविषै अर्थ पर्यायरूप परि-

आया जो अर्थ ताहि सर्वकू सत्वरूप साथै सो ऋजुसूत्र नय है-
 भावार्थ—वस्तु समय समय परिणमै है सो एक समय वर्त्तमान
 पर्यायकू अर्थपर्याय कहिये है. सो या ऋजुसूत्र नय का विष-
 य है. निस मात्र ही वस्तुकों कहै है. बहुरि घडी मुहूर्त्त आदि
 कालकों भी व्यवहारमें वर्त्तमान कहिये है सो तिस वर्त्तमान
 कालस्यायी पर्यायकों भी साथै तातैं स्थूल ऋजुसूत्र संग्राहै.
 ऐसैं तीन तौ पूर्वोक्त द्व्यार्थिक अर एक ऋजुसूत्र ए च्यारि
 नय तौ अर्थनय कहिये हैं ॥ २७४ ॥

आगैं तीन शब्दनय हैं तिनिकों कहै हैं तहां प्रथमही
 शब्दनयकों कहै हैं,—

सव्वेसिं वत्थूणं संखालिंगादिबहुपयारेहिं ।

जो साहदि णाणत्तं सदणयं तं वियाणेह ॥ २७५ ॥

भावार्थ—जो नय सर्व वस्तुनिकै संख्या लिंग आदि ब-
 हुत प्रकार करि नानागणाकों साथै सो शब्द नय जाणू-
 भावार्थ—संख्या एक वचन द्विवचन बहुवचन, लिंग स्त्री पु-
 रुष नपुंसकका वचन, आदि शब्दमें काल कारक पुरुष स-
 पसर्ग लेखें. सो इनिकरि व्याकरणके प्रयोग-पदार्थकों भेद-
 रूपकार कहै सो शब्द नय है. जैतैं पुण्य तारका नक्षत्र एक
 ज्योतिषीके विमानकै तानू लिंग कहै तहां व्यवहारमें विरोध
 दीखै जातैं सो ही पुरुष सो ही स्त्री नपुंसक कैसैं होय ।
 तथापि शब्द नयका यह ही विषय है जो जैसा शब्द कहै
 वैसा ही अर्थकू भेदरूप मानना ॥ २७५ ॥

आगे समभिरूढ नयकों कहै हैं,—

जो एगेगं अत्थं परिणादिभेएण साहए णाणं ।

मुक्खत्थं वा भासदि अहिरूढं तं णयं जाण २७६

भाषार्थ—जो नय वस्तुकों परिणामके भेदकरि एक एक न्यारा न्यारा भेद रूप साथै अथवा तिनिमें मुख्य अर्थ ग्रहण करि साथै सो समभिरूढ नय जाणूं. भावार्थ—शब्द नय वस्तुके पर्याय नामकरि भेद नहीं करै अरु यह समभिरूढ नय है सो एक वस्तुके पर्याय नाम हैं तिनिके भेदरूप न्यारे न्यारे पदार्थ ग्रहण करै तहां जिसकों मुख्यकरि पकड़ै तिसकों सदा तैसा ही कहै. जैसें गऊ शब्दके बहुत अर्थ थे तथा गऊ पदार्थके बहुत नाम हैं. तिनकों यह नय न्यारे न्यारे पदार्थ मानै है. तिनमेंसुं मुख्यकरि गऊ पकड़या ताकों चालतां बैठतां सोवतां गऊ ही कहवो करै. ऐसा समभिरूढ नय है ॥ २७६ ॥

आगे एवंभूत नयकों कहै हैं.—

जेण सहावेण जदा परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।

तप्परिणामं साहदि जो वि णओ सो वि परमत्थो ॥

भाषार्थ—वस्तु जिस काल जिस स्वभावकरि परिणमन रूप होय तिस काल तिस परिणामतैं तन्मय होय है. तातैं तिस ही परिणामरूप साथै, कहै सो नय एवंभूत है. यह नय धर्मरूप है. भावार्थ—वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यता करि

नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमै ताकों तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकों निश्चय भी कहिये है. जैमैं गऊकों चालै तिस काल गऊ कहै. अन्य काल बहुत न कहै ॥ २७७ ॥

आगे नयनिके कथनकों संकोचै हैं,—

एवं विविहणएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयाम्मि ।

दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च २७८

भाषार्थ—जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकों व्यवहाररूप कहै है, साथे है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकों साथै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षकों साथै है. भाषार्थ—प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ साथै है. जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकों यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है तिसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है ॥ २७८ ॥

आगे कहै हैं जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले हैं,—

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ।

विरला भावहिं तच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥२७९॥

भाषार्थ—जगतविषै तत्त्वकों विरले पुरुष सुणै हैं. बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकों यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये बारबार अ-

भ्यास करै हैं, बहुरि अभ्यास कीये भी तत्त्वकी धारणा विरलेनिकै होय है। भावार्थ—तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुनना जानना भावना धारणा उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं इस पांचमां कालमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं अरु धारनेवाले भी दुर्लभ हैं ॥ २७६ ॥

आगे कहै हैं जो कहे तत्त्वकों सुनिकर निश्चल भावतैं भावै सो तत्त्वकों जाणै,—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्णदे जो हि ।

तं चिय भावेइ सया सो वि य तच्चं वियाणेई २८०

भाषार्थ—जो पुरुष गुरुनिकर कहा जो तत्त्वका स्वरूप ताकों निश्चल भाव करि ग्रहण करै है, बहुरि तिसकों अन्य भावना छोडि निरंतर भावै है, सो पुरुष तत्त्वकों जाणै है।

आगे कहै हैं तत्त्वकी भावना नाहीं करै है, सो स्त्री आदिके वश कौन नाही है ? सर्व लोक है,—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं संतत्तो ॥

भाषार्थ—या लोकविषै स्त्रीजनके वश कौन नाहीं है ? बहुरि कामकरि जाका मन खण्डन न भया ऐसा कौन है ? बहुरि इन्द्रियनिकरि न जीत्या ऐसा कौन है ? बहुरि कषायनिकरि तप्तायमान नाहीं ऐसा कौन है ? भाषार्थ—विषय

कषायनिके वशमें सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करने-
वाले विरले हैं ॥ २८१ ॥

आगे कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो
है सो स्त्रीआदिके वश नहीं होय है,—

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण
जो ण य गिह्मदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं २८२

भाषार्थ—जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य अभ्य-
न्तर सर्व परिग्रहकों नहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनके
वश नहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इंद्रियनिकरि जीत्या
न होय है. बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म ति-
सकरि जीत्या न होय है. भावार्थ—संसारका बन्धन परिग्रह है
सो सर्व परिग्रहकों छोड़ै सो ही स्त्री इंद्रिय कषायादिकके व-
शीभूत नहीं होय है. सर्वत्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै,
तब निजस्वरूपमें ही लीन होय है ॥ २८२ ॥

आगे लोकानुप्रेक्षाका चितवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,
एवं लोयसहावं जो ज्ञायदि उवसमेक्कसब्भाओ ।

सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥ २८३ ॥

भाषार्थ— जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकों उपशमक-
रि एक स्वभावरूप हुवा संता ध्यावै है, चितवन करै है, सो
पुरुष क्षेपे हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानै ऐसा तिस लो-

कहीका शिखामणि होय है. भावार्थ—ऐसैं साभ्यभाव करि लोकानुप्रेक्षाका चितवन करै सो पुरुष कर्मका नाशकरि लोकके शिखर जाय तिष्ठै है. तहां अनन्त अनौपम्य बाधाहित स्वाधीन ज्ञानानन्दस्वरूप सुखकों भोगवै है । इहां लोक भावनाका कथन विस्तारकरि करनेका आशय ऐसा है जो अन्यमती लोकका स्वरूप तथा जीवका स्वरूप तथा हिताहितका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा असत्यार्थ प्रमाणविरुद्ध कहै हैं सो कोई जीव तो सुनिकरि विपरीत श्रद्धा करै हैं, केई संशयरूप होय हैं, केई अनध्यवसायरूप होय हैं, तिनिकै विपरीतश्रद्धातैं चित्त थिरताकों न पावै है । अर चित्त थिर निश्चित हुवा विना यथार्थ ध्यानकी सिद्धि नाहीं । ध्यान विना कर्मनिका नाश होय नाहीं, तातैं विपरीत श्रद्धान दूरि होनेके अर्थ यथार्थ लोकका तथा जीवादि पदार्थनिका स्वरूप जाननेके अर्थ विस्तारकरि कथन किया है, ताकूं जानि जीवादिका स्वरूप पहिचानि अपने स्वरूपविषै निश्चल चित्त ठानि कर्म कलंक भानि भव्य जीव मोक्षकूं प्राप्त होहु, ऐसा श्री-गुरुनिका उपदेश है ॥ २८३ ॥

कुंडलिया.

लोकाकार विचारिकैं, सिद्धस्वरूपचितारि ।

रागविरोध विडारिकैं, आतमरूपसंवारि ॥

आतमरूपसंवारि मोक्षपुत्र वसो सदा ही ।

आधिग्याधिजरमरन आदि दुख है न कदा ही ॥

श्रीगुरु शिक्षा धारि टारि अभिमान कुशोका ।
मनथिरकारन यह विचारि निजरूप सुलोका ॥ १० ॥

इति लोकानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १० ॥

अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा लिख्यते ।

जीवो अणंतकालं बसइ णिगोएसु आइपरिहीणो ।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि ॥ २८४ ॥

भाषार्थ—ये जीव अनादि कालतैं लेकरि संसारविषै अनन्त काल तौ निगोदविषै बसै है. बहुरि तहांतैं नीसरिकरि पृथ्वीकायादिक पर्यायकूं धारै है. अनादितैं अनन्तकालपर्यन्त नित्य निगोदमें जीवका वास है. तहां एक शरीरमें अनन्तानन्त जीवनिका आहार स्वासोच्छ्वास जीवन मरन समान है. स्वासके अठारहवें भाग आयु है तहांतैं नीसरि कदाचित् पृथिवी अप तेज वायुकाय पर्याय पावै है सो यह पावना दुर्लभ है ॥ २८४ ॥

आगें कहै हैं यातैं नीसरि त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है,
तत्थ वि असंखकालं वायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं ।
चिंतामणिठ्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण २८५

भाषार्थ—तहां पृथिवीकाय आदिविषै सूक्ष्म यता वादर-
निविषै असंख्यात काल भ्रमण करै है. तहांतैं नीसरि त्रस-
पणा पावना बहुत कष्टकर दुर्लभ है. जैसे चिंतामणिरत्नका

पावना दुर्लभ होय तैसें । भावार्थ—पृथिवीआदि थावरकायतैं
नीसरि चिन्तापणि रत्नकी ज्यों त्रस पर्याय पावना दुर्लभ है
आगे कहै हैं त्रसपणा भी पावै तहां पंचेन्द्रियपणा पा-
वना दुर्लभ है,—

वियलिंदिएसु जायदि तत्थ वि अत्थेइ पुव्वकोडीओ ।
तत्तो णीसरिउणं कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥२८६॥

भाषार्थ—थावरतैं नीसरि त्रस होय तहां भी विकलत्रय
वेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियपणा पावै तहां कोटिपूर्व तिष्ठै तहां-
तैं भी नीसरि करि पंचेन्द्रियपणा पावना महा कष्टकर दुर्लभ
है । भावार्थ—विकलत्रयतैं पंचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है जो
विकलत्रयतैं फेरि थावर कायमें जाय उपजै तौ फेरि बहुत
काल भुगतैं, तातैं पंचेन्द्रियपणा पावना अतिशय दुर्लभ है ।

सो वि मणेण विहीणो ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।
अह मणसहिओ होदि हु तह वि तिरक्खो हवे रुदो ॥

भाषार्थ—विकलत्रयतैं नीसरि पंचेन्द्रिय भी होय तौ अ
सैनी मनरहित होय है । आप अर परका भेद जाणै नहीं-
बहुरि कदाचित् मनसहित सैनी भी होय तौ तिर्यञ्च होय
है । रौद्र क्रूर परिणामी बिलाव घूघू सर्प सिंह मच्छ आदि
होय है । भावार्थ—कदाचित् पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैनी
होय सैनीपणा दुर्लभ है बहुरि सैनी भी होय तौ क्रूर तिर्य-
ञ्च होय ताकै परिणाम निरन्तर पापरूप ही रहै हैं २८७

आगें ऐसैं क्रूर परिणामीनिका नरकपात होय ह, ऐसै
कहे हैं—

सो तिठवअसुहलेसो णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे ।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि सारीरं माणसं पउरं ॥२८८॥

भाषार्थ—क्रूर तिर्यच होय सो तीव्र अशुभ परिणामक-
रि अशुभ लेश्या सहित मरि नरकमें पडै है. कैसा है नरक
दुःखदायक है भयानक है तहां शरीरसम्बन्धी तथा मनस-
म्बन्धी प्रचुर दुःख भोगवै है ॥ २८८ ॥

आगें कहै हैं तिस नरकतैं नीसरि तिर्यच होय दुःख
सहै है,—

तत्तो णीसारिऊणं पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं ।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं २८९

भाषार्थ—तिस नरकतैं नीसरि फेरि भी तिर्यच गतिवि-
षै उपजै है तहां भी पापरूप जैसैं होय तैसैं यह जीव अनेक
प्रकारका अनन्त दुःख विशेषकरि सहै है ॥ २८९ ॥

आगें कहै हैं कि मनुष्यपणा पावना दुर्लभ है सो भी
मिथ्याती होय पाप उपजावै है,—

रयणं चउप्पहेपिव मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय ।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥२९०॥

भाषार्थ—तिर्यचतैं नीसरि मनुष्यगति पावणा अति दु-
र्लभ है. जैसैं चौपथमें रत्न पड्या होय सो बडा भाग्यतैं हाथ

लागै तैसें दुर्लभ है। बहुरि ऐसा दुर्लभ मनुष्यपणा पायकरि भी मिथ्यादृष्टी होय पाप उपजावै है। भावार्थ—मनुष्य भी होय अर म्लेच्छखंड आदि तथा मिथ्यादृष्टीनिकी संगति-विषै उपजि पाप ही उपजावै है ॥ १९० ॥

आगैं कहै हैं मनुष्य भी होय अर आर्य खंडविषै भी उपजै तौऊ उत्तम कुलआदिका पावणा अति दुर्लभ है,—
अह लहइ अज्जवंतं तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं ।
उत्तम कुले वि पत्ते धणहीणो जायदे जीवो ॥२९१॥

भाषार्थ—मनुष्य पर्याय पाय आर्यखंडविषै भी जन्म पावै तौ ऊंच कुल पावना दुर्लभ है बहुरि कदाचित् ऊंच कुल विषै भी जन्म पावै तौ धनहीन दरिद्री होय तासूं कछू सुकृत बणैं नाहीं पापहीमें लीन रहै ॥ २९१ ॥

अह धनसाहिओ होदि हु इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा
अह इंदिय संपुण्णो तह वि सरोओ हवे देहो २९२

भाषार्थ—बहुरि जो धनसहितपणा भी पावै तौ इन्द्रियनिकी परिपूर्णता पावना अति दुर्लभ है। बहुरि कदाचित् इन्द्रियनिकी संपूर्णता भी पावै तौ देह रोग सहित पावै निरोग होना दुर्लभ है ॥ २९२ ॥

अह णीरोओ होदि हु तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं ।
अह चिरकालं जीवदि तो सीलं णेव पावेइ ॥२९३॥

भाषार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तौ जीवित कहिये आयु दीर्घ न पावै यह पावना दुर्लभ है अथवा जो कदाचित् आयु भी चिरकाल कहिये दीर्घ पावै तौ शील कहिये उत्तम प्रकृति भद्र परिणाम न पावै जातैं सुष्ठु स्वभाव पावना दुर्लभ है ॥ २९३ ॥

अह होदि सीलजुत्तो तह वि ण पावेइ साहुसंसर्गं ।
अह तं पि कह वि पावइ सम्मत्तं तह वि अइदुलहं २९४

भाषार्थ—बहुरि सुष्ठु स्वभाव भी कदाचित् पावै तौ साधु पुरुषका संसर्ग संगति नाहीं पावै हैं. बहुरि सो भी कदाचित् पावै तौ सम्यक्त्व पावना श्रद्धान होना अति दुर्लभ है ॥ २९४ ॥

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो ।
अह कह वि तं पि गिण्हदि तो पालेहुं ण सक्केदि २९५

भाषार्थ—बहुरि सम्यक्त भी कदाचित् पावै तौ यह जीव चारित्र नाहीं ग्रहण करै है. बहुरि कदाचित् चारित्र भी ग्रहण करै तौ तिसकूं निर्दोष न पालि सकै है ॥ २९५ ॥

रयणत्तये वि लद्धे तिब्बकसायं करेदि जइ जीवो ।
तो दुग्गईसु गच्छदि पण्डरयणत्तओ होऊ ॥ २९६ ॥

भाषार्थ—जो यह जीव कदाचित् रत्नत्रय भी पावै अर तीव्रकषाय करै तौ नाशकू प्राप्त भया है रत्नत्रय जाका ऐसा होयकरि दुर्गतिकूं गमन करै है ॥ २९६ ॥

बहुरि ऐसा मनुष्यपणा ऐसा दुर्लभ है जातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति हो ऐसा कहै हैं,—

रयणुव्व जलहिपाडियं मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं
एवं सुणिच्चइत्ता मिच्छकसायेय वज्जेह ॥ २९७ ॥

भाषार्थ—यह मनुष्यपणा जैसे रत्न समुद्रमें पड्या फेरि पावणा दुर्लभ होय तैसें पावना दुर्लभ है ऐसें निश्चयकरि अर हे भव्य जीवो थें मिथ्या अर कषायनिकुं छोडौ ऐसा उपदेश श्रीगुरुनिका है ॥ २९७ ॥

आगे कहै हैं जो कदाचित् ऐसा मनुष्यपणा पाय शुभ-परिणामानतैं देवपणा पावै तौ तहां चारित्र नार्हीं पावै है,—
अहवा देवो होदि हुं तत्थ वि पावेइ कह वि सम्मत्तं ।
सो तवचरणं ण लहदि देसजमं सीललेसं पि २९८

भाषार्थ—अथवा मनुष्यपणातैं कदाचित् शुभपरिणामतैं देव भी होय अर कदाचित् तहां सम्यक्त्व भी पावै तौ तहां तपश्चरण चारित्र न पावै है. देशव्रत श्रावकव्रत तथा शीलव्रत कहिये ब्रह्मचर्य अथवा सप्तशीलका लेश भी न पावै है ।

आगे कहै हैं कि इस मनुष्यगतिविषै ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है,—

मणुअगईए वि तओ मणुअगईए महव्वयं सयलं ।
मणुअगईए ज्ञाणं मणुअगईए वि णिव्वाणं ॥२९९॥

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो इस मनुष्यगतिविषै ही तप-
का आचरण होय है बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही समस्त
महाव्रत होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही धर्म्यशुक्रध्या-
न होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही निर्वाण कहिये मो-
क्षकी प्राप्ति होय है ॥ २९९ ॥

इय दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु ।
ते लहिय दिववरयणं भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

भाषार्थ—ऐसा यह मनुष्यपणा पायकरि जे इन्द्रिय वि-
षयनिविषै रमै हैं ते दिव्य (अमोलिक) रत्नकूं पाय भस्मके
अर्थ दग्ध करै हैं. भावार्थ—अति कठिन पावने योग्य यह म-
नुष्य पर्याय अमोलिक रत्नतुल्य है. ताकूं विषयनिविषै रमि-
करि वृथा खोवना योग्य नाहीं ॥ ३०० ॥

आगे कहै हैं जो या मनुष्यपणामें रत्नत्रयकूं पाय बड़ा
आदर करो,

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिउण य संसारे महायरं कुणह तिण्हं पि॥३०१॥

भाषार्थ—ए सर्व दुर्लभतैं भी दुर्लभ जाणि बहुरि दर्शन
ज्ञान चारित्र संसारविषै दुर्लभसों दुर्लभ जाणि अर दर्शन
ज्ञान चारित्र इनि तीनिविषै हे भव्य जीव हो ! बड़ा आदर
करौ. भावार्थ—निगोदतैं नीसरि पूर्व कहै तिस अनुक्रमतैं दु-
र्लभसं दुर्लभ जाणूं, बहुरि तहां भी सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-

(१५६)

की प्राप्ति अति दुर्लभ जाणूं. तिसकूं पायकरि भव्य जीवनि-
कूं महान् आदर करना योग्य है ॥ ३०१ ॥

छप्पय.

वसि निगोदचिर निकसि खेद सहि धरनि तरुनि बहु ।
पवनबोद जल अगि निगोद लहि जरन मरन सहु ॥
लट गिडोल उटकण मकोड तन भमर भमणकर ।
जलविलोलपशु तन सुकोल नभचर सर उरपर ॥
फिरि नरकपात अति कष्टसहि, कष्टकष्ट नरतन महत ।
तहँ पाय रत्नत्रय चिगद जे, ते दुर्लभ अवसर लहत ११

इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ११ ॥

अथ धर्मानुप्रेक्षा प्रारभ्यते.

आगे धर्मानुप्रेक्षाका निरूपण करै हैं तहां धर्मका मूल
सर्वज्ञ देव है ताकूं प्रगठ करै हैं,—

जो जाणदि पच्चक्खं तियालगुणपज्जएहि संजुत्तं ।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देओ ॥ ३०२ ॥

भाषार्थ—जो समस्त लोक अर अलोक तीनकालगोचर
समस्त गुणपर्यायनिकरि संयुक्त प्रत्यक्ष जाणै सो सर्वज्ञ देव
है. भावार्थ—या लोकविषै जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं. तिनि-
तैं अनन्तानन्त गुणो पुद्गल द्रव्य हैं. एक एक आकाश, धर्म,

अधर्म द्रव्य है. असंख्यात कालाणु द्रव्य है. लोकके परें अनन्तप्रदेशी आकाश द्रव्य अलोक है. तिनि सर्व द्रव्यनिके अतीत काल अनन्त समयरूप आगामी काल तिनि तैं अनन्तगुणा समरूप तिस कालके समयसमयवर्ती एक द्रव्य के अनन्त अनन्त पर्याय हैं. तिनि सर्व द्रव्यपर्यायनिकुं युगपत् एक समयविषै प्रत्यक्ष स्पष्ट न्यारे न्यारे जैसे हैं तैसें जानै ऐसा जाके ज्ञान है सो सर्वज्ञ है. सो ही देव है अन्यकूं देव कहिये सो कहने मात्र है । इहां कहनेका तात्पर्य ऐसा जो धर्मका स्वरूप कहियेगा सो धर्मका स्वरूप यथार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं अतीन्द्रिय है. जाका फल स्वर्ग मोक्ष है, सो भी अतीन्द्रिय है. छद्मस्थकै इन्द्रिय ज्ञान है. परोक्ष है सो याके गोचर नाहीं सो जो सर्व पदार्थनिकुं प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप भी प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप सर्वज्ञके वचनहीतैं प्रमाण है. अन्य छद्मस्थका कहा प्रमाण नाहीं. सो सर्वज्ञके वचनकी परंपरातैं छद्मस्थ कहै सो प्रमाण है तातैं धर्मका स्वरूप कहनेकूं आदिविषै सर्वज्ञका स्थापन कीया ॥ ३०२ ॥

आगे ज सर्वज्ञकूं न मानै हैं तिनिकूं कहै हैं,—

जदि ण हवदि सव्वण्ह ता को जाणदि आदिंदियं अत्थं
इंदियणाणं ण। मुणदि थूलं पि असेस पज्जायं ३०३

भाषार्थ—हे सर्वज्ञके अभाववादी ! जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रियपदार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं ऐसे पदार्थकूं कौन जानै ? इन्द्रियज्ञानतौ स्थूलपदार्थ इन्द्रियनितैं सम्बन्धरूप वर्तमान

होय ताकूं जानै है ताके भी समस्तपर्याय हैं निनिकूं नार्हीं जानै है. भावार्थ—सर्वज्ञका अभाव मीमांसक अर नास्तिक कहै हैं ताकूं निषेधया है जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थकूं कौन जानै ? जातैं धर्म अर अधर्मका फल अतीन्द्रिय है ताकूं सर्वज्ञविना कोऊ नार्हीं जानै तातैं धर्म अर अधर्मका फलकूं चाहता जो पुरुष है सो सर्वज्ञकूं मानि करि ताके बचनतैं धर्मका स्वरूप निश्चय करि अंगीकार करौ ॥ ३०३ ॥

तेणुवइट्टो धम्मो संगसत्ताण तह असंगाणं ।

पढमो वारहभेओ दसभेओ भासिओ विदिओ ३०४

भावार्थ—तिस्र सर्वज्ञकरि उपदेस्या धर्म है सो दोय प्रकार है. एक तौ संगसत्त कहिये गृहस्थका अर एक असंग कहिये मुनिका. तहां पहला गृहस्थका धर्म तौ बारह भेदरूप है. बहुरि द्वा मुनिका धर्म दश भेदरूप है ॥ ३०४ ॥

आगें गृहस्थके धर्मके बारह भेदनिके नाम दोय गाथा-में कहै हैं,—

सम्मदंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं ।

वयधारी सामइओ पव्ववई पासु आहारी ॥ ३०५ ॥

राईभोयणविरओ मेहुणसारंभसंगचत्तो य ।

कज्जाणुमोयविरओ उद्धिट्ठाहारविरओ य ॥ ३०६ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन हैं शुद्ध जाकै ऐसा, १ मद्य आदि

स्थूल दोषनिर्तै रहित दर्शन प्रतिपाका धारी, २ पांच अणुव्रत-
तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ऐसैं बार व्रतनिसहित व्रतधारी, ३
तथा समायिकव्रती, ४ पर्वव्रती, ५ प्रासुकाहारी ६
रात्रीभोजनत्यागी, ७ मैथुनत्यागी, ८ आरंभत्यागी, ९ प-
रिग्रहत्यागी, १० कार्यानुमोदविरत ११ अर उद्दिष्टाहारवि-
रत, १२ इसप्रकार श्रावकधर्मेके १२ भेद हैं। भावार्थ—पहला
भेद तो पच्चीसमलदोषरहित शुद्धअविरतसम्यग्दृष्टी है। बहुरि
ग्यारह भेद प्रतिमानके व्रतनिकरि सहित होय सो व्रती
श्रावक है ॥ ३०५-३०६ ॥

आगे इनि बारहनिका स्वरूप प्रभृतिका व्याख्यान
करै हैं। तहां प्रथम ही अविरत सम्यग्दृष्टीका कहै हैं। तहां भी
पहले सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यताका निरूपण करै हैं,—
चउगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३०७ ॥

भावार्थ—ऐसा जीव सम्यक्त्वकूं पावै है। प्रथम ही
भव्य जीव होय जातैं अभव्यकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि
व्याखूं ही गतिविषै सम्यक्त्व उपजै है तहां भी मन सहित
सैनीकै उपजै है। असैनीकै उपजै नाहीं। तहां भी विशुद्ध प-
रिणामी होय, शुभ लेश्या सहित होय, अशुभ लेश्यामें भी
शुभ लेश्यासमान कषायनिके स्थानके होय तिनिकूं विशुद्ध
उपचारकरि कहिये संक्लेश परिणामनिविषै सम्यक्त्व उपजै
नाहीं। बहुरि जागतकै होय। सूताकै नाहीं होय। बहुरि प-

र्याप्तपूर्णकै होय, अपर्याप्त अवस्थामें उपजै नाहीं. बहुरि संसारका तट जाकै निकट आया होय निकट भव्य होय, अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल पहलै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहु-रि ज्ञानी होय साकार उपयोगवान होय निराकार दर्शनो-पयोगमें सम्यक्त्व उपजै नाहीं ऐसैं जीवकै सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होय है ॥ ३०७ ॥

आगें सम्यक्त्व तीन प्रकार है. तिनिमें उपशम सम्यक्त्व अर क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै हैं,—
सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
स्वयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुसस्स ॥३०८॥

भाषार्थ—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमि-थ्यात्व, अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनि सात मोहकर्मकी प्रकृतिनिके उपशम होतैं उपशम सम्यक्त्व होय है अर इनि सातों मोहकर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेतैं क्षायिक स-म्यक्त्व उपजै है. सो यह क्षायिक सम्यक्त्व केवलि कहिये के-वलज्ञानी तथा श्रुतकेवलीकै निकट कर्मभूमिके मनुष्यकै ही उपजै है, भावार्थ—इहां ऐसा जानना जो क्षायिक सम्यक्त्व-का प्रारम्भ तौ केवलि श्रुतकेवलीकै निकट मनुष्यकै ही हो-य है. अर निष्ठापन अन्वगतिमें भी होय है ॥ ३०८ ॥

आगें क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कैसैं होय सो कहै हैं,—
अणुदयादो छल्लं सजाइरूवेण उदयमाणणं ।

सम्मत्तकम्मउदए खयउवसमियं हवे सम्मं ॥३०९॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त सात प्रकृति तिनिमेंसं छह प्रकृतिनि-
का उदय न होय तथा सजाति कहिये समान जातीय प्र-
कृतिकरि उदयरूप होय बहुरि सम्यक् कर्म प्रकृतिका उदय
होनें क्षायोपशमिक होय. भावार्थ—मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व-
का तीव्र उदयका अभाव होय अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय
होय अर अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभका उदयका
अभाव होय तथा विसंयोजनकरि अप्रत्याख्यानावरण आ-
दिक रूपकरि उदयमान होय तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
उपजै है. इनि तीनों ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका विशेष कथ-
न गोमट्टसार लब्धिसारतैं जानना ॥ ३०९ ॥

आगे औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अर अनन्ता-
नुबन्धीका विसंयोजन अर देशव्रत इनिका पावना अर छूटि
जाना उत्कृष्टकरि कहै हैं,—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ ।

पढमकसायाविणासं देसवयं कुणह उक्किट्ठं ॥३१०॥

भाषार्थ—यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ए दोय
तौ सम्यक्त्व अर अनन्तानुबन्धीका विनाश विसंयोजन अप्र-
त्याख्यानादिरूप परिणमावना अर देशव्रत इनि च्यारिनिक्कं
असंख्यातवार ग्रहण करै है अर छोडै है. यह उत्कृष्टकरि
कहा है. भावार्थ—पल्यका असंख्यातवां भाग परिमाण जो

असंख्यात तैत्तिरीय उक्तकृष्टणैः ग्रहण करै अर छोडै पीछें
मुक्ति प्राप्ति होय ॥ ३१० ॥

आगे ऐसैं सप्त प्रकृतिके उपशम सय क्षयोपशमतैं उप-
ड्या सम्यक्त्व कैसैं जाणिये ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धानकों नव
गायानिकरि कहै हैं,—

जो तन्ममणेयंतं णियमा सहृहदि सत्तभंगेहि ।

लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ ३११ ॥

जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।

सुदणाणेण णयेहिं य सो सदिट्ठी हवे सुद्धो ॥ ३१२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष सप्तभंगनिकरि अनेकांत तत्त्वनिका
नियमतैं श्रद्धान करे, जातैं लोकनिका प्रश्नके वशतैं विधि-
निषेधतैं वचनके सात ही भंग होय हैं तातैं व्यवहारके प्रव-
र्त्तनेके अर्थ भी सातभंगनिका वचनकी प्रवृत्ति होय है. ब-
हुरि जो जीव अजीव आदि नवप्रकार पदार्थकों श्रुतज्ञान प्र-
माणकरि तथा तिसके भेद जे नय तिनिकरि अपना आदर
यत्र उद्यमकरि मानै श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है.
भाषार्थ—वस्तुका स्वरूप अनेकांत है. जामें अनेक अंत क-
हिये धर्म होय सो अनेकान्त कहिये. ते धर्म अस्तित्व ना-
स्तित्व एकत्व अनेकत्व नित्यत्व अनित्यत्व भेदत्व अमेदत्व
अपेक्षात्व दैवसाध्यत्व पौरुषसाध्यत्व हेतुसाध्यत्व आगमसा-
ध्यत्व अंतरगतत्व बहिरंगत्व इत्यादि तौ सामान्य हैं. बहुरि

द्रव्यत्व पर्यायत्व जीवत्व अजीवत्व स्पर्शत्व रसत्व गन्धत्व च-
 र्मात्त्व शब्दत्व शुद्धत्व अशुद्धत्व मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व संसारित्व
 सिद्धत्व अवगाहत्व गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व वर्त्तनाहेतुत्व इ-
 त्यादि विशेष धर्म हैं। सो तिनिके प्रश्नके वशतैं विधिनिषे-
 धरूप वचनके सात भंग होय हैं। तिनिकै ' स्यात् ' ऐसा
 पद लगावणा। स्यात् नाम कबंचित् कोईप्रकार ऐसा अर्थमें
 है। तिसकरि वस्तुकों अनेकान्त साधणा। तहां वस्तु स्यात्
 अस्तित्वरूप है, ऐसैं कोईप्रकार अपनेद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि
 अस्तित्वरूप कहिये है। बहुरि स्यात् नास्तित्वरूप है, ऐसैं
 पर वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि नास्तित्वरूप कहिये है।
 बहुरि वस्तु स्यात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है, ऐसैं वस्तुमें
 दोऊ ही धर्म पाइये हैं अर वचनकरि क्रमतैं कहे जाय हैं,
 बहुरि स्यात् अवक्तव्य है। ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म एक
 काल पाइये है तथापि एक काल वचनकरि कहे न जाय हैं
 तातैं कोई प्रकार अवक्तव्य है। बहुरि अस्तित्व करि कहा
 जाय है दोऊ एक काल हैं, तातैं कहा न जाय ऐसैं वक्तव्य
 भी है अर अवक्तव्य भी है तातैं स्यात् अस्तित्व अवक्तव्य
 है। ऐसैं ही नास्तित्व अवक्तव्य कहना। बहुरि दोऊ धर्म क्र-
 मकरि कहा जाय युगपत् कहा न जाय तातैं स्यात् अस्तित्व
 नास्तित्व अवक्तव्य कहना। ऐसैं सात ही भंग कोई प्रकार
 संभवै है। ऐसैं ही एकत्व अनेकत्व आदि सामान्य धर्मनिपरि
 सात भंग विधिनिषेधतैं लगावणा। जैसैं २ जहां अपेक्षा सं-

भवे सो लगावणी. बहुरि तैसें ही विशेषत्व धर्म जीवत्व आदिमें लगावना जैसे जीव नामा वस्तु सो स्यात् जीवत्व स्यात् अजीवत्व इत्यादि लगावणा. तहां अपेक्षा ऐसें जो अपना जीवत्व धर्म आपमें है तातैं जीवत्व है. पर अजीवका अजीवत्व धर्म यामें नाहीं तौऊ अपने अन्य धर्मकों मुख्य करि कहिये ताकी अपेक्षा अजीवत्व है इत्यादि लगावणा. तथा जीव अनन्त हैं ताकी अपेक्षा अपना जीवत्व आपमें परका जीवत्व यामें नाहीं है. तातैं ताकी अपेक्षा अजीवत्व है ऐसें भी सधै है. इत्यादि अनादि निधन अनन्त जीव अजीव वस्तु हैं, तिनिविषै अपने अपने द्रव्यत्व पर्यायत्व अनन्त धर्म हैं तिनि सहित सप्त भंगतैं साधना. तथा तिनिके स्थूल पर्याय हैं ते भी चिरकालस्थायी अनेक धर्मरूप होय हैं- जैसे जीव संसारी सिद्ध, बहुरि संसारीमें त्रस यावर, तिनिमें मनुष्य तिर्यच इत्यादि. बहुरि पुद्गलमें अणु स्कन्ध तथा घट पट आदि, सो इनिके भी कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो भी तैसें ही सप्त भंगतैं साधना. बहुरि तैसें ही जीव पुद्गलके संयोगतैं भये आस्रव बंध संवर निर्जरा पुण्य पाप मोक्ष आदि भाव तिनिमें भी बहुत धर्मपणाकी अपेक्षा तथा परस्पर विधिनिषेधतैं अनेक धर्मरूप कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो सप्तभंगतैं साधना.

जैसें एक पुरुषमें पिता पुत्र मामा भाणजा काका भतीजापणा आदि धर्म संभवै हैं. सो अपनी अपनी अपेक्षातैं

विधिनिषेधकरि सात भंगतैं साधना. ऐसा नियमकरि जानना, जो वस्तुमात्र अनेक धर्म स्वरूप है सो सर्वकूं अनेकांत जाणि श्रद्धान करै, बहुरि तैसैं ही लोककेविषैं व्यवहार प्रवर्त्तावै सो सम्यग्दृष्टी है. बहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध पुण्य पाप संवर निर्जरा मोक्ष ये नव पदार्थ हैं तिनिंकूं तैसैं ही सप्तभंगतैं साधने. ताका साधन श्रुतज्ञान प्रमाण है. अर ताके भेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तिनिंके भी भेद नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत नय हैं. बहुरि तिनिंके भी उत्तरोत्तर भेद जेते वचनके प्रकार हैं तेते हैं, तिनिंकूं प्रमाणसप्तभंगी अर नयसप्तभंगीके विधानकरि साधिये है. तिनिंका कथन पहले लोकभावना में कीया है. बहुरि तिसका विशेष कथन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना. ऐसैं प्रमाण नयनिकरि जीवादि पदार्थनिंकूं जानिकरि श्रद्धान करे सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि इहां यह विशेष और जानना जो नय हैं ते वस्तुके एक २ धर्मके ग्राहक हैं ते अपने अपने विषयरूप धर्मकूं ग्रहण करनेविषैं समान हैं तौऊ पुरुष अपने प्रयोजनके वशतैं तिनिंकों मुख्य गौणकरि कहै हैं जैसैं जीव नामा वस्तु है तामें अनेक धर्म हैं. तौऊ चेतनपणा आदि प्राणधारणपणा अजीवनिंतैं असाधारण देखि तिनिं अजीवनिंतैं न्यारा दिखावनेके प्रयोजनके वशतैं मुख्यकरि वस्तुका जीव नाम धरया. ऐसैं ही मुख्य गौण करनेका सर्व धर्मके प्रयोजनके वशतैं जानना.

इहां इस ही आश्रयतैं अध्यात्म कथनीविषै मुख्यकूं तौ निश्चय कहा है. अर गौणकूं व्यवहार कहा है. तहां अभेद धर्म तौ प्रधानकरि निश्चयका विषय कहा. अर भेद नयकूं गौणकरि व्यवहार कहा सो द्रव्य तौ अभेद है. तातैं निश्चयका आश्रय द्रव्य है. बहुरि पर्याय भेद रूप है. तातैं व्यवहारका आश्रय पर्याय है तहां प्रयोजन ऐसा जो भेदरूप वस्तुकूं सर्व लोक जानै है. तातैं जो जानै सो ही प्रसिद्ध है. याहीतैं लोक पर्यायबुद्धि हैं. जीवकै नरनारक आदि पर्याय हैं. तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि पर्याय हैं. तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादिक पर्याय हैं तिनि पर्यायनिहीकों लोक जीव जानै हैं. तातैं इनि पर्याय-निविषै अभेदरूप अनादि अनन्त एकभाव जो चेतना धर्म ताकों ग्रहणकरि निश्चय नयका विषय कहिकरि जीव द्रव्यका ज्ञान कराया. पर्यायाश्रित जो भेद नय ताकों गौण कीया. तथा अभेद दृष्टिमें यह दीखै नाहीं तातैं अभेद नयका दृढ़ श्रद्धान करावनेकों कहा जो पर्याय नय है सो व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है. सो भेद बुद्धिका एकांत निराकरण करनेके अर्थ यह कहना जानना. ऐसा नाहीं कि यह भेद है, सो असत्यार्थ कहा. जो वस्तुका स्वरूप नाहीं है जो ऐसैं सर्वथा मानै तो अनेकांतमें समझा नाहीं सर्वथा एकांत श्रद्धानतैं मिथ्यादृष्टी होय है. जहां अध्यात्मशास्त्र-निविषै निश्चय व्यवहार नय कहे हैं तहां भी तिनि दोऊ-

निका परस्पर विधिनिषेधतैं सप्तमंगकरि वस्तु साधणा. एक कौं सर्वथा सत्यार्थ मानै अर एककौं सर्वथा असत्यार्थ मानै तौ मिथ्या श्रद्धान होय है. तातैं तहां भी कथंचित् जानना. बहुरि अन्य वस्तु अन्यविषै आरोपणकरि प्रयोजन साधिये है तहां उपचार नय कहिये है सो यह भी व्यवहारविषै ही गर्भित है ऐसैं कहा है. जो जहां प्रयोजन निमित्त होय तहां उपचार प्रवर्तै है. घृतका घट कहिये तहां माटीका घडाके आश्रय घृत भरया होय तहां व्यवहारी जननिक्क आधार आधेय भाव दीखै है ताकूं प्रधानकरि कहिये है. जो घृतका घडा है ऐसैं ही कहैं लोक समझैं. अर घृतका घडा मगावै तब तिसकूं ले आवैं, तातैं उपचारविषै भी प्रयोजन संभवै है ऐसैं ही अमेद नयकूं मुख्य करै तहां अमेद दृष्टिमें भेद दीखै नाहीं तब तिसमें ही भेद कहै सो असत्यार्थ है तहां भी उपचारसिद्धि होय है यह मुख्य गौणका भेदकूं सम्यग्दृष्टी जानै है. मिथ्यादृष्टी अनेकांत वस्तुकूं जानै नाहीं. अर सर्वथा एक धर्म ऊपरि दृष्टि पडै तब तिसहीकूं सर्वथा वस्तु मानि अन्य धर्मकूं कै तौ सर्वथा गौणकरि असत्यार्थ मानै, कै सर्वथा अन्य धर्मका अभाव ही मानै. तथा मिथ्यात्व दृढ होय है सो यह मिथ्यात्वनामा कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं यथार्थ श्रद्धा न होय है तातैं तिस प्रकृतिका कार्य है सो भी मिथ्यात्व ही कहिये है. अर तिस प्रकृतिका अभाव भये तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होय है सो यह अनेकान्त वस्तुविषै

प्रमाण नयकरि सात भंगकरि साध्या हूवा सम्यक्त्वका कार्य है. तातैं याकूं भी सम्यक्त्व ही कहिये. ऐसैं जानना. जिनमतकी कथनी अनेक प्रकार है सो अनेकान्तरूप समझना. अर याका फल अज्ञानका नाश होकर उपादेयकी बुद्धि अर वीतरागताकी प्राप्ति है. सो इस कथनिका मर्म पावना बड़े भाग्यतैं होय है. इस पञ्चम कालमें अवार इस कथनीका गुरुका निमित्त सुलभ नाहीं है तातैं शास्त्र समझनेका निरन्तर उद्यम राखि समझना योग्य है. जातैं याके आश्रय मुख्यपणै सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है. यद्यपि जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन तथा प्रभावना अंगका देखना इत्यादि सम्यक्त्वकी प्राप्तिक् कारण है तथापि शास्त्रका श्रवण करना, पढ़ना, भावना करना, धारणा, हेतुयुक्तिकरि स्वमत परमतका भेद जानि नयविवक्षाकूं समझना वस्तुका अनेकान्तस्वरूप निश्चय करना मुख्य कारण हैं. तातैं भव्य जीवनिकूं इसका उपाय निरन्तर राखणा योग्य है ।

आगे कहै हैं जो सम्यग्दृष्टी भये अनन्तानुबंधी कषाय का अभाव होय है ताके परिणाम कैसे होय हैं,—
जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु ।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं ३१३

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी होय है सो पुत्र कलत्र आदि सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यनिके भावनिविषै गर्व नाहीं करै हैं. परद्रव्यतैं आपकै बढापणा मानै तौ सम्यक्त्व काहेका. बहुरि

उपशम भावनिकू भावै है अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी तीव्र रा-
गद्वेष परिणामके अभावतैं उपशम भावनिकी भावना निर-
न्तर राखै है बहुरि अपने आत्माकू तृण समान हीण मानै
है जातैं अपना स्वरूप तौ अनन्त ज्ञानादिरूप है. सो जेतै
तिसकी प्राप्ति न होय तेतै आपकू तृणबराबरी मानै है. का-
हूविषै गर्व नाहीं करे है ॥ ३१३ ॥

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥ ३१४ ॥

भाषार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टी यद्यपि इन्द्रिय विषयनि-
विषै आसक्त है बहुरि त्रस यावर जीबके घात जामें होंय
ऐसे सर्व आरम्भविषै वर्तमान है. अप्रत्याख्यानावरण आदि
कषायनिके तीव्र उदयनितैं बिरक्त न हूवा है तौऊ ऐसा
जाणै है कि यह मोहकर्मका उदयका विलास है. मेरे स्व-
भावमें नाहीं है उपाधि है रोगवत् है त्यजने योग्य है. वर्त्त-
मान कषायनिकी पीडा न सही जाय है तातैं असमर्थ हूवा
विषयनिका सेवना तथा बहु आरंभमें प्रवर्त्तना हो है ऐसा
मानै है ॥ ३१४ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मियअणुराई सो सद्विट्ठी हवे परमो ॥ ३१५ ॥

भाषार्थ—बहुरि कैसा है सम्यग्दृष्टी उत्तम गुण जे स-
म्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदिक तिनिविषै तौ अनुरागी

होय, बहुरि तिनि गुणनिके धारक जे उत्तम साधु तिनि के
 विनयकरि संयुक्त होय, बहुरि आप समान जे सम्यग्दृष्टी
 साधनीं तिनि विषे अनुरागी होय, वात्सल्यगुणसहित होय,
 सो उत्तम सम्यग्दृष्टी होय है. ए तीरां भाव न होय तौ
 जानिये याके सम्यक्त्वका यथार्थपणा नाही ॥ ३१५ ॥

देहामिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं
 जीवामिलियं पि देहं कंचुअसरिसं वियाणेई ॥ ३१६ ॥

भाषार्थ—यह जीव देहतैं मिलि रह्या है तौऊ अपना
 ज्ञानगुण जाणै है. तातैं आपकूं देहतैं भिन्न ही जाणै है.
 बहुरि देह जीवतैं मिलि रह्या है तौऊ ताकं कंचुक कहिये
 कपडेका जामासारिखा जाणै है जैसैं देहतैं जामा भिन्न है
 तैसैं जीवतैं देह भिन्न है. ऐसैं जाणै है ॥ ३१६ ॥

णिज्जियदोसं देवं सठवाजिवाणं दयावरं धम्मं ।

वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ३१७

भाषार्थ—जो जीव दोषवर्जित तौ देव मानै बहुरि सर्व
 जीवनि की दयाकं श्रेष्ठ धर्म मानै. बहुरि निर्ग्रन्थ गुरुकूं गुरु
 मानै सो प्रगटणै सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग अ-
 ठारह दोषनिकरि रहित देवकूं मानै, अन्य दोषसहित देव
 हें तिनि कूं संसारी जाणै, ते मोक्षमार्गी नाहीं, ऐसा जानि
 बंदै पूजै नाहीं. तथा अहिंसारूप धर्म जानै, जे यज्ञादि दे-
 वत्वानिकै अर्थ पशुघातकरि चढावैं ताकूं धर्म मानै हें. विसकों

प्राप ही जानि आप तिसविषै नाहीं प्रवर्ते. बहुरि जे ग्रन्थ-
सहित अनेक भेष ग्रन्थमतीनके हैं तथा काल दोषतैं जैनम-
तमें भी भेष भये हैं तिनि सर्वनिकों भेषी पाषंडी जानै, बंदै
पूजै नाहीं. सर्व परिग्रहतैं रहित होय तिनिहीकूं गुरु मानि
बन्दै पूजै, जातैं देव गुरु धर्मके आश्रय ही मिथ्या सम्यक्
उपदेश प्रवर्तै है. सो कुदेव कुधर्म कुगुरुका बन्दना पूजना तौ
दूर ही रहौ तिनिके संसर्गहीतैं श्रद्धान विगडै है. तातैं स-
म्यग्दृष्टी तिनिकी संगति भी न करे। स्वामी समन्तभद्र आ-
चार्य रत्नकरगढ़ श्रावकाचारमें ऐसैं कथा है, जो सम्यग्दृष्टी
है सो कुदेव कुत्सित आगम अर कुलिगी भेषी तिनिकं भ-
यतैं तथा किछू आशातैं तथा लोभतैं भी प्रणाम तथा ति-
निका विनय न करै इनिका संसर्गतैं श्रद्धान विगडै है.
धर्मकी प्राप्ति तौ दूरि ही रहौ. ऐसा जानना।

आगें मिथ्यादृष्टी कैसा होय सो कहै हैं,—

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।

गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्धिद्वी ३१८

भावार्थ—जो जीव दोषनिसहित देवनिकूं तौ देव माने
बहुरि जीवहिंसादिसहितकूं धर्म मानै, बहुरि परिग्रहकेविषै
आशक्तकूं गुरु मानै, सो प्रगटपणै मिथ्यादृष्टी है. भावार्थ—
भाव मिथ्यादृष्टी तौ अदृष्ट छिप्या मिथ्याती है. बहुरि जो
कुदेव राग द्वेष मोह आदि अठारह दोषनिकरि सहितकूं देव
मानिकरि पूजै बन्दै हैं. अर हिंसा जीवघात आदिकरि धर्म

मानै हैं बहुरि परिग्रहकेविषे आसक्त ऐसे भेषीनिकं गुरु मानै हैं ते प्रगट प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टी हैं ।

आगे कोई कहै कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी दे हैं, उपकार करै हैं तिनिकों पूजै बन्दै कि नाही ताकूं कहै हैं ॥

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥३१९॥

भाषार्थ—या जीवकूं कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नाही देवै है बहुरि कोई अन्य उपकार भी नाही करै है. जीवके पूर्वसंचित शुभ अशुभ कर्म हैं ते ही उपकार तथा अपकार करै हैं. भावार्थ—केई ऐसैं मानै है जो व्यन्तर आदि देव हमकूं लक्ष्मी दे हैं हमारा उपकार करै हैं सो तिनिकूं हम पूजै बन्दै हैं. सो यह मिथ्या बुद्धि है. प्रथम तो अवार कालमें प्रत्यक्ष कोई व्यन्तर आदि आप देता देख्या नाही. उपकार करता दीखै नाही जो ऐसैं होय तो पूजनेवाले दरिद्री रोगी दुःखी काहेकूं रहैं. तातैं वृथा कल्पना करै हैं. बहुरि परोक्ष भी ऐसा नियमरूप सश्वन्ध दीखै नाही जो पूजै तिनिकै अवश्य उपकारादिक होय ही. तातैं यह मोही जीव वृथा ही विकल्प उपजावै है. जो पूर्वकर्म शुभाशुभ संचित हैं सो ही या प्राणीकै सुख दुःख धन दरिद्र जीवन मरनकूं करै हैं ॥३१९॥

भत्तीए पुज्जमाणो वितरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चितेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी ऐसैं विचारै जो व्यंतर देव ही भक्तिकरि पूज्या हूवा लक्ष्मी दे है तौ धर्म काहेकूं कीजिये। भावार्थ—कार्य तौ लक्ष्मीतैं है सो व्यंतर देव ही पूजेतैं लक्ष्मी दे तौ धर्म काहेकूं सेवना ? बहुरि मोक्षमार्गके प्रकरणमें संसारकी लक्ष्मीका अधिकार भी नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी तौ मोक्षमार्गी है। संसारकी लक्ष्मीकूं हेय जानै है ताकी बांछा ही न करै है। जो पुण्यका उदयतैं मिलै तौ मिलौ, न मिलै तौ मति मिलौ, मोक्षहीके साधनेकी भावना करै है। तातैं संसारीक देवादिककूं काहेकूं पूजै बन्दै ? कदाचित् हू नाहीं पूजै बन्दै ॥ ३२० ॥

आगें सम्यग्दृष्टीकै विचार होय सो कहै हैं,—

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
 णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ३२१
 तं तस्स ताम्मि देसे तेण विहाणेण ताम्मि कालम्मि ।
 को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ३२२

भाषार्थ—जो जिस जीवकै जिस देशविषै जिस कालविषै जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख सुख रोग दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवनैं जागया है जो ऐसैं ही नियम करि होयगा, सो ही तिस प्राणीकै तिस ही देशमें तिसही कालमें तिस ही विधानकरि नियमतैं होय है। ताकं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है-

भाषार्थ—सर्वज्ञ देव सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अवस्था नाश है। सो जो सर्वज्ञके ज्ञानमें प्रतिभास्या है सो नियमकरि होय है तामें अधिक हीन किछू होता नाहीं ऐसैं सम्यग्दृष्टी विचारै है ॥ ३२१-३२२ ॥

आगे ऐसै तौ सम्यग्दृष्टी है अर यामें संशय करै सो मिथ्यादृष्टी है ऐसैं कहै हैं,—

एवं जो णिच्चयदो जाणदि दठ्वाणि सठ्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठो सुद्धो जो संकदि सो हुं कुद्दिट्ठो ३२३

भाषार्थ—या प्रकार निश्चयतैं सर्व द्रव्य जीव शुद्धल धर्म अधर्म आकाश काल इनिंकुं बहुरि इनि द्रव्यनिकी सर्व पर्यायनिकुं सर्वज्ञके आगमके अनुसार जाणै है श्रद्धान करै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है बहुरि ऐसैं श्रद्धान न करै शंका संदेह करै है सो सर्वज्ञके आगमतैं प्रतिकूल है प्रगटपणै मिथ्यादृष्टी है ॥ ३२३ ॥

आगे कहै हैं जो विशेष तत्त्वकूं नाहीं जानै है अर जिनबचनविषै आज्ञा मात्र श्रद्धान करै है सो भी श्रद्धावान कहिये है,—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भाणियं तं सठ्वमहं समिच्छामि ३२४

भाषार्थ—जो जीव अपने ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपशम बिना तथा विशिष्ट गुरुके संयोगविना तत्त्वार्थकूं नाहीं

जान सकै है सो जीव जिनबचनविषै ऐसैं श्रद्धान करै है जो जिनेश्वर देवनै जो तत्त्व कहया है, सो सर्व ही में भले प्रकार इष्ट करूं हूं ऐसे भी श्रद्धावान् होय हैं. भावार्थ—जो जिनेश्वरके बचनकी श्रद्धा करै है जो सर्वज्ञ देवने कहया है सो सर्व मेरे इष्ट है. ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कहा है ॥ ३२४ ॥

आगे सम्यक्त्वका माहात्म्य तीन गाथाकरि कहै हैं,—
रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।

रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥ ३२५ ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व है सो रत्ननिविषै तौ महारत्न है बहुरि सर्व योग कहिये वस्तुकी सिद्धि करनेके उपाय, मंत्र, ध्यान आदिक तिनिमें उत्तम योग है जातैं सम्यक्त्वतैं मोक्ष सधै है. बहुरि अणिमादिक ऋद्धि हैं तिनिमें बड़ी ऋद्धि है बहुत कहा कहिये सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है।
सम्मत्तगुणप्पहाणो देविंदणरिंदवांदिओ होदि ।

चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ३२६

भावार्थ—सम्यक्त्व गुणकरि सहित जो पुरुष प्रधान है सो देवनिके इन्द्रनिकरि तथा मनुष्यनिके इन्द्र चक्रवर्त्यादिकरि वन्दनीय हो हैं. बहुरि व्रतरहित होय तौऊ उत्तम नाना प्रकारके स्वर्गके सुख पावै है. भावार्थ—जामें सम्यक्त्व गुण होय सो प्रधान पुरुष है देवेन्द्रादिककरि पूज्य होय है. व-

बहुरि सम्यक्त्वमें देवहीकी आयु बांधै है तातैं व्रतरहितकै भी स्वर्गहीका जाना मुख्य कहा है, बहुरि सम्यक्त्वगुणाप्रधानका ऐसा भी अर्थ होय है जो सम्यक्त्व पच्चीस प्रल दोषनितैं रहित होय अपने निशंकित आदि गुणानिकरि सहित होय तथा संवेगादि गुणानिकरि सहित होय ऐमें सम्यक्त्वके गुणानिकरि प्रधान पुरुष होय सो देवेन्द्रादिकरि पूज्य होय है अर स्वर्गकू प्राप्त होय है ॥ ३२६ ॥

सम्माइष्टी जीवो दुग्गइहेदुं ण बंधदे कम्मं ।

जं बहुभवेसु बद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥ ३२७ ॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टा जीव है सो दुर्गतिका कारण जो अशुभ कर्म ताकूं नाहीं बांधै है, बहुरि जो पापकर्म पूर्वे बहुत भवनिविषै बांध्या है तिसका भी नाश करै है, भावार्थ—सम्यग्दृष्टा मरणकरि द्वितीयादिक नरक जाय नाहीं, ज्योतिष व्यंतर भवनवासी देव होय नाहीं, स्त्री उपजै नाहीं, पांच यावर विकलत्रय असैनी निगोद म्लेच्छ कुभोगभूमि इनिविषै उपजै नाहीं, जातैं याकै अनन्तानुबन्धीके उदयके अभावतैं दुर्गतिके कारण कषायनिके स्थानकरूप परिणाम नाहीं हैं इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो तीनकाल तीन लोकविषै सम्यक्त्व समान कल्याणरूप अन्य पदार्थ नाहीं है, बहुरि मिथ्यात्वसमान शत्रु नाहीं है, तातैं श्रीगुरुनिका यह उपदेश है जो अपना सर्वस्व उद्यम उपाय यत्नकरि मिथ्यात्वका नाश

करि सम्यक्त्व अंगीकार करना. ऐसैं गृहस्थधर्मके बारह भेद-
निमें पहला भेद सम्यक्त्वसहितपणा है ताका निरूपण
किया ॥ ३२७ ॥

आगे ग्यारह भेद प्रतिमाके हैं तिनका स्वरूप कहै हैं
तहां प्रथम ही दार्शनिक नामा श्रावककूं कहै हैं,—
बहुतससमणिणदं जं मज्जं मंसादिणिंदिदं दव्वं ।

जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि ३२८

भावार्थ—बहुत त्रस जीवनिके घातकरि तथा णिकरि
सहित जो मदिरा तथा अति निन्दनीक जो मांस आदि द्रव्य
तिनिकूं जो नियमनै न सेवै, भक्षण न करै सो दार्शनिक श्रा-
वक है. भावार्थ—मदिरा अर मांस अर आदि शब्दतैं मधु
अर पंच उदंबर फल ए वस्तु बहुत त्रस जीवनिके घातकरि
सहित हैं तातैं दार्शनिक श्रावक है सो तिनिकूं भक्षण न करै।
मद्य तौ मनकूं मोहै है तव धर्मकूं भूलै है. बहुरि मांस त्रस
घातविना हाय ही नाहीं. मधुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है त्रस
घातका ठिकाणा ही है. बहुरि पीयल बड पीलू फलनिमें प्र-
त्यक्ष त्रस जीव उडते देखिये हैं। अन्य ग्रंथनिमें कह्या है जो
ए श्रावकके आठ मूल गुण हैं अर इनिकूं त्रस हिंसाके उप-
लक्षण कहे हैं तातैं जिन वस्तुनिमें त्रसहिंसा बहुत होय ते
श्रावकके अभक्ष्य हैं. तातैं भक्षणै योग्य नाहीं. तथा सात वि-
सन अन्याय प्रवृत्तिका मूल हैं तिनका भी त्यागइहां कह्या
है. जूवा मांस मद वेश्या सिकार चोरी परस्त्री ए सात व्य-

सन कहे हैं. सो व्यसन नाम आपदा वा कष्टका है सो इनिके सेवनहारेकूं आपदा आवै है, राज पंचनिका दंडयोग्य होय है तथा तिनिका सेवन भी आपदा वा कष्टरूप है, श्रावक ऐसे अन्याय कार्य करै नहीं. इहां दर्शन नाम सम्यक्त्वका है तथा धर्मकी मूर्ति सर्वके देखनेमें आवै ताका भी नाम दर्शन है. सो सम्यग्दृष्टी होय जिनमतकूं सेवै अर अभक्ष अन्याय अंगीकार करै तौ सम्यक्त्वकूं तथा जिनमतकों लजावै मलिन करै तातैं इनिकों नियमकरि छोडे ही दर्शन-प्रतिमाधारी श्रावक होय है ॥ ३२८ ॥

दिढाचिन्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ३२९

भाषार्थ—ऐसे व्रतकूं दृढाचिन्त हूवा संता, निदान कहिये इह लोक परलोकनिके भोगनिकी बांछा ताकरि रहित हूवा संता वैराग्यकार भावित (आला) है चित्त जाका, ऐसा हूवा संता जो सम्यग्दृष्टी पुरुष करै है सो दार्शनिक श्रावक कहिए है । भावार्थ—पहिली गायामें श्रावक कहा ताके ए तीन विशेषण और जानने. प्रथम तौ दृढचित्त होय परीषह आदि कष्ट आवै तौ व्रतकी प्रतिज्ञातैं चिगै नहीं, बहुरि निदानकरि रहित होय अर इस लोकसम्बन्धी जस सुख संपत्ति वा परलोकसम्बन्धी शुभगतिकी बांछा रहित वैराग्य भावनाकरि चित्त जाका आला कहिये सींच्या होय अभक्ष अन्यायकूं अत्यन्त अनर्थ जाणि त्याग करै ऐसा नहीं

जो आश्रममें त्यागने योग्य कहे तातें छोड़ने, परिणाममें राग मिटे नहीं त्यागके अनेक आशय होय हैं सो याकै अन्य आशय नहीं केवल तीव्र कषायके निमित्त महापाप जानि त्यागै है इनिकूं त्यागै ही आगामी प्रतिमाके उपदेशयोग्य होय है. वृत्ति निःशल्य कहा है सो शल्यरहित त्याग होय है ऐसैं दर्शनप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप कहा ॥ २३० ॥

आगे दूजी व्रतप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

पंचाणुव्रतधारी गुणवयसिक्खावणुहिं संजुत्तो ।

दिढचित्तो समजुत्तो णाणी वयसावओ होदि ३३०

भाषार्थ—जो पांच अणुव्रतका धारी होय बहुरि गुण-व्रत तीन अर शिक्षाव्रत चारि इनिकरि संयुक्त होय बहुरि दृढचित्त होय बहुरि समभावकरि युक्त होय बहुरि ज्ञानवान होय सो व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक है. भावार्थ—इहां अणु शब्द अल्पका वाचक है जो पंच पापमें स्थूल पाप हैं तिनिका त्याग है. तातें अणुव्रत संज्ञा है. बहुरि गुणव्रत अर शिक्षाव्रत तिनि अणुव्रतनिकी रक्षा करनहारे हैं तातें अणु-व्रती तिनिकूं भी धारै हैं. याकै प्रतिज्ञा व्रतकी है सो दृढ-चित्त है कष्ट उपसर्ग परीषद् आये शिथिल न होय है. बहुरि अप्रत्याख्यानावरण कषायके अभावतैं ये व्रत होय हैं. अर प्रत्याख्यानावरण कषायके मन्द उदयतैं होय हैं. तातें उपशमभाव सहितपणा विशेषण कीया है. यद्यपि दर्शनप्र-तिमा धारीके भी अप्रत्याख्यानावरणका अभाव तौ भया है.

परन्तु प्रत्याख्यानावरण कषाथके तीव्र स्थानकनिके उदयतैं
अतीचार रहित पंच अणुव्रत होय नहीं तातैं अणुव्रतसंज्ञा
नहीं आवै है अर स्थूल अपेक्षा अणुव्रत ताकै भी त्रसका
भक्षणका त्यागतैं अणुत्व है व्यसनानिमें चोरीका त्याग है
सो असत्य भी यामें गर्भित है परस्त्रीका त्याग है वैराग्य
भावना है तातैं परिग्रहके भी मूर्छाके स्थानक घटते हैं परि-
माण भी करै है परन्तु निशतिचार नहीं होय, तातैं व्रतप्र-
तिमा नाम न पावै है. बहुरि ज्ञानी विशेषण है सो युक्त ही
है सुम्यगृष्टी होय करि व्रतका स्वरूप जाणि गुरुनिकी दीई
प्रतिज्ञा ले है सो ज्ञानी ही होय है, ऐसैं जानना ॥ ३३० ॥

आगें पंच अणुव्रतमें पहला अणुव्रत कहै हैं,—

जो वावरई सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो ।

निंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभे ॥ ३३१ ॥

तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहिं णेव कारयदि ।

कुव्वंतं पि ण इच्छदि पढमवयं जायदे तस्स ॥ ३३२ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक त्रस जीव वेन्द्रिय तेन्द्रिय चोन्द्रिय
पंचेंद्रियका घात मन वचन काय करि आप करै नहीं परके
पास करावै नहीं अर परकूं करताकों इष्ट (भला) न माने
ताकै प्रथम अहिंसा नामा अणुव्रत होय है. सो कैा है श्रा-
वक ? दयासहित तौ व्यापार कार्यमें प्रवृत्त है अर सर्व प्रा-
णीकूं आप समान मानता है. बहुरि व्यापारादि कार्यनिमें

हिंसा होय है ताकी अपने मनविषै अपनी निंदा करै है. अर गुरुनिपास अपना पापकूं कहै है सो गद्गदकरि युक्त है. जो पाप लगै है ताका गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त ले है. बहुरि जिनिमें तस हिंसा बहुत होती होय ऐसे बडे व्यापार आदिके कार्य महा आरम्भ तिनिकों छोडता संता प्रवर्त्तै है. भावार्थ—तस घात आप करै नाहीं. पर पासि करावै नाहीं करतेकूं भला जानै नाहीं पर जीवकों आप समान जानै तब परघात करै नाहीं. बहुरि बडे आरम्भ जिनिमें तस घात बहुत होय ते छोडै अर अल्प आरम्भमें तस घात होय तिससैं आपकी निन्दा गद्गद करै आलोचन प्रतिक्रमणादि प्रायश्चित्त करै. बहुरि इनिके अतीचार अन्य ग्रन्थनिमें कहे हैं तिनिकों टालै. इहां गायामें अन्य जीवकों आप समान जानना कहा है तामें अतीचार टालना भी आय गया. परके बध बंधन अतिभारारोपण अनपाननिरोधमें दुःख होय है सो आप समान परकूं जानै तब काहेकूं करै ॥ ३३१-३३२ ॥

आगे दूधरा अणुव्रतकों कहै हैं,—

हिंसावयणं ण वयदि कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि ।
 णिट्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झवयणं पि ३३३
 हिदमिदवयणं भासदि संतोसकरं तु सब्बजीवाणं ।
 धम्मपयासणवयणं अणुव्वई हवदि सो विदिओ ॥

भाषार्थ—जो हिंसाका वचन न कहै बहुरि कर्कश वचन न कहै बहुरि निष्ठुर वचन न कहै बहुरि परका गुह्य वचन न कहै. तो कैसा वचन कहै ? परके हितरूप तथा प्रमाणरूप वचन कहै. बहुरि सर्व जीवनिक संतोषका करनहारा वचन कहै, बहुरि धर्मका प्रकाशनहारा वचन कहै सो पुरुष दूसरा अणुव्रतका धारी होय है । भावार्थ—असत्य वचन अनेक प्रकार है. तहां सर्वथा त्याग तो सकल चारित्र्य मुनिकै होय है अर अणुव्रतमें स्थूलका ही त्याग है. सो जिस वचनतैं परजीवका घात होय ऐसा तो हिंसाका वचन न कहै बहुरि जो वचन परकूं कटवा लागै सुणतैं ही कोधादिक उपजै ऐसा कर्कश वचन न कहै. बहुरि परके उद्वेग उपजि आवै, भय उपजि आवै, शोक उपजि आवै कलह उपजि आवै ऐसा निष्ठुरवचन न कहै. बहुरि परके गोप्य मर्मका प्रकाश करनेवाला वचन न कहै. उपलक्षणातैं और भी ऐसा जामैं परका बुरा होय सो वचन न कहै. बहुरि कहै तो हितमित वचन कहै । सर्व जीवनिक संतोष उपजै ऐसा कहै. बहुरि धर्मका जातैं प्रकाश होय ऐसा कहै. बहुरि याके अतीचार अन्य ग्रंथनिमें कहे हैं जो मिथ्या उपदेश रहो भ्याख्यान कूटलेखक्रिया न्यासापहार साकारमन्त्रभेद सो गाथामें विशेषण कीये तिनितैं सर्व गर्भित भये. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो जातैं परजीवका बुरा होय जाय अपने उपरि आपदा आवै तथा वृथा प्रलाप वचनतैं अपने प्रमाद बढै ऐसा स्थूल असत्य वचन अणुव्रती कहै नाहीं. परपासि कहावै

नाहीं. कहनेवालेकूं भला न जानै ताकै दूसरा अणुव्रत होय है ॥ ३३३-३३४ ॥

आगे तीसरा अणुव्रतकूं कहै हैं,—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण पेय गिल्लेदि ।

वीसरियं पि ण गिल्लदि लामे थूये हि तूसेदि ३३५

जो परदठवं ण हरइ मायालोहेण कोहमाणेण ।

दिठचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ ३३६

भावार्थ—जो श्रावक बहु मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि न ले, बहुरि कपटकरि लोभकरि क्रोधकरि मानकरि परका द्रव्य न ले, सो तीसरा अणुव्रत धारी श्रावक होय है. सो कैसा है ? दृढ है चित्त जाका, कारण पाय प्रतिज्ञा बिगाडै नाहीं। बहुरि शुद्ध है उज्ज्वल है बुद्धि जाकी. भावार्थ—सातव्य-सनके त्यागमें चोरीका त्याग तौ किग ही है तामें इहां यह विशेष जो बहु मोलकी वस्तु अल्प मोलमें लेनेमें भी झगडा उपजै है न जाणिये है कौन कारणतैं पैला अल्पमें दे है बहुरि परकी भूली वस्तु तथा मार्गमें पड़ी वस्तु भी न ले, यह न जाणै तौ पैला न जाणै ताका डर कहा ? बहुरि व्यापार में थोडे ही लाभ वा नफाकरि संतोष करै, बहुत लालच लोभतैं अनर्थ उपजै है. बहुरि कपट प्रपंचकरि काहूका धन ले नाहीं. कोईनै आपके पास धरया होय तौ ताकूं न देनेके भाव राखै नाहीं. बहुरि लोभकरि तथा क्रोधकरि परका धन

खोसि न ले तथा मानकरि कहै हम बडे जोरावर हैं लीया
 तौ लीया. ऐसैं परका धन ले नाहीं. ऐसैं ही परकों लि-
 वावै नाहीं. ऐसैं लेतेकूं भला जाणै नाहीं. बहुरि अन्य ग्र-
 न्थनिमें याके पांच अतीचार कहे हैं. चोरकों चोरीके अर्थ
 प्रेरणा करना, तिसका लयाया धन लेना, राज्यतैं विरुद्ध होय
 सो कार्य करना, व्योपारके तोल बाट हीनाधिक रखणै,
 अल्पमोलकी वस्तुकूं बहु मोलकी दिखाय ताका व्योहार
 करना, ए पांच अतीचार हैं सो गाथामें विशेषण किये ति-
 निमें आय गये. ऐसैं निरतिचार स्तेयत्यागव्रतकूं पालै सो
 तीसरा अणुव्रतका धारी श्रावक होय है ॥ ३३५-३३६ ॥

आगे ब्रह्मचर्यव्रतका व्याख्यान करै हैं,—

असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
 रूवं लावणं पि य मणमोहेणकारणं मुणइ ॥ ३३७
 जो मण्णदि परमाहिलं जणणीवहणीसुआइसारिथं ।
 मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो ॥ ३३८ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक स्त्रीकी देहकूं अशुचिमयी दुर्गन्ध
 जागतो संतो तथा ताका रूप लावण्य ताकों भी मनकेविषै
 मोह उपजावनेकों कारण जाणै है यातैं विरक्त हूवा सन्ता
 प्रवर्तै है बहुरि जो परस्त्री बढीकों माता सरिखी, बरावरि-
 कीकूं बहणसारिखी, छोटीकों वेटीसारिखी, मनबचनकाय-
 करि जो जाणै है सो स्थूल ब्रह्मचर्यका धारक श्रावक है. प-

रस्त्रीका तौ मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै अर स्वस्त्रीकैविषै संतोष करै. तीव्रकामके विनोद क्रीडारूप न प्रवर्त्तै. जातैं स्त्रीके शरीरकूं अपवित्र दुर्गन्ध जाणि बैराग्य भावनारूप भाव राखै. अर कामकी तीव्र वेदना इस स्त्रीके निमित्ततैं होय है ताके रूपलावण्य आदि चेष्टाकूं मनके मोहनेकौं ज्ञानके भुलावनेकौं कामके उपजावनेकौं कारण जाणि विरक्त रहै सो चतुर्थ अणुव्रतका धारी होय है. बहुरि याके अतीचार परविवाह करणा, परकी परणी बिनापरणी स्त्रीका संसर्ग, कामकी क्रीडा, कामका तीव्र अभिप्राय, ए कहा है. ते स्त्रीका देहतैं विरक्त रहना इस विशेषणमें आय गये. परस्त्रीका त्याग तौ पहली प्रतिमामें सात व्यसनके त्यागमें आय गया, इहां अति तीव्र कामकी वासनाका भी त्याग है. तातैं अतीचार रहित व्रत पलै है. अपनी स्त्रीकेविषै भी तीव्रव्रत नाहीं होय है. ऐसैं ब्रह्मचर्य व्रतका कथन कीया ॥ ३३७-३३८ ॥

अब परिग्रहपरिमाण पांचमा अणुव्रतका कथन करै हैं—
जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो ।
णिहणदि तिह्हा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ३३९॥
जो परिमाणं कुब्बदि धणधाणसुवण्णस्सित्तमार्इणं ।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥३४०॥

भाषार्थ—जो पुरुष लोभ कषायकौं हीनकरि संतोषरूप

रसायण करि संतुष्ट हूवा संता सर्व धन धान्यादि परिग्रहकों विनाशीक मानता संता दुष्ट तृष्णाकों अतिशयकरि हणै है। बहुरि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रहका अपना उपयोग सामर्थ्य जाणि कार्यविशेष जाणि तिसके अनुसार परिमाण करै है ताकै पांचमा अणुव्रत होय है। अंतरंगका परिग्रह तौ लोभ तृष्णा है ताकों क्षीण करै अर बाह्यका परिग्रह परिमाण करै अर दृढचित्तकरि प्रतिज्ञाभंग न करै सो अतिचाररहित पंचम अणुव्रती होय है। ऐसैं पांच अणुव्रतनिरतिचार पालै सो व्रत प्रतिमाधारी श्रावक है ऐसैं पांच अणुव्रतका व्याख्यान कीया ॥ ३३९-३४० ॥

अब इनि व्रतनिकी रक्षाकरनेवाले सात शील हैं तिनिका व्याख्यान करै हैं तिनमें पहले तीन गुणव्रत हैं तामें पहला गुणव्रतकों कहै हैं,—

जह लोहणासणट्ठं संगपमाणं हवेइ जीवस्स ।
सव्वं दिसिसु पमाणं तह लोहं णासए णियमा ३४१
जं परिमाणं कीरदि दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं ।
उवओगं जाणित्ता गुणव्वयं जाण तं पढमं ॥३४२॥

भाषार्थ—जैसैं लोभके नाश करनेके अर्थ जीवकै परिग्रहका परिमाण होय है तैसैं सर्व दिशानिर्विधै परिमाणकीया हूवा भी नियमतैं लोभका नाश करै है। तातैं जे सर्व ही जे पूर्व आदि प्रसिद्ध दश दिशा तिनिका अपना उपयोग प्रयो-

जन कार्य जाणिकरि परिमाण करै हैं सो पहला गुणव्रत है-
 पहलैं पांच अणुव्रत कहे तिनिका ए गुणव्रत उपकारी है-
 इहां गुण शब्द उपकारवाचक लेणा सो लोभके नाश कर-
 नेकों जैसें परिग्रहका परिमाण करै तैसें ही लोभके नाश क-
 रनेकों भी दिशाका परिमाण करै. जहां ताई परिमाण कीया
 ताके परैं जो द्रव्य आदिकी प्राप्ति होती होय तौऊ तहां
 जाय नहीं. ऐसें लोभ घट्या. बहुरि हिंसाका पापभी प-
 रिमाण परैं न जानेतैं तहां सम्बन्धी न लागै, तब तिस स-
 म्बन्धी महाव्रत तुल्य भया ॥ ३४१-३४२ ॥

अब दूसरा गुणव्रत अनर्थदंड विरतिकूं कहै हैं,—

कज्जं किंपि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो
 सो खलु हवे अणत्थो पंचपयारो वि सो विविहो ३४३

भाषार्थ—जो कार्य प्रयोजन तौ अपना किछू साथै नहीं
 अर केवल पापहीकों उपजावै ऐसा कार्य होय ताकों अनर्थ
 कहिये. सो पांच प्रकार है तथा अनेक प्रकार भी है. भावार्थ,
 निःप्रयोजन पाप लगावै सो अनर्थदंड है सो पांच प्रकार करि
 कहै हैं. अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान, दुः-
 श्रुतश्रावणादि बहुरि अनेक प्रकार भी है ॥ ३४३ ॥

अब प्रथम भेदकूं कहै हैं,—

परदोसाणं गहणं परलच्छीणं समीहणं जं च ।

परइत्थीआलोओ परकलहालोयणं पढमं ॥ ३४४ ॥

भाषार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करना परकी लक्ष्मी धन सम्पदाकी बांछा करना परकी स्त्रीकूं रागसहित देखना परकी कलहकूं देखना इत्यादि कार्यनिकूं करै सो पहला अनर्थदंड है. भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करनेमें अपने भाव तौ बिगड़ै अर प्रयोजन अपना किछू सिद्ध नाहीं, परका बुरा होय आपके दुष्टपना ठहरै. बहुरि परकी सम्पदा देखि आप ताकी इच्छा करै तौ आपके किछू आय जाय नाहीं यामें भी निःप्रयोजन भाव बिगड़ै है. बहुरि परकी स्त्रीकूं रागसहित देखनेमें भी आप त्यागी होयकरि निःप्रयोजन भाव काहेकूं बिगाड़ै ? बहुरि परकी कलहके देखनेमें भी किछू अपना कार्य सधता नहीं. उलटा आपमें भी किछू आफति आय पडै है. ऐसैं इनिकूं आदि देकरि जिन कार्यनिविषै अपने भाव बिगड़ै तहां अध्ययन नामा पहला अनर्थदंड होय है सो अणुव्रतभंगका कारण है याके छोटें व्रत टूट रहै हैं ॥ ३४४ ॥

अब दृजा पापोपदेश नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,—
जो उवएसो दिज्जइ किसिपसुपालणवणिज्जपमुहेसु ।
पुरिसिस्थीसंजोए अणत्थदंडो हवे विदिओ ॥ ३४५ ॥

भाषार्थ—जो खेती करना पशुका पालना वाणिज्य करना इत्यादि वापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्रीका संजोग जैसे होय तैसें करना इत्यादि कार्यनिका परकूं उपदेश देना इनिका विधान बतावना जामें किछू अपना प्रयोजन सधै

नाहीं केवल पाप ही उपजै सो दूजा पापोपदेश नाम अनर्थ-
दंड है. परकं पापके उपजै में अपने केवल पाप ही बंधै है.
तातैं व्रतभंग होय है तातैं याकूं छोडे उनकी रक्षा है व्रत
परि गुण करै है उपकार करै है तातैं याका नाम गुणव्रत
है ॥ ३४५ ॥

आगे तीसरा प्रमादचरित नाम अनर्थदंडका भेदकूं कहै
हैं,—

विहलो जो वावारो पुढवीतोयाण अग्गिपवणाण ।
तह विवणप्फदिछेओ अणत्थदंडो हवे तिदिओ ३४६

भाषार्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन इनके विफल निःप्र-
योजन व्यापारमें प्रवृत्ति करना तथा निःप्रयोजन वनस्पति
हरतिकायका छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरित
नामा अनर्थ दण्ड है. भावार्थ— जो प्रमादके बशि होकर
पृथिवी जल अग्नि पवन हरितकायकी निःप्रयोजन विराध-
ना करै तहां त्रस थावरनिका घात ही होय अपना कार्य
किछू सधै नाहीं तातैं याके करनेमें व्रत भंग है. छोडें व्रत-
की रक्षा होय है ॥ ३४६ ॥

आगे चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,
मज्जारपहुदिधरणं आयुधलोहादिविक्रणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं अणत्थदंडो हवे तुरिओ ३४७

भाषार्थ—जो बिलाव आदि जो हिंसक जीवोंका पाल-

ना बहुरि लोहका तथा लोह आदिके आयुधनिका व्योपार करना, देना लेना बहुरि लाख खला आदि शब्दतैं विष वस्तु आदिका देना लेना विणज करना यह चौथा हिंसा-दान नामा अनर्थदंड है. भावार्थ—हिंसक जीवनिका पालन तौ निःप्रयोजन अर पाप प्रसिद्ध ही है. बहुरि बहुत हिंसाके कारण अस्त्र लोह लाख आदिका विणज करणा देना लेना भी करनेमें फल अल्प है. पाप बहुत है । तातैं अनर्थदंड ही है यामें प्रवर्त्तव्रतभंग होय है, छोडे व्रतकी रक्षा है ॥ ३४७ ॥

आगें दुःश्रुतिनामा पांचमा अनर्थदण्डक कहै हैं,—
जं सवणं सत्थाणं भंडणवसियरणकामसत्थाणं ।

परदोसाणं च तहा अणत्थदंडो हवे चरमो ॥३४८

भाषार्थ—जो सर्वथा एकान्ती तिनिके भावे शास्त्र शास्त्रसारिखे दीखैं ऐसे कुशास्त्र तथा भांडाक्रिया हास्य कौतूहलके कथनके शास्त्र तथा बशीकरण मंत्रप्रयोगके शास्त्र तथा स्त्रीनिके चेष्टाके वर्णनरूप कामशास्त्र तिनिका सुनना तथा उपलक्षणतैं वांचना सीखना सुनावना भी जानना. बहुरि परके दोषनिकी कथा करना सुनना यह दुःश्रुतिश्रवण नाम अन्तका पांचवा अनर्थदंड है. भावार्थ—सोटे शास्त्र सुनने वाचने सुनावने रचनेमें किछू प्रयोजन सिद्धि नाहीं. केवल पाप ही होय है अर आजीविका निमित्त भी इनिका व्योहार करना श्रावककं योग्य नाहीं. व्योपार आदिकी योग्य

आजीविका ही श्रेष्ठ है. जामें व्रतभंग होय सो काहेकूं करै ?
व्रतकी रक्षा ही करनी ॥ ३४८ ॥

आगे इस अनर्थदंडके कथनकूं संकोचै हैं,—
एवं पंचपयारं अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं ।

जो परिहरेइ णाणी गुणव्वदी सो हवे विंदिओ ३४९

भाषार्थ—जो ज्ञानी श्रावक इसप्रकार अनर्थदंडकूं दुःख-
निका निरन्तर उपजावनहारा जाणि छोडै है सो दूसरा गुण-
व्रतका धारी श्रावक होय है. भावार्थ—यह अनर्थदंडका त्या-
गनामा गुणव्रत अणुव्रतनिका बडा उपकारी है तातैं श्राव-
कनिकूं अवश्य पालना योग्य है ॥ ३४९ ॥

आगे भोगोपभोगनामा तीसरा गुणव्रतकूं कहै हैं,—
जाणित्ता संपत्ती भोयणतंबोलवत्थुमाईणं ।

जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स ॥ ३५० ॥

भाषार्थ—जो अपनी सम्पदा सामर्थ्य जाणि अर भो-
जन तांबूल वस्त्र आदिका परिमाण मर्याद करै तिस श्राव-
ककै भोगोपभोग नाम गुणव्रत होय है. भावार्थ—भोग तौ
भोजन तांबूल आदि एकवार भोगमें आवै सो कहिए.
बहुरि उपभोग वस्त्र गहना आदि फेरि २ भोगमें आवै सो
कहिये. तिनिका परिमाण यमरूप भी होय है अर नित्य
नियमरूप भी होय है सो यथाशक्ति अपनी सामग्रिकूं विचारि
यमरूप करि ले तथा नियमरूप भी कहे हैं तिनितैं नित्य

काम जाणै तिस अनुसार करवो करै. यह अणुव्रतका बड़ा उपकारी है ॥ ३५० ॥

आगे भोगपभोगकी छती वस्तुकं छोड़ै है ताकी प्रशंसा करै है,—

जो परिहरेइ संतं तस्स वयं थुव्वदे सुरिंदेहिं ।

जो मणुलड्डुव भक्खदि तस्स वयं अप्पसिद्धियरं ॥

भाषार्थ—जो पुरुष छती वस्तुकूं छोड़ै है त के व्रतकूं सुरेन्द्र भी सगवै है प्रशंसा करै है बहुरि अणछतीका छोड़णा तौ ऐसा है जैसे लाडू तौ होय नहीं अर संकल्पमात्रमनमें लाडूकी कल्पनाकार लाडू ग्वाय तैसा है. सो अणछती वस्तु तौ संकल्पमात्र छोड़ी ताकै वह छोड़ना व्रत तौ है परन्तु अल्पसिद्धि करनेवाला है. ताका फल थोड़ा है. इहां कोई पूछै भो भोगभोग परिमाणकूं तीसरा गुणव्रत कहा सो तत्त्वार्थसूत्रविषै तौ तीसरा गुणव्रत देशव्रत कहया है भोगपभोग परिमाणकूं तीसरा शिद्धाव्रत कहया है सो यह कैसे ? ताका समाधान—जो यह आचार्यनिकी विवक्षाका विचित्रपणा है. स्वामी समंतभद्र आचार्यने भी रत्नकरगडश्रावकाचारमें इहां कहा तैसे ही कहया है सो यामें विरोध नहीं. इहां तौ अणुव्रतकी उपकारीकी अपेक्षा लई है अर तहां सचित्तादि भोग छोड़नेकी अपेक्षा मुनिव्रतकी शिक्षा देनेकी अपेक्षा लई है किछू विरोध है नहीं. ऐसे तीन गुणव्रतका व्याख्यान किया ॥ ३५१ ॥

आगे व्यापारि शिक्षाव्रतका व्याख्यान करें हैं तहां प्रथम ही सामायिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

सामाइयस्स करणं खेत्तं कालं च आसणं विलओ ।
मणवयणकायसुद्धी णायव्वा हुंते सत्तेव ॥ ३५२ ॥

भाषार्थ—पहलै तौ सामायिकके करणोविषै क्षेत्र काल आसन बहुरि लय बहुरि मनवचनकायकी शुद्धता ए सात सामग्री जानने योग्य हैं. तहां क्षेत्रकूं कहै हैं ॥ ३५२ ॥

जत्थ ण कलयलसदं बहुजणसंघट्टणं ण जत्थत्थि ।
जत्थ ण दंसादीया एस पसत्थो हवे देसो ॥ ३५३ ॥

भाषार्थ—जहां कलकलाट शब्द नहीं होय. बहुरि जहां बहुत लोकनिका संघट्ट आवना जावना न होय. बहुरि जहां डांस मच्छर कीडी पीपल्या इत्यादि शरीरकूं बाधा करनहारे जीव न होय, ऐसा क्षेत्र सामायिक करनेकूं योग्य है. भाषार्थ—जहां चित्तकूं कोऊ दोष उपजानेके कारण न होय तहां सामायिक करना ॥ ३५३ ॥

अब सामायिकके कालकूं कहै हैं,—

पुव्वहे मज्झहे अवरहे तिहि वि णालियाल्लको ।
सामाइयस्स कालो सविणयणिस्सेसणिदिट्ठो ३५४

भाषार्थ—पुर्वाह्न कहिये प्रभातकाल मध्याह्न कहिये बीचिका दिन अपराह्न कहिये पाछिला दिन इनि तीनों काल-

विषै छह छह घड़ीका काल सामायिकका है, सो यह वि-
नय सहित निःस्व कहिये परिग्रह रहित तिनिके ईश जो
गणधर देव तिनिके कछा है। भावार्थ—प्रभात तीन घड़ीका
तड़केसूं लगाय तीन घड़ी दिन चढ्या ताई ऐसैं छह घड़ी
पूर्वाह्नकाल. दोय पहर पहला तीन घड़ीतें लगाय पीछें
तीन घड़ी ऐसैं छह घड़ी मध्याह्नकाल. तीन घड़ी दिनसूं
लगाय तीन घड़ी राति ताई ऐसैं छह घड़ी अपराह्नकाल.
यह सामायिककालका उत्कृष्ट काल है. बहुरि दोय घड़ीका
भी कछा है ऐसैं तीनूं कालकी छह घड़ी होय हैं ॥

अब आसन तथा लय अर मन वचन कायकी शुद्ध-
ताकूं कहै हैं.—

बंधितो पञ्जकं अहवा उड्ढेण उब्भओ ठिच्चा ।
कालपमाणं किच्चा इंदियवावारवज्जिओ होऊ ३५५
जिणवयणेयग्गमणो संपुडकाओ य अंजलिं किच्चा
ससरूवे मेलीणो बदणअत्थं वि चितित्तो ॥ ३५६ ॥
किच्चा देसपमाणं सठवं सावज्जवज्जिदो होऊ ।
जो कुडवदि सामइयं सो मुणिसरिसो हवे सावो ॥

भावार्थ—जो र्यक आसन बांधिकरि अथवा ऊभा खडा
आसननै षष्ठिकरि, कलका प्रमाणकरि, इन्द्रियनिके व्या-
पार विषयतिविषै न हीं होनेके अर्थ जिनवचनकेविषै एकाग्र
मनकरि, कायकूं संकोचकरि, हस्तकी अंजलि जोडिकरि,

बहुरि अपना स्वरूपविषै लीन हूवा संता अथवा सामायिक का बंदनाका पाठके अर्थकू चितवता संता प्रवर्त्तै, बहुरि क्षेत्रका परिमाणकरि सर्व सावद्ययोग जो गृह बन्धन आदि पापयोग ताकोँ त्यागकरि पापयोगतैं रहित होय सामायिक करै सो श्रावक तिसकाल मुनि सारिखा है. भावार्थ—यह शिक्षाव्रत है तहां यह अर्थ सूचै है जो सामायिक है सो सर्व रागद्वेषसं रहित होय सर्व बाह्यके पापयोग क्रियासं रहित होय अपने आत्मस्वरूपकेविषै लीन हूवा मुनि प्रवर्त्तै है सो यह सामायिक चारित्र मुनिका धर्म है. सो ही शिक्षा श्रावककूँ दीजिये है जो सामायिक कालकी मर्यादाकरि तिस कालमें मुनिकी रीति प्रवर्त्तै जातैं मुनि भये ऐसैं सदा रहना होयग, इस ही अपेक्षाकरि तिसकाल मुनि सारिखा श्रावककूँ कह्या है ॥ ३५५-३५७ ॥

आगेँ दूसरा शिक्षाव्रत प्रोक्षोपवासकूँ कहै हैं,—

पुष्पाणविलेपणभूषणइत्थीसंसग्गगंधधूपदीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी वेरग्गभरणभूषणं किच्चा ३५८
दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एणभत्ताणिविचयडी
जो कुणइ एवमाई तस्स वयं पोसहं विदियं ॥३५९॥

भावार्थ—जो ज्ञानी श्रावक एषपक्षविषै होय पर्व आठैं चौदसिविषै स्नान विलेपन आभूषण स्त्री आ संसर्ग सुगंध धूप दीप आदि भोगोपभोग वस्तुकूँ छोडै अर वैराग्य भा-

(१९६)

बना सोई भए आभरण तिसकरि आत्माकूं शोभायमानकरि
 उपवास तथा एकभक्त तथा नीरस आहार करै तथा
 आदि शब्दकरि कांजी करै. केवल भात पाणी ही ले. ऐसैं
 करै ताकैं प्रोषधोपवासव्रत नामका शिक्षाव्रत होय है. भावार्थ—
 जैसैं सामायिक करनेकूं कालका नियमकरि सर्व पापयोगसं-
 निवृत्त होयकरि एकान्त स्थानमें धर्मध्यानकरता संता बैठे.
 तैसै ही सर्व गृहकार्यकूं त्यागकरि समस्त भोग उपभोग
 सामग्रीकूं छोडिकरि सातैं तेरसिके दोय पहर दिन पीछैं
 एकान्त स्थानक बैठे, धर्मध्यान करता संता सोलह पहर
 ताई मुनिकी ज्यों रहै, नवमी पूर्णमासीकूं दोयपहरां प्रतिज्ञा
 पूरण होय, तब गृहकारजमें लागै. ताकैं प्रोषधव्रत होय है.
 आठैं चौदसिके दिन उपवासकी सामर्थ्य न होय तौ एक
 बार भोजन करै. तथा नीरस भोजन कांजी आदि अल्प
 आहार कर ले. समय धर्मध्यानमें लगावै. सोलह पहर आगे
 प्रोषध प्रतिमामें कही है. तैसैं करै. परन्तु इहां गायामें न
 कही तातैं सोलह पहरका नियम न जानना. यह भी मुनि-
 व्रतकी शिक्षा ही है ॥ ३५८-३५९ ॥

आगे अतिथिसंविभाग नामक तीसरा शिक्षाव्रत कहै हैं,—
 तिविहे पत्तम्मि सया सच्चाइगुणेहिं संजुदो णाणी ।
 दाणं जो देदि सयं णवदाणविहीहिं संजुत्तो ॥३६०॥
 सिक्खावयं च तदियं तस्स हवे सव्वसोक्खसिद्धियं ।

दाणं चउद्विहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं ॥३६१॥

भावार्थ—जो ज्ञानी श्रावक उत्तम मध्यम जघन्य तीन प्रकार पात्रनिके निमित्त दाताके श्रद्धा आदि गुणानिकरि युक्त होयकरि अपने हस्तकरि नवधा भक्ति करि संयुक्त हूवा संता नितप्रति दान देहै. तिस श्रावकके तीसरा शिक्षाव्रत होय है. सो दान कैसा है आहार अभय औषध शास्त्रदानके भेदकरि चारि प्रकार है. बहुरि यह अन्य जे लौकिक धनादिकका दान तिनिमें अतिशयकरि सार है, उत्तम है. बहुरि सर्व सिद्धि अर सुखका करनहारा है. भावार्थ—तीन प्रकार पात्रनिमें उत्कृष्ट तौ मुनि, मध्यम अणुव्रती श्रावक, जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी हैं. बहुरि दातारके सात गुण श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, शक्ति ए सात हैं तथा अन्य प्रकार भी कहे हैं. इस लोकके फलकी बांछा न करै, क्षमावान् होय, कपट रहित होय, अन्यदातातैं ईर्ष्या न होय, दीयेका विषाद न करै, दीयेका हर्ष करै, गर्व न करै ऐसें भी मात कहे हैं. बहुरि प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजनकरणा, प्रणाम करणा, मनकी शुद्धता, वचनकी शुद्धता, कायकी शुद्धता, आहारकी शुद्धता ऐसें नवधा भक्ति है, ऐसे दातारके गुण सहित पात्रकुं नवधा भक्तिकरि नित्य क्या-रि प्रकार दान देहै ताके तीसरा शिक्षाव्रत होय है. यह भी मुनिपणकी शिक्षाके अर्थ है जो देना सीखै तैसें आपकुं मुनिभये लेना होयगा ॥ ३६०—३६१ ॥

आगें आहार आदि दानका माहात्म्य कहै हैं,—

भोयणदाणेण सोक्खं ओसहदाणेण सत्थदाणं च ।

जीवाण अभयदाणं सुदुल्लहं सव्वदाणाणं ॥ ३६२ ॥

भाषार्थ—भोजन दानकरि सर्वकें सुख होय है । बहुरि औषध दानकरि सहित शास्त्रदान अर जीवनकूं अभय दान है सो सर्व दाननिमें दुर्लभ पाइए है उत्तम दान है । भावार्थ इहां अभयदानकूं सर्वतैं श्रेष्ठ कह्या है ॥ ३६२ ॥

आगें आहारदानकूं प्रधानकरि कहै हैं,—

भोयणदाणे दिण्णे तिण्णि वि दाणाणि होति दिण्णाणि
भुक्खतिसाएवाही दिणे दिणे होति देहीणं ॥ ३६३ ॥

भोयणबलेण साहू सत्थं सेवेदि रत्तिदिवहं पि ।

भोयणदाणे दिण्णे पाणा वि य रक्खिया होति ३६४

भाषार्थ—भोजन दान दीये संतैं तीनूं ही दान दीये होय हैं जातैं भूख तृषा नामका रोग प्राणीनिकें दिन दिन प्रति होय है । बहुरि भोजनके बलकरि सधु रात्रि दिन आस्त्रका अभ्यास करै है बहुरि भोजनके देने करि प्राण-भी रक्षा होय है । ऐसैं भोजनके दानकरि औषध शास्त्र अभयदान ए तीनूं ही दीये जानने । भावार्थ—भूख तृषा रोग मेटनेतैं तौ आहारदान ही औषधदान भया । आहारके बलतैं शास्त्राभ्यास सुखसं होनेतैं ज्ञानदान भी एही भया ।

आहार ही तैं प्राणोंकी रक्षा होय तातैं एही अभयदान भया
ऐसैं ही दानमें तीनू गर्भित भये ॥ ३६३-३६४ ॥

आगें दानका माहात्म्यहीकूं फेरि कहै हैं,—

इहपरलोयणिरीहो दाणं जो देदि परमभत्तीए ।

रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥ ३६५ ॥

उत्तमपत्ताविसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।

एयदिणे वि य दिण्णं इंदसुहं उत्तमं देदि ॥ ३६६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष (श्रावक) इसलोक परलोकके फलकी
वांछा रहित हूवा संता परम भक्तिकरि संघके निमित्त दान देहै
ता पुरुषने सकल संघकूं रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषै
स्याप्या । बहुरि उत्तम पात्रका विशेषके अर्थ उत्तम भक्ति-
करि उत्तम दान एक दिन भी दीया हूवा उत्तम इन्द्रपदका
सुखकूं देहै । भावार्थ—दानके दीये चतुर्विध संघकी थिरता
होय है सो दानके देनेवालेने मोक्षमार्ग ही चलाया कहिये ।
बहुरि उत्तम ही पात्र उत्तम ही दाताकी भक्ति अर उत्तम
ही दान सर्व ऐसी विधि मिलै ताका उत्तम ही फल होय
है । इन्द्रादिक पदवीका सुख मिलै है ॥ ३६५-३६६ ॥

आगें चौथा देशावकाशिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

पुठवपमाणकदाणं सठवदिसीणं पुणो वि संवरणं ।

इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥

वासादिकयपभाणं दिणे दिणे लोहकामसमणत्थं ।

सावज्जवज्जणट्ठं तस्स चउत्थं वयं होदि ॥ ३६८ ॥

भावार्थ—जो श्रावक पहलै सर्व दिशानिका परिमाण कीया था तिनिका फेरि संवरण करै, संकोचै, बहुरि तैसें ही पूर्वै इन्द्रियनिका विषयनिका परिमाण भोगोपभोग परिमाण कीया था तिनिकूं फेरि संकोचै । कैसें-सो कहै हैं ? वर्ष आदि तथा दिन दिन प्रति कालकी मर्यादा लीये करै । ताको प्रयोजन कहै हैं—अन्तरंग तौ लोभकषाय अर काम कहिये इच्छा ताके शमन कहिये घटावनेके अर्थ तथा बाह्य पाप हिंसादिकके वर्जनेके अर्थ करै, तिस श्रावककै चौथा देशावकाशिक नामा शिक्षाव्रत होय है । भावार्थ—पहले दिग्विरति व्रतमें मर्यादा करी थी सो तो नियमरूप थी । अब इहां तिसमें भी कालकी मर्यादा लीये घर हाट गांव आदि ताईकी गमनागमनकी मर्यादा करै तथा भोगोपभोग व्रतमें यमरूप इन्द्रियविषयनिकी मर्यादा करी थी तमें भी कालकी मर्यादा लीये नियम करै । इहां सत्तरा नियम कहे हैं तिनिकूं पालै । प्रतिदिन मर्यादा करबो करै, यामें लोभका तथा कृष्णा बांछाका संकोच होय है, बाह्य हिंसादि पापनिकी हाणि होय है । ऐसें ब्यारि शिक्षाव्रत कहे सो ए ब्यारों ही श्रावककूं अणुव्रतके यत्नतैं पालनेकी तथा महाव्रतके पालने की शिक्षारूप हैं ॥ ३६७—३६८ ॥

आगे अंतसल्लेखनाकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

वारसवएहिं जुत्तो जो संलेहण करेदि उवसंतो ।

सो सुरसोक्खं पाविय कमेण सोक्खं परं लहदि ३६९

भाषार्थ—जो श्रावक बारहव्रतनिकरि सहित हूवा अंत समय उपशम भावनिकरि युक्त होय सल्लेखना करै है सो स्वर्गके सुख पायकरि अनुक्रमतैं उत्कृष्ट सुख जो मोक्षका सुख सो पावै है । भावार्थ—सल्लेखना नाम कषायनिका अर कायके क्षीण करनेका है सो श्रावक बारह व्रत पालै, पीछे परणका समय जायौ तब पहली सावधान होय सर्व वस्तुसुं पमत्व छोडि कषायनिकूं क्षीणकरि उपशम भावरूप मंद कषायरूप होय रहै । अर कायकूं अनुक्रमतैं ऊणोदर नीरस आदि तपनिकरि क्षीण करै । पहले ऐसे कायकूं क्षीण करै तो शरीरमें मलके मूत्रके निमित्ततैं जो रोग होय हैं वे रोग न उपजै । अंतसमै असावधान न होय । ऐसैं सल्लेखना करे अंतसमय सावधान होय अपने स्वरूपमें तथा अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप चितवनमें लीन हूवा तथा व्रतरूप संवरूप परिणाम सहित हूवा संता पर्यायकूं छोडै तो स्वर्गके सुखनिकूं पावै । बहुरि तहां भी यह बख्शा रहै जो मनुष्य होय व्रत पालूं ऐसैं अनुक्रमतैं मोक्ष सुखकी प्राप्ति होय है ॥

एक्कं पि वयं विमलं साहिट्ठी जइ कुणेदि दिढचित्तो ।

तो विविहरिद्धिजुत्तं इदत्तं पावए णियमा ॥ ३७० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव दृढचित्त हूवा संता एक

भी व्रत अतीचाररहित निर्मल पालै तौ नानाप्रकारकी ऋ-
द्धिनिकरि दुक्त इन्द्रपणा नियमकरि पावै. भावार्थ—इहां एक
भी व्रत अतीचाररहित पालनेका फल इन्द्रपणा नियमकरि
कह्या. तहां ऐसा आशय सूचै है जो व्रतनिके पालनेके प-
रिणाम सर्वके समानजाति हैं. जहां एक व्रत दृढचित्तकरि
पालै तहां अन्य तिसके समान जातीय व्रत पालनेके अर्थ
अविनाभावीपणा है सो सर्व ही व्रत पाले कहे. बहुरि ऐसा
भी है जो एक आखड़ी त्यागकूं अन्तसमै दृढचित्तकरि प-
कडि ताविषै लीन परिणाम भये संतै पर्याय छूटै तौ तिस-
काल अन्य उपयोगके अभावतैं बड़ा धर्म्य ध्यान सहित पर-
गतिकूं गमन होय तब उच्चगति ही पावै. यह नियम है. ऐसा
आशयतैं एक व्रतका ऐसा माहात्म्य कह्या है. इहां ऐसा न
जानना जो एक व्रत तौ पालै अर अन्य पाप सेया करै ताका
भी ऊंचा फल होय. ऐसैं तौ चोरी छोटै पाप्मी सेयवो करै
हिसादिक करवो करै ताका भी उच्च फल होय सो ऐसा
नहीं है. ऐसैं दूजी व्रतपतिमाका निरूपण कीया. बारह भे-
दकी अपेक्षा यह तीसरा भेद भया ॥ ३७० ॥

आगें तीजी सायायिकप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—
जो कुण्ड काउसगंग वारसआवत्तसंजुदो धीरो ।
णमुणदुगं पि करंतो चदुप्पणामो पसण्णप्पा ३७१
चितंतो ससरूवं जिणारिबं अहव अक्खरं परमं ।

ज्झायदि कम्मविवायं तस्स वयं होदि सामइयं ३७२

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक बारह आवर्त सहित च्यारि प्रणामसहित दोय नमस्कार करता संता प्रसन्न है आत्मा जका, धीर दृढचित्त हूवा संता कायोत्सर्ग करै, तहां अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूपकूं ध्यावता चितवन करता संता रहै अथवा जिनबिबकूं चितवता रहै, अथवा परमेष्ठीके वाचक पंच नमोकारकूं चितवता रहै, अथवा कर्मके उदयके रसकी जातिका चितवन करता रहै ताकें सामायिक व्रत होय है। भावार्थ—सामायिक वर्णन तौ पूर्वे शिक्षाव्रतमें कीया था जो राग द्वेष तजि समभावकरि क्षेत्र काल आसन ध्यान मन वचन कायकी शुद्धताकरि कालकी मर्यादाकरि एकांत स्थानमें बैठै, सर्व सावद्ययोगका त्यागकरि धर्मध्यानरूप प्रवर्त्तै ऐसैं कहा था, इहां विशेष कहा जो कायसूं ममत्व छोडि कायोत्सर्ग करै तहां आदि अंतविषै दोय तौ नमस्कार करै अर च्यारि दिशाके सन्मुख होय च्यारि शिरोनति करै, बहुरि एक एक शिरोनतिके विषै मन वचन कायकी शुद्धताकी सूचना रूप तीन तीन आवर्त्त करै ते बारह आवर्त्त भये ऐसैं करि कायसूं ममत्व छोडि निज स्वरूपविषै लीन होय जिन प्रतिमासूं उपयोग लीन करै, तथा पंचपरमेष्ठीका वाचक अक्षरनिका ध्यान करै, तथा उपयोग कोई बाधाकी तरफ जाय तौ तहां कर्मके उदयकी जाति चितवै, यह साता वेदनीका फल है, यह असाताके उदयकी जाति है, यह अं-

तरायकी उदयकी जाति है. इत्थादि कर्मके उदयकूं चित्तबै यह विशेष कहा. बहुरि ऐसा भी विशेष जानना जो शि-
 साव्रतमें तौ मन वचनकायसंबंधी कोई अतीचार भी लागै
 तथा कालकी मर्यादा आदि क्रियामें हीनाधिक भी होय है
 बहुरि इहा प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है सो अतीचार रहित शुद्ध
 पलै है. उपसर्ग आदिके निमित्ततैं टलै नाहीं है ऐसा जा-
 नना. याके पांच अतीचार हैं. मन वचन कायका डुलावना
 अनादर करणा, भूलिजाणा ए अतीचार न लगावै. ऐसैं
 सामायिक प्रतिमा बारह भेदकी अपेक्षा चौथा भेद भया ।
 ॥ ३७१-३७२॥

आगे प्रोषधप्रतिमाका भेद कहैं हैं,—

सत्तमितेरसिदिवसे अवरह्ले जाइऊण जिणभवणे ।
 किरियाकम्मं काऊ उववासं चउविहं गहिय ३७३
 गिहवावारं चत्ता रत्तिं गमिऊण धम्मचिंताए ।
 पच्चूहे उट्टित्ता किरियाकम्मं च कादूण ॥ ३७४ ॥
 सत्थठभासेण पुणो दिवसं गमिऊण बंदणं किच्चा ।
 रत्तिं णेदूण तहा पच्चूहे बंदणं किच्चा ॥ ३७५ ॥
 पुज्जणविहिं च किच्चा पत्तं गहिऊण णवरि तिविहं पि
 भुंजाविऊण पत्तं भुंजंतो पोसहो होदि ॥ ३७६ ॥

भाषार्थ—सातैं तेरसिके दिन दोय पहर पीछैं जिन चै-

त्यालय जाय अपराहूको सामायिक आदि क्रिया कर्मकरि
 च्यारि प्रकार आहारका त्यागकरि उपवास ग्रहण करै. गृ-
 हका समस्त व्योपारकूं छोडिकरि धर्म ध्यानकरि तेरसि
 सातैकी राति गमावै. प्रभात उठिकरि सामायिक क्रिया कर्म
 करै. आठै चौदसिका दिन शास्त्राभ्यास धर्म ध्यानकरि ग-
 माय अपराहूका सामायिक क्रिया कर्म करि राति तैसैं ही
 धर्मध्यान करि गमाय नवमी पूर्णमासीकै प्रभात सामायिक
 बन्दनाइरि जिनेश्वरका पूजन विधानकरि तीन प्रकारके पा-
 त्रकौं पडगाहि बहुरि तिस पात्रकौं भोजन कराय आप भो-
 जन करै ताकै प्रौषध होय है. भावार्थ—पहलै शिक्षाव्रतमें प्रौ-
 षधकी विधि कही भी, सो भी इहां जाननी. गृहव्यापार भोग
 उपभोगकी सामग्री समस्तका त्यागकरि एकांतमें जाय बैठै
 अर सोलह पहर धर्मध्यानमें गमावणी. इहां विशेष इतना जो
 तहां सोलह पहरका कालका नियम नाहीं कहा या अर अ-
 तीचार भी लागै. अर इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है यामें सो-
 लह पहरका उपवास नियमकरि अतीचार रहित करै है. अर
 याके अतीचार पांच हैं. जो बस्तु जिस काल राखी होय ति-
 सका उठावना मेलना तथा सोवने बैठनेका संधारा करना
 सो बिना देख्या जाण्या, बिना यतनतैं करै सो तीन अ-
 तीचार तौ ए. अर उपवासकेविषै अनादर करै, प्रीति नाहीं
 करै अर क्रिया कर्ममें भूलि जाय ए पांच अतीचार लगावै
 नाहीं ॥ ३७३-३७६ ॥

आगे प्रोषधका माहात्म्य कहै हैं,—

एकं पि गिरारंभं उववासं जो करेदि उवसंतो ।

बहुविहसंचियकम्मं सो णाणी खवदि लीलाए ३७७

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी आरम्भका त्यागकरि उपशम भाव मंदकषाय रूप हुआ संता एक भी उपवास करै है सो बहुत भवमें संचित कीये बांधे जे कर्म, तिनिकों लीलायात्रमें क्षय करै है. भावार्थ—कषायविषय आहारका त्यागकरि इसलोक परलोकके भोगकी आशा छोड़ि एक भी उपवास करै सो बहुत कर्मकी निर्जरा करै है तौ जो प्रोषधप्रतिमा अंगीकारकरि पक्षमें दोय उपवास करै ताका कहा कहणा ? स्वर्गसुख भोगि मोक्षकूं पावै है ॥ ३७७ ॥

आगे आरम्भ आदिका त्यागविना उपवास करै ताकै कर्मनिर्जरा नहीं हो है ऐसैं कहै हैं,—

उववासं कुठवंतो आरंभं जो करेदि मोहादो ।

सो गियदेहं सोसदि ण झाडए कम्मलेसं पि ३७८

भाषार्थ—जो उपवास करता संता गृहकार्यके मोहतैं गृहका आरम्भ करै है सो अपनी देहकू सोखै है कर्म निर्जरा का तौ लेशयात्र भी ताकै नहीं होय है. भावार्थ—जो विषय कषाय छोड़यां विना केवल आहारमात्र ही छोड़ै है. गृहकार्य समस्त करै है, सो पुरुष देहहीकूं केवल सोखै है ताकै कर्मनिर्जरा लेस मात्र भी नहीं हो है ॥ ३७८ ॥

आमें सचित्तत्यागप्रतिमाकों कहै हैं,—

सचित्तं पत्तफलं छल्लीमूलं च किसलयं बीजं ।

जो णय भक्खदि णाणी सचित्तविरओ हवे सो वि ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक पत्र फल त्वक छालि मूल कूपल बीज ए सचित्त नाहीं भक्षणा करै. सो सचित्तविरती श्रावक कहिये. भाषार्थ—जीवरहित रहित होय ताकों सचित्त कहिये है. सो पत्र फल छालि मूल बीज कूपल इत्यादि इरित वनस्पति सचित्तकूं न खाय सो सचित्तविरत प्रतिमाका धारक श्रावक होय है * । ॥ ३७९॥

जो ण य भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जदं दाउं
मुत्तस्स भोजिदस्सहि णत्थि विसेसो तदो को वि ॥

भाषार्थ—बहुरि जो वस्तु आप न भखै ताकूं अन्यकूं देना योग्य नाहीं है जातैं खानेवाले अर खुवावनेवालेमें किछू विशेष नाहीं है कृतका अर करितका फल समान है तातैं जो वस्तु आप न खाय सो अन्यकूं भी न खुवाइये तब सचित्त त्याग व्रत पवै ॥ ३८० ॥

* सुषकं पक्कं तत्तं अंवल्ललवणेहिं मिस्सिगं दयं ।

जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भाणयं ॥ १ ॥

भाषार्थ—सूखा हुवा, पकाया हुवा, खटाई अर लवणसे, मिला हुवा तथा जो यंत्रसे छिन्नभिन्न किया हुवा अर्थात् शोषाहुवा हो एवा सय हरितकाय प्रासुक कहिये जीवरहित अचित्त होता है ।

जो वज्जेदि सच्चित्तं दुज्जय जीहा वि णिज्जिया तेण ।
दयभावो होदि किओ जिणवयणं पालियं तेण ३८१

अर्थ—जो श्रावक सचित्तका त्याग करै है तिसने जिहा इन्द्रियका जीतना कठिन सो भी जीती, बहुरि दयाभाव प्रगट किया, बहुरि जिनेश्वर देवके वचन पाले. भावार्थ—सचित्तका त्यागमें बडे गुण हैं. जिहा इन्द्रियका जीतना होय हैं. प्राणीनिकी दया पलै है. बहुरि भगवानके वचन पलै है., जातैं हरित कायादिक सचित्तमें भगवानने जीव कहे हैं सो आह्वा पालन भया. याका अतीचार जो सचित्तैं मिली वस्तु तथा सचित्तैं बंध संबंधरूप इत्यादिक हैं ते अतीचार लगावै नाहीं तब शुद्ध त्याग होय. तब प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होय है. भोगोपभोग व्रतमें तथा देशावकाशिक व्रतमें भी सचित्तका त्याग कइया है परन्तु निरतीचार नियमरूप नाहीं इहां नियमरूप निरतीचार त्याग होय है. ऐसैं सचित्त त्याग पंचमी प्रतिमा अर बारहमेदनिमें छट्ठा भेद वर्णन किया ३८१

आगें रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी ।
ण य भुंजावट्ठ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो ।

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक रात्रिविषे च्यारि प्रकार अशन पान खाद्य स्वाद आहारकूं नाहीं भोगवै है, नाहीं खाय है, बहुरि परकूं नाहीं भोजन करावै है सो आ-

बक रात्रि भोजनका त्यागी होय है. भावार्थ—रात्रि भोजन-
का तो मांसके दोषकी अपेक्षा तथा रात्रिविषै बहुत आरंभतैं
त्रस घातकी अपेक्षा पहली दूजी प्रतिमामें ही त्याग कराये
हैं परंतु यहां कृतकारित अनुमोदना अर मन वचन कायके कोई
दोष लागै तातैं शुद्धत्याग नाहीं. इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञाविषै
शुद्ध त्याग होय है तातैं प्रतिमा कही है ॥ ३८२ ॥

जो णिसिभुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं
संवच्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए ॥ ३८३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष रात्रि भोजनको छोड़ै है सो वरस दिनमें
छह महीनाका उपवास करै है. बहुरि रात्रि भोजनके त्या-
गतैं भोजन संबंधी आरंभ भी त्यागै है. बहुरि व्यापार आ-
दिका भी आरंभ छोड़ै है सो महान दया पालै है. भावार्थ—
जो रात्रि भोजन त्यागै सो वरसदिनमें छह महीनाका उप-
वास करै है. बहुरि अन्य आरंभका भी रात्रिमें त्याग करै
है बहुरि अन्य ग्रंथनिमें इस प्रतिमाविषै दिनमें स्त्री सेवनका
भी मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग कहा है.
ऐसैं रात्रिशुक्तत्यागप्रतिमाका निरूपण किया. यह प्रतिमा
छठी बारह भेदनिमें सातवां भेद भया ॥ ३८३ ॥

आगें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण करै है, —

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी ।
अण वाया कायेण य बंभबई सो हवे सादिओ ३८४

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक सर्व ही चारि प्रकारकी स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यचणी चित्रामकी इत्यादि स्त्रीका अभिलाष मन वचनकायकरि न करै सो ब्रह्मचर्य व्रतका धारक हो है। कैसा है ? दयाका पालनहारा है। भावार्थ—सर्व स्त्रीका मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि सर्वथा त्याग करै सो ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ॥ ३८४ ॥

आगे आरंभविरति प्रतिमाकों कहै हैं,—

जो आरंभं ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णो हिंसासंतट्ठमणो चत्तारंभो हवे सो हि ॥ ३८५ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक गृहकार्यसंबंधी कछू भी आरंभ न करै अन्य पास करावै नहीं, बहुरि करै ताकों भला जायै नहीं सो निश्चयतैं आरंभका त्यागी होय है। कैसा है ? हिंसातैं भयभीत है मन जाका। भावार्थ—गृहकार्यका आरंभका मन वचनकाय कृत कारित अनुमोदनाकरि त्याग करै सो आरंभ त्याग प्रतिमाधारक श्रावक होय है। यह प्रतिमा आठपी है बारह भेदनिमें नवमा भेद है ॥ ३८५ ॥

आगे परिग्रहत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं—

जो परिवज्जइ गंथं अब्भंतर बाहिरं च साणंदो ।
पावं ति मण्णमाणो णिग्गंथो सो हवे णाणी ३८६

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि श्रावक अभ्यंतरका अर बाह्यका यह जो दो प्रकारका परिग्रह है सो पापका कारण

रूप है ऐसैं मानता संता आनन्द सहित छोडै है सो परिग्रहका त्यागी श्रावक होय है. भावार्थ—अभ्यंतरका ग्रंथमें मिथ्यात्व अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण कषाय तौ पहिले छुटि गये हैं. बहुरि प्रत्याख्यानावरण अर तिसहीके लार लागे हास्यादिक अर वेद तिनिकों घशवै है. बहुरि बाह्यके धनधान्य आदि सर्वका त्याग करै है. बहुरि परिग्रहके त्यागतैं बडा आनन्द मानै है. जातैं तिनिके सांचा वैराग्य हो है तिनिके परिग्रह पापरूप अर बड़ी आपदा दीखै है. तातैं त्याग करतैं बडा सुख मानै है ॥ ३८६ ॥

बाहिरगंधविहीणा दलिदमणुआ सहावदो होंति ।

अभ्यंतरगंधं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥ ३८७ ॥

भावार्थ—बाह्य परिग्रहकरि रहित तौ दरिद्री मनुष्य स्वभावहीतैं होय है. याके त्यागमें अचिरज नाहीं. बहुरि अभ्यंतर परिग्रहकू कोई भी छोडनेकूं समर्थ न होय है. भावार्थ, जो अभ्यंतर परिग्रहकूं छोडै है ताकी बडाई है, अभ्यंतरका परिग्रह सामान्यपणै ममत्व परिणाम है सो याकों छोडै सो परिग्रहका त्यागी कहिये. ऐसैं परिग्रहत्याग प्रतिमाका स्वरूप कहा. प्रतिमा नवमी है बारह भेदनिमें दशमा भेद है ॥

आगे अनुमोदनविरति प्रतिमाकों कहै हैं,—

जो अणुमणणं ण कुणदि गिहत्यकज्जेसु पावमूलेसु ।

भवियव्वं भावंतो अणुमणाविरओ हवे सो दु ॥ ३८८ ॥

भाषार्थ—जो श्रावक पापके मूल जे गृहस्थके कार्य नि-
निविषै अनुमोदना न करै. कैसा हूवा संता जो भवितव्य है
सो होय है ऐसैं भावना करता संता सो अनुमोदनविरति
प्रतिमाधारी श्रावक है. भावार्थ—गृहस्थके कार्यके आ-
हारके निमित्त आरम्भादिककी भी अनुमोदना न करै. उ-
दासीन हूवा घरमें भी बैठै. बाह्य चैत्यालय मठ मंडपमें भी
बैठै. भोजनको घरका तथा अन्य श्रावक बुलावै ताकै भोजन
करि आवै. ऐसा भी न कहै जो हमारे ताई फलाणी वस्तु
तयार कीज्यो. जो कुछ गृहस्थ जिमावै सोही जीमि आवै सो
दसमी प्रतिमाका धारी श्रावक होय है ॥ ३८८ ॥

जो पुण चिंतदि कज्जं सुहासुहं रायदोससंजुत्तो ।

उवओगेण विहीणं स कुणदि पावं विणा कज्जं ३८९

भाषार्थ—जो विना प्रयोजन रागद्वेषकरि संयुक्त हूवा
सन्ता शुभ तथा अशुभ कार्यको चिंतवन करै है, सो पुरुष
विना कार्य पाप उपजावै है. भावार्थ—आप तौ त्यागी भया
फेरि विना प्रयोजन गृहस्थके शुभकार्य पुत्रजन्मप्राप्ति विवा-
हादिक अर अशुभकार्य काहूको पीडा देना मारना बांधना
इत्यादि शुभाशुभ कार्यनिकों चिंतवन करै रागद्वेष परिणाम
करे तौ निरर्थक पाप उपजावै ताकै दसमी प्रतिमा कैसैं होय ?
तीसूं ऐसी बुद्धि रहै जो जैसी तरह भवितव्य है तैसैं होयगा
जैसैं आहार मिलणा है तैसैं मिलि रहैगा. ऐसैं परिणाम रहै
अनुमतित्याग पलै है. ऐसैं बारह भेदमें ग्यारहवां भेद कहा।

आगे उद्दिष्टविरतिप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—
जो णव कोडिविसुद्धं भिक्षायरणेण भुंजदे भोज्जं ।
जायणरहियं जोगं उद्दिट्ठाहारविरओ सो ३९०

भावार्थ—जो श्रावक भोज्य जो आहार ताकूं नवकोटि
विशुद्ध कहिये मनवचनकाय कृतकारितअनुपोदनाका आ-
कूं दोष लागै नाहीं, ऐसा भिक्षाचरण करिले, तहां भी
याचना रहित ले. मांगिकरि न ले, सो भी योग्य ले, सचि-
त्तादिक अयोग्य होय सो न ले, सो उद्दिष्ट आहारका त्यागी
है. भावार्थ—घर छोडि मठ मंदपमें रहै, भिक्षाकरि आहार ले
जो याके निमित्त कोई आहार करै तो, तिस आहारकूं न
ले, बहुरि मांगिकरि न ले, बहुरि अयोग्य मांसादिक तथा
सचित्त आहार न ले, ऐसा उद्दिष्टविरत श्रावक है ॥३९०॥

आगे अंतसमयविषै श्रावक आराधना करै ऐसैं कहै हैं,—
जो सावयवयसुद्धो अंते आराहणं परं कुणदि ।
सो अच्चुदम्मि सग्गे इंदो सुरसेविओ होदि ३९१

भावार्थ—जो श्रावक व्रतकरि शुद्ध पुरुष है अर अंत
समय उत्कृष्ट आराधना दर्शनज्ञानचारित्रतपकं आराधै है सो
अच्युत स्वर्गविषै देवनिकरि सेवनीक इन्द्र होय है.
भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक ग्यारह प्रतिमाका निरतिचार
शुद्ध व्रत पालै है, बहुरि अंतसमय मरणकालविषै दर्शन
ज्ञान चरित्र तप आराधनाकूं आराधै है, सो अच्युत स्वर्ग-

विषै इन्द्र होय है. यह उत्कृष्ट श्रावकके व्रतका उत्कृष्ट फल है. ऐसैं ग्यारमी प्रतिमाका स्वरूप कहा, अन्य ग्रंथनिमें याके दोय भेद कहे हैं; पहला भेदवाला तौ एक वस्त्र राखै, केसनिकों कतरणी तथा पाछ्यासूं सौराधै प्रतिलेखण हस्तादिकसूं करै, भोजन बैठा करै अपने हाथसूंभी करै, अर पात्रमें भी करै. बहुरि दूसरा केसनिका लौंच करै. प्रतिलेखण पीछेंसूं करै. अपने हाथहीमें भोजन करै, कोपीन धारै, इत्यादि याकी विधि अन्य ग्रन्थनिमें जाननी । ऐसैं प्रतिमा तौ ग्यारमी भई अर बारह भेद कहे थे, तिनिमें यह बारमां भेद श्रावकका भया । अब इहां संस्कृतटीकाकार अन्य ग्रंथनिके अनुसार किछू कथन श्रावकका लिख्या है, सो भी संक्षेपतैं लिखिये है. तहां छठी प्रतिमातई तौ जघन्य श्रावक कहा है. अर सातमी आठमी नवमी प्रतिमाका धारक मध्यम श्रावक कह्या है । अर दसमी ग्यारमी प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक कह्या है । बहुरि कह्या है जो समितिसहित प्रवचैं तौ अशुव्रत सफल है. अर समितिरहित प्रवचैं तौ व्रत पालता भी अव्रती है. बहुरि कह्या है जो गृहस्थके असि मसि कृषि वाणिज्यके आरंभमें त्रस थावरकी हिंसा होय है, सो त्रसहिंसाका त्याग याकै कैसैं बयौ है. सो याका समाधानके अर्थ कहै हैं-जो पक्ष, चर्या, साधकता, तीन प्रवृत्ति श्रावककी कही हैं. तहां पक्षका धारक तौ पाक्षिक श्रावक कहिये और चर्याका धारक नैष्ठिक श्रावक कहिये अर साधक-

ताका धारक साधक श्रावक कहिये. तहां पक्ष तौ ऐसा जो मार्गमें ब्रसहिंसाका त्यागी श्रावक कहचा है. सो मैं ब्रस-जीवकूं मेरे प्रयोजनके अर्थ तथा परके प्रयोजनके अर्थ मारूं नाहीं. धर्मके अर्थ तथा देवताके अर्थ तथा मन्त्रसाधनके अर्थ तथा औषधके अर्थ तथा आहारके अर्थ तथा अन्य भोगके अर्थ मारूं नाहीं ऐसा पक्ष जाकै होय सो पाक्षिक है. सो याके असि मसि कृषि वाणिज्य आदि कार्यनिमें हिंसा होय है तौऊ मारनेका अभिमत नाहीं है. कार्यका अभिप्राय है तहां घात होय है ताकी अपनी निंदा करै है. ऐसैं ब्रस हिंसा न करनेकी पक्षमात्रतैं पाक्षिक कहिये है. यह अपत्याख्यानावरण कषायके मंद उदयके परिणाम हैं तातैं अव्रती ही है । व्रत पालनेकी इच्छा है परन्तु निरतिचार व्रत पलै नाहीं तातैं पाक्षिक ही कहचा है. बहुरि नैष्ठिक होय है तब अनु-क्रमतैं प्रतिमाकी प्रतिज्ञा पलै है. याकै अपत्याख्यानावरण कषायका अभाव भया तातैं पांचवां गुणस्थानकी प्रतिज्ञा निरतिचार पलै. तहां प्रत्याख्यानवरण कषायके तीव्र मंद भेदनितैं ग्यारह प्रतिमाके भेद हैं. ज्यों ज्यों कषाय मंद होती जाय त्यों त्यों आगिली प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होती जाय. तहां ऐसैं कहचा है जो घरका स्वामिपना छोड़ि गृहकार्य तौ पुत्रादिककूं सौंपै अर आप यथाकषाय प्रतिमाकी प्रतिज्ञा अंगीकार करता जाय, जेतैं सकल संयम न ग्रहै तेतैं ग्या-रही प्रतिमाताई नैष्ठिक श्रावक कहावै. बहुरि जब मरण

काल आया जाँँ तब आराधनासहित होय एकाग्रचित्तकरि परमेष्ठीका ध्यानमें तिष्ठै समाधिकरि प्राण छोडै, सो साधक कह्यै, ऐसा व्याख्यान है. बहुरि कह्यो है जो गृहस्थ द्रव्यका उपार्जन करै ताके छह भाग करै. तामें एक भाग तो धर्मके अर्थ दे. एक भाग कुटुंबके पोषणमें दे. एक भाग अपने भोगके अर्थ खरचै, एक अपने स्वजन समूह अर्थ व्योहारमें खरचै, बाकी दोय भाग रहैं ते अमानत भंडार राखै वह द्रव्य बड़ा पूजन अथवा प्रभावना तथा काल दुकालमें अर्थ आवै. ऐसैं कीये गृहस्थके आकुलता न उपजै है. धर्म सधै है. इहां कथन संस्कृतटीकाकारने बहुत कीया है. तथा पहले गाथाके कथनमें अन्य ग्रन्थनिका कथन सधै है कथन बहुत कीया है सो संस्कृत टीकातैं जानना. इहां तो गाथा-हीका अर्थ संक्षेपकरि लिख्यो है. विशेष जाननेकी इच्छा होय सो रयणसार, वसुनंदिकृतश्रावकाचार, रत्नकरणदश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमितगतिश्रावकाचार, प्राकृतदोहाबंध श्रावकाचार, इत्यादि ग्रन्थनितैं जान्, इहां संक्षेप कथन है, ऐसैं बारहभेदरूप श्रावकधर्मका कथन कीया ३९१

आगे मुनिधर्मका व्याख्यान करै हैं,—

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहिं परिणदो णिच्चं ।

सव्वत्थ वि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ३९२

भाषार्थ—जे पुरुष रत्नत्रय कहिये निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकरि युक्त होय, बहुरि क्षमादिभाव क-

कहिये उत्तम क्षमाकों आदि देकर दश प्रकारका धर्म तिसकरि
नित्य कहिये निरन्तर परिणाम सहित होय, बहुरि मध्यस्थ
कहिये सुखदुःख तृण कंचन लाभ अलाभ शत्रु मित्र निन्दाप्र-
शंसा जीवन मरण आदिविषै समभावरूप वर्तै, रागद्वेषकरि
रहित होय, सो साधु कहिये. तिसहीकों धर्म कहिये, जातैं
जामें धर्म है, सो ही धर्मकी मूर्ति है, सो ही धर्म है । भा-
वार्थ—इहां रत्नत्रयकरि सहित कहनेमें चारित्र तेरहप्रकार है
सो मुनिका धर्म महाव्रत आदि है सो वर्णन किया चाहिये.
सो यहां दश प्रकार धर्मका विशेष वर्णन है तामें महाव्रत
आदिका भी वर्णन गर्भित है सो जानना ॥ ३९२ ॥

अब दशप्रकार धर्मका वर्णन करै हैं,—

सो चिय दहप्पयारो खमादि भावेहिं सुखसारैहिं ।
ते पुण भणिज्जमाणा मुणियव्वा परमभत्तीए ३९३

भावार्थ—सो मुनिधर्म क्षमादि भावनकरि दश प्रकार है
कैसा है सौख्यसार कहिये सुख यातैं होय है. अथवा सुख
याविषै है अथवा सुखकरि सार है ऐसा है. बहुरि ते दश-
प्रकार आगे कथा हुवा धर्म भक्तिकरि, उत्तम धर्पानुरागकरि
जानने योग्य है. भावार्थ—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य,
शौच, संयम, तपः, त्याग, आर्किचन्य, ब्रह्मचर्य ऐसैं दश
प्रकार मुनिधर्म है सो याका न्यारा न्यारा व्याख्यान आगे
करै हैं सो जानना ॥ ३९३ ॥

अब पहिले ही उच्चपक्षमाधर्मकूं कहै हैं,—

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि ।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खिमा णिम्मला होदि ३९४

भाषार्थ—जो मुनि देव मनुष्य तिर्यच आदिकरि रौद्र भयानक घोर उपसर्ग करतैं सतैं भी क्रोधकरि तप्तायमान न होय तिस मुनिके निर्मल क्षमा होय है. भावार्थ—जैस श्रीदत्त मुनि व्यंतरदेवकृत उपसर्गकूं जीति केवलज्ञान उपजाय मोक्ष गये, तथा चिलातीपुत्र मुनि व्यंतरकृत उपसर्गकूं जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा स्वामिकार्तिकेयमुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया. तथा गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणकृत उपसर्ग जीति मोक्ष गये. तथा श्रीधन्य मुनि चक्रराजकृत उपसर्गकों जीति केवल उपजाय मोक्ष गये, तथा पांचसै मुनि दंडक राजाकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई, तथा राजकुमारमुनि पांशुलश्रेष्ठकृत उपसर्ग जीति सिद्धि पाई. तथा चाणिक्य आदि पांचसै मुनि मन्त्रीकृत उपसर्गकों जीति मोक्ष गये, तथा सुकुमाल मुनि स्यालनीकृत उपसर्ग सहकरि देव भये, तथा श्रेष्ठीके वाईस पुत्र नदीके प्रवाहविषै पद्मासन शुभ ध्यानकरि मरणकरि देव भये, तथा सुकोशल मुनि व्याघ्रीकृत उपसर्ग जीति सर्वार्थसिद्धि गये, तथा श्रीपण्डिकमुनि जलका उपसर्ग सहकरि मुक्ति गये. ऐसैं देव मनुष्य पशु अचेतन कृत उपसर्ग सहे, तहां क्रोध न कीया तिनिकै उत्तपक्षमा भई. तैसैं उपसर्ग करनेवालेतैं क्रोध न उपजै, तब उ-

क्षमा होय है. तहां क्रोधका निमित्त आवै तौ तहां ऐसा चितवन करै जो कोई मेरे दोष कहै ते मोविषै विद्यमान हैं तौ यह कहा मिथ्या कहै है ? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि मोविषै दोष नाहीं है तो यह विना जायया कहै है तहां अज्ञानपरि कहा कोप ? ऐसैं विचारि क्षमा करणी. बहुरि अज्ञानीका बालस्वभाव चितना, जो बालक तो प्रत्यक्ष भी कहै यह तो परोक्ष कहै है, यह ही भला है. बहुरि जो प्रत्यक्ष भी कुवचन कहै तो यह विचारना, जो बालक तौ ताडन भी करै यह तौ कुवचन ही कहै है, ताडै नाहीं है, यह ही भला है. बहुरि जो ताडन करै तौ यह विचारना जो बालक अज्ञानी तो प्राणघात भी करै, यह ताडै ही है प्राणघात तो न किया यह ही भला है. बहुरि प्राणघात करै तौ यह विचारना, जो अज्ञानी तौ धर्मका भी विध्वंस करै यह प्राणघात करै है, धर्मका विध्वंस तौ नाहीं करै है. बहुरि विचारै जो में पापकर्म पूर्वे उपजाये थे, ताका यह दुर्वचनादिक उपसर्ग फल है, मेरा ही अपराध है पर तौ निमित्त मात्र है. इत्यादि चितवनेतैं उपसर्ग आदिकके निमित्तैं क्रोध नाहीं उपजै तब उत्तमक्षमाधर्म होय है ॥ ३९४ ॥

आगें उत्तम मार्दव धर्मकों कहै हैं,—

उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि ।

अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स ॥ ३९५ ॥

भाषार्थ—जो मुनि उत्तम ज्ञानकरि तौ प्रधान होय, बहुरि

उत्तम तपश्चरण करणोका जाका स्वभाव होय. तौऊ जो अपने आत्माको मदरहित करै अनादररूप करै तिस मुनिके मार्दव नामा धर्मरत्न होय है. भावार्थ—सकल शास्त्रका जाननहारा पंडित होय तौऊ ज्ञानमद न करे. यह विचारै जो मौन बड़े अवधि मनःपर्यय ज्ञानी हैं. केवलज्ञानी सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं. मै कहा हों अलग हों. बहुरि उत्तम तप करै तौऊ ताका मद न करै. आप सब जाति कुल बल विद्या ऐश्वर्य तप रूप आदिकरि सर्वतैं बड़े हैं तौऊ परकृत अपमानकों भी सहै हैं. तहां गर्वकरि कषाय न उपजावै तहां उत्तममार्दवधर्म होय है ॥ ३९५ ॥

आगे उत्तम आर्जवधर्मकों कहै हैं—

जो चितेइ ण वंके कुणदि ण वंके ण जंपए वंके ।

ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स ३९६

भावार्थ—जो मुनि मनविषै वक्रता न चितवै, बहुरि कायकरि वक्रता न करै. बहुरि वचनकरि वक्रता न बोलै, बहुरि अपने दोषनिकों गोपै नाहीं, छिपावै नाहीं, तिस मुनिके आर्जव धर्म उत्तम होय है. भावार्थ—मनवचनकायविषै सरलता होय जो मनमें विचारै सो ही वचनकरि कहै, सो ही कायकरि करै, परकों झुलावा देने ठिगने निमित्त विचारना तो और कहना और, करना और तहां माया कषाय प्रबल होय है. सो ऐसै न करै. निष्कपट होय प्रवर्त्तै. बहुरि अपना दोष

छिपावै नाहीं. जैसा होय तैसा बालककी ज्यों गुरुनिपासि
कहै तहां उत्तम आर्जवधर्म होय है।

आगे उत्तम शौचधर्मकों कहैं हैं,—

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्ललोहमलपुंजं ।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सुचित्तं हवे विमलं ३९७

भाषार्थ—जो मुनि समभाव कहिये रागद्वेषरहित परि-
णाम अर संतोष कहिये संतुष्ट भाव सो ही भया जल, ता-
करि तृष्णा अर लोभ सो ही भया मलका समूह ताकों
धोवै. बहुरि भोजनकी गृद्धि कहिये अति चाह ताकरि रहित
होय तिस मुनिका चित्त निर्मल होय है. ताकैं उत्तम शौच
धर्म होय है. भावार्थ—समभाव तौ तृण कंचनकों समान जा-
नना, अर संतोष संतुष्टपना, तृप्तिभाव अपने स्वरूप ही विषै
सुख मानना, ऐसैं भावरूप जळकरि, तृष्णा तौ आगामी
मिलनेकी चाह अर लोभ पाये द्रव्यादिकविषै अति लिप्त-
पणा, ताके त्यागविषै अति खेद करना सो ही भया मल
ताके धोवनेतैं मन पवित्र होय है बहुरि मुनिके अन्य त्याग
तौ होय ही है. अर आहारका ग्रहण है ताविषै भी तीव्र चाह
नाहीं राखै, लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समबुद्धि रहै, तब
उत्तम शौचधर्म होय है. बहुरि लोभकी चारि प्रकार प्रवृत्ति
है—जीवितका लोभ, आरोग्य रहनेका लोभ, इन्द्रिय बनी
रहनेका लोभ, उपयोगका लोभ । तहां अपना अर अपने

संबंधी स्वजन मित्र आदिके दोऊंके चाहै तब आठ भेदरूप प्रवृत्ति है सो जहां सर्वहीका लोभ नहीं होय तहां शौचधर्म है ॥

आगै उत्तम सत्यधर्मकूं कहै हैं—

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि ।

व्यवहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ३९८

भाषार्थ—जो मुनि जिनसूत्रहीके वचनकूं कहै, बहुरि तिनिमें जो आचार आदि कछा है ताकूं पालनेकूं असमर्थ होय तौऊ अन्य प्रकार न कहै. बहुरि व्यवहार करि भी अस्वीक कहिये असत्य न कहै सो मुनि सत्यवादी है. ताकै उत्तम सत्य धर्म होय है. भावार्थ—जो जिनसिद्धान्तमें आचार आदिका जैसा स्वरूप कछा होय तैसा ही कहै. ऐसा नहीं जो आपसुं न पालया जाय तब अन्यप्रकार कहै यथावत् न कहै. अपना अपमान होय तातैं जैसैं तैसैं कहै अरु व्यवहार जो भोजन आदिका व्यापार तथा पूजा प्रभावना आदिका व्योहार तिसविषै भी जिनसूत्रके अनुसार वचन कहै अपनी इच्छातैं जैसैं तैसैं न कहै. बहुरि इहां दश प्रकार सत्यका वर्णन है. नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संहतिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य, समयसत्य. सो मुनिनिका मुनिनितैं तथा श्रावकनितैं वचनालापका व्यवहार है. तहां बहुत भी वचनालाप होय तब सूत्रसिद्धांत अनुसार इस दशप्रकारका सत्यरूप वचनकी भी प्रवृत्ति होय है । तहां अर्थ गुण विना भी वक्ता

की इच्छातैं काहू वस्तुका नाम संज्ञा करै सो तौ नाम सत्य है १। बहुरि रूपमात्रकरि कहिये जैसे चित्राममें काहूका रूप लिखि कहै कि यह सुपेद वर्ण फलाणा पुरुष है सो रूप-सत्य है २. बहुरि किसी प्रयोजनके अर्थ काहूकी मूर्ति स्थापि कहै सो स्थापना सत्य है ३. बहुरि काहू प्रतीतिके अर्थ आश्रयकरि कहिये सो प्रतीति सत्य है. जैसे ताल ऐसा परिमाण विशेष है ताके आश्रय कहै यह पुरुषताल है अथवा लंबा कहै तौ छोटेकूं प्रतीत्यकरि कहै, ४. बहुरि लोक व्यवहारके आश्रयकरि कहै सो संवृतिसत्य है. जैसे कमल के उपजनेकूं अनेक कारण हैं तौज पंकविषे भया तातैं पंकज कहिये ५. बहुरि वस्तुनिकूं अनुक्रमतैं स्थापनेका वचन कहै सो संयोजना सत्य है, जैसे दशलक्षणाका मंडल पाड़े तामें अनुक्रमतैं चूर्णके कोठे करै अर कहै कि यह उत्तम क्षमाका है, इत्यादि जोडरूप नाम कहै. अथवा दूसरा उदाहरण जैसे जोंहरी मोतीनिकी लडी करै तिनमें मोतिनकी संज्ञा थापि लीनी है सो जहां जो चाहिये तिसही अनुक्रमतैं मोती गोवै ६. बहुरि जिस देशमें जैसी भाषा होय सो कहना सो जनपदसत्य है ७. बहुरि ग्राम नगर आदिका उपदेशक वचन सो देशसत्य है जैसे बाडि चौगिरद होय ताकूं ग्राम कहिये ८. बहुरि छद्मस्थके ज्ञान अगोचर अर संयमादिक पालनेके अर्थ जो वचन सो भावसत्य है. जैसे काहू वस्तुमें छद्मस्थके ज्ञानके अगोचर जीव होय तौज अपनी दृष्टिमें

जीव न देखि आगम अनुसार कहै कि यह प्रासुक है १. ब-
हुरि जो आगमगोचर वस्तु है तिनिकूं आगमके वचनानुसार
कहना सो समयसत्य है जैसें पत्य सागर इत्यादिक कहना
१०. बहुरि दशप्रकार सत्यका कथन गोमटमारमें है तहां
सात नाम तौ येही हैं अर तीनके नाम इहां तौ देश, संयो-
जना, समय हैं अर तहां, संभावना, व्यवहार, उपपा ए हैं.
बहुरि उदाहरण अन्य प्रकार हैं सो विवक्षाका भेद जानना.
विरोध नाहीं. ऐसें सत्यकी प्रवृत्ति होय है सो जिनसूत्रानु-
सार वचन प्रवृत्ति करै ताकै सत्यधर्म होय है ॥ ३९८ ॥

आगे उत्तम संयमधर्मकूं कहै हैं,—

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकम्मेसु ।
तण्छेदं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स ३९९

भाषार्थ—जो मुनि गमन आगमन आदि सर्व कार्यनि
विषै तृणका छेदमात्र भी नाहीं चाहै न करै. कैसा है
मुनि ? जीवनकी रक्षाविषै तत्पर है ऐसे मुनिकै संयमभव
होय हैं. भावार्थ—संयम दोय प्रकार कहा है इन्द्रिय मनका
वश करणा अर छह कायके जीवनकी रक्षा करनी. सो
इहां मुनिके आहार विहार करनेविषै गमन आगमन आदि
का काम पडै तिनि कार्यनिमें ऐसे परिणाम रहै जो में तृण
मात्रका भी छेद नाहीं करूं. मेरा निमित्ततैं काहूका अहित
न होय, ऐसें यत्नरूप प्रवृत्तैं है जीवदयाविषै ही तत्पर रहै
है. इहां टीकाकार अन्य ग्रंथनिमें संयमका विशेष वर्णन

कीया है. ताका संक्षेप—जो संयम दोयप्रकार है. उपेक्षासंयम, अपहृतसंयम । तहां जो स्वभावहीतैं रागद्वेषकूं छोडि गुप्ति धर्मविषै कायोत्सर्ग ध्यानकरि तिष्ठै तहां ताके उपेक्षासंयम कहिये. उपेक्षा नाम उदासीनता वा वीतरागताका है. बहुरि अपहृतसंयमके तीन भेद हैं. उत्कृष्ट मध्यम जघन्य । तहां चालतां बैठतां जो जीव दीखै तासूं आप टलिजाय जीवकूं सरकावै नाहीं सो उत्कृष्ट है. बहुरि कोमलमयूरकी पीछीकरि जीवकूं सरकावै सो मध्यम है. बहुरि अन्य तृणादिकतैं सरकावै सो जघन्य है. इहां अपहृत संयमीकूं पंच समितिका उपदेश है. तहां आहार विहारके अर्थ गमन करै सो प्रासुक मार्ग देखि जूढा पमाया भूमिकूं देखतैं मंद मंद अति यत्न तैं गमन करै. सो ईर्यासमिति है. बहुरि धर्मोपदेश आदिके निमित्त वचन कहै सो हितरूप मर्यादनै लीयां सन्देहरहित स्पष्ट अक्षररूप वचन कहै. बहु प्रलाप आदि वचनके दोष हैं तिनितैं रहित बोलै सो भाषासमिति है. बहुरि कायकी स्थितिके अर्थ आहार करै सो मनवचनकाय कृत कारित अनुमोदनाका दोष जामें न लागे, ऐसा परका दीया छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालि चौदहमलरहित अपने हाथ विषै गूढा अति यत्नतैं शुद्ध आहार करै सो एषणा समिति है. बहुरि धर्मके उपकरणनिकूं उठावना धरना सो अतियत्नतैं भूमिकं देखि उठावना धरना सो आदान निक्षेपण समिति है. बहुरि अंगका मल मूत्रादिक क्षेपण सो त्रस यावर जीवनिकूं देखि टालिकरि यत्नतैं क्षेपना सो प्रतिष्ठापना

समिति है. ऐसैं पांच समिति पालै तिनिके संयम पलै है. जातैं ऐसा कहा है जो यत्नाचार प्रबतैं है ताके बाह्य जीव कूं बाधा होय तौऊ बंध नाहीं है अर यत्नरहित प्रबतैं है ताके बाह्य जीव मरो तथा मति मरो बंध अशुद्ध होय है. बहुरि अपहृत संयमके पालनेके अर्थ आठ शुद्धीनिका उपदेश है. भावशुद्धि १ कायशुद्धि २ विनयशुद्धि ३ ईर्ष्यापथशुद्धि ४ भिक्षाशुद्धि ५ प्रतिष्ठापनाशुद्धि ६ शयनासनशुद्धि ७ वाक्यशुद्धि ८ ।

तहां भावशुद्धि तौ कर्मका क्षयोपशमजनित है सो तिस विना तौ आचार प्रकट नहीं होय. शुद्ध उज्ज्वल भीतिमें चित्राम शोभायमान दीखै जैसैं. बहुरि दिगंबररूप सर्व विकारनिर्तै रहित यत्नरूप जाविषै प्रवृत्ति शान्त मुद्रा जाकूं देखै अन्यके भय न उपजै तथा आप निर्भय रहै ऐसी कायशुद्धि है. बहुरि जहां अरहंत आदिविषै भक्ति गुरुनिके अनुकूल रहना ऐसैं विनयशुद्धि है. बहुरि मुनि जीवनिके ठिकाने सर्व जानै हैं तातैं अपने ज्ञानतैं सूर्यके उद्योगतैं नेत्र इंद्रियतैं मार्गकूं अतियत्नतैं देखिकरि गमन करना सो ईर्ष्यापथशुद्धि है. बहुरि भोजनकूं गमन करै तब पहले तौ अपने मल मूत्रकी बाधाकूं परखै, अपना अंगकूं नीकै प्रतिलेखै, बहुरि आचार सूत्रमें कहा तैसैं देश काल स्वभाव विचारै. बहुरि एती जायगां आहारकों प्रवेश करै नाहीं. गीत नृत्य वादित्रकी जिनकै आजीविका होय, तिनके घर जाय नाहीं. जहां प्रसूति भई होय तहां जाय नाहीं. जहां मृत्यु भई होय तहां

जाय नहीं. वेश्याकै जाय नहीं. पापकर्म हिंसाकर्म होय तहां जाय नहीं. दीनका घर, अनाथका घर, दानशाला, यज्ञ-शाला, यज्ञ, पूजनशाला, विवाह आदि मंगल जहां होय इनिकै आहार निमित्त जाय नहीं. धनवानकै जाना कि निर्धनके जाना ऐसा विचारै नहीं. लोक निर्ध कुलके घर जाय नहीं. दीनवृत्ति करै नहीं. प्राशुक आहार ले. आगममें कहाँ तैसेँ दोष अंतराय टालि निर्दोष आहार ले, सो भिक्षाशुद्धि है. इहां लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समानबुद्धि राखै है. सो भिक्षा पांच प्रकार कही है. गोचर १ अक्षम-क्षण २ उदराग्निप्रशमन ३ भ्रमराहार ४ गर्तपूरण ५. तहां गऊकी ज्यों दातारकी सम्पदादिककी तरफ न देखै, जैसा पाया तैसा आहार लेनेहीमें चित्त राखै, सो गोचरी वृत्ति है. बहुरि जैसै गाडीकौ बांगि ग्राम पहुंचै, तैसेँ संयमका साधक काय, ताकं निर्दोष आहार दे संयम साधै, सो अक्षम-क्षण है. बहुरि अग्नि लागीकूं जैसै तैसेँ पाणीतैं बुझाय घर बचावै, तैसेँ क्षुधा अग्निकूं सरस नीरस आहारकरि बुझाय अपना परिणाम उज्ज्वल राखै सो उदराग्नि प्रशमन है. बहुरि भ्रमर जैसै फूलकं बाधा नहीं करै अर वासना ले, तैसेँ मुनि दातारकूं बाधा न उपजाय आहार ले सो भ्रमराहार है. बहुरि जैसै शुभ्र कहिये खाडा ताकूं जैसै तैसेँ भरतकरि भरिये तैसेँ मुनि स्वादु निःस्वादु आहारकरि उदर भरै सो गर्तपूरण कहिये. ऐसेँ भिक्षाशुद्धि है. बहुरि मलमूत्र श्लेष्म थूक आदि क्षेपै सो जीबनिकूं देखि यत्नतैं क्षेपै सो प्रतिष्ठा-

पना शुद्धि है. बहुरि शयनासनशुद्धि जहां स्त्री दुष्ट जीव नपुंसक चोर मद्यपायी जीववधके करणहारे, नीच लोक वसते होंय तहां न वसै. बहुरि शृंगार विकार अभूषण सुन्दर वेश ऐसी जो वेश्यादिक तिनि की क्रीडा जहां होय, सुंदर गीत नृत्य वादित्र जहां होते होंय, बहुरि जहां विकारके कारण नग्न गुह्यप्रदेश जिनमें दीखैं ऐसे चित्राम होंय, बहुरि जहां हस्य महोत्सव घोडा आदिक शिक्षा देनेका ठिकाना तथा व्यायामभूमि होय, तहां मुनि न वसै. जिनतैं क्रोधादिक उपजै ऐसे ठिकाने न वसै. सो शयनासनशुद्धि है. जेतैं कायोत्सर्ग खडा रहनेकी शक्ति होय तेतैं स्वरूपमें स्त्री न होय खडे रहै पीछैं बैठै तथा खेदके भेटनेक अल्पकाल सोवै. बहुरि वाक्यशुद्धि जहां आरम्भकी प्रेरणारहित वचन प्रवर्तैं युद्ध, काम, कर्कश, प्रलाप, पैशुन्य, कठोर, परपीडा करनेवाले वाक्य न प्रवर्तैं । अनेक विकथाके भेद हैं तिनिरूप वचन न प्रवर्तैं. जिनमें व्रत शीलका उपदेश अपना परका जामें हित होय मीठा मनोहर वैराग्यकूं कारण अपनी प्रशंसा परकी निन्दातैं रहित संयमी योग्य वचन प्रवर्तैं सो वचनशुद्धि है. ऐसैं संयम धर्म है. संयमके पांच भेद कहे हैं, सामयिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांप्रदाय, यथाख्यत ऐसैं पांच भेद हैं इनिका विशेष व्याख्यान अन्यग्रन्थ जितैं जानना ॥ ३६९ ॥

आगें तप धर्मकूं कहै हैं,—

इहपरलोयसुहाणं गिरवेक्खो जो करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो गिम्मलो तस्स ४००

भाषार्थ—जो मुनि इस लोक परलोकके सुखकी अपेक्षा
सं रहित हूवा संता, बहुरि सुखदुःख अत्र मित्र तृण कंचन नि-
दा प्रशंसा आदिविषै रागद्वेषरहित समभावी हूवा संता अ-
नेक प्रकार कायक्लेश करै है तिस मुनिके निर्मल तपधर्म
होय है । भावार्थ—चारित्रके अर्थ जो उद्यम अर उपयोग करै
सो तप कहा है । तहां कायक्लेश सहित ही होय है । तातैं
आत्माकी विभावपरिणतिका संस्कार हो है ताकूं मेटनेका
उद्यम करै । अपने शुद्धस्वरूप उपयोगकूं चारित्रविषै थामै,
तहां बड़ा जोरसूं थामै है सो जोर करना सो ही तप है । सो
बाह्य अभ्यंतर भेदतैं बारह प्रकार कहा है । ताका वर्णन
आगें चूलिकामें होयगा । ऐसैं तप धर्म कहा ॥ ४०० ॥

आगें त्याग धर्मकूं कहै हैं,—

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं ।
वसदिं ममत्तहेटुं चायगुणो सो हवे तस्स ॥ ४०१ ॥

भाषार्थ—जो मुनि मिष्ट भोजन छोडै, रागद्वेषका उपजावनहारा
उपकरण छोडै, ममत्वका कारण वसतिका छोडै, तिस मुनि
के त्यागनामा धर्म होय है । भावार्थ—मुनिके संसार देह भोग
के ममत्वका त्याग तो पहले ही है । बहुरि जिन वस्तुनिमें
कार्य पडै है तिनिंकूं मुख्यकरि कहा है । आहारसूं काम पडै

तहां तौ सरस नीरसका ममत्व नाहीं करै. बहुरि धर्मोपकरण पुस्तक पीछी कमंडलु जिनसूं राग तीव्र बंधै ऐसे न राखै, जो गृहस्थजनके काम न आवै. बहुरि बडी बस्तिका रहनेकी जायगासूं काम पडै सो ऐसी जायगां न बसै जातैं ममत्व उपजै. ऐसैं त्यागधर्म कहा ॥ ४०१ ॥

आगें आर्किचन्य धर्मकूं कहै हैं,—

तिविहेण जो विवज्जइ चेयणमियरं च सठवहा संगं
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥ ४०२ ॥

भाषार्थ—जो मुनि चेतन अचेतन परिग्रहकूं सर्वथा मन बचनकाय कुतकारितअनुमोदनाकरि छोडै, कैसा हूवा संता, लोकके व्यवहारसूं विरक्त हूवा संता छोडै, तिस मुनिके निर्ग्रंथपणा होय है. भावार्थ—मुनि अन्य परिग्रह तौ छोडै ही हैं परन्तु मुनिपणामें योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य संव अर अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमंडलु धर्मोपकरण अर आहार वस्तिका देह ये अचेतन तिनिसूं भी सर्वथा ममत्व छोडै ऐसा विचारै जो मैं तो आत्मा ही हों अन्य मेरी किछू भी नाहीं मैं अर्किचन हों, ऐसा निर्ममत्व होय ताके आर्किचन्य धर्म होय है ॥ ४०२ ॥

आगें ब्रह्मचर्य धर्मकूं कहै हैं,—

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं ।
कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स ॥ ४०३ ॥

भाषार्थ-जो मुनि स्त्रीनिकी संगति न करै, तिनिका रूपकूं नार्ही निरखै, बहुरि कामकी कथा आदि शब्दकरि स्मरणादिकरि रहित होय ऐसैं नवधा कहिये मनवचनकाय, कृत कारित अनुमोदनाकरि करै तिस मुनिके ब्रह्मचर्य वर्म होय है। भावार्थ-इहां ऐसा भी जानना जो ब्रह्म आत्मा है ताविषै लीन होय सो ब्रह्मचर्य है। सो परद्रव्यविषै आत्मा लीन होय तिनिविषै स्त्रीमें लीन होना प्रधान है जातैं काम मनविषै उपजै है सो अन्य कषायनितैं भी यह प्रधान है। अर इस कामका आलंबन स्त्री है सो याका संसर्ग छोडे अपने स्वरूपविषै लीन होय है। तातैं याकी संगति करना रूप निरखना, याकी कथा करनी, स्मरणा करना, छोड़ै ताके ब्रह्मचर्य होय है। इहां टीकामें शीलके अठारह हजार भेद ऐसे लिखे हैं। अचेतन स्त्री-काष्ठ पाषाण अर लेपकृत, तिनिकूं मनवचनकाय अर कृत कारित अनुमोदना इनि छह तैं गुणो अठारह होय। तिनिकं पांच इंद्रियनितैं गुणो निव्वे होय। द्रव्य अर भावतैं गुणे एकसो अस्सी (१८०) होय क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारितैं गुणो सातसौ बीस ७२० होय। बहुरि चेतन स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यचणी तिनिकं कृत कारित अनुमोदनातैं गुणे नव (९) होय, तिनिकूं मन वचन काय इनि तीनतैं गुणो सत्ताईस २७ होय, पांच इन्द्रियनितैं गुणो एकसौ पैंतीस १३५ होय, द्रव्य अर भाव-करि गुणो दोयसौसत्तरि २७० होय, इनिकूं च्यारि संज्ञा आहार भय मैथुन परिग्रहतैं गुणे एक हजार अस्सी १०८०

होय इनिकूं अनंतानुंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानाव-
रण संजवलन क्रोध मान माया लोभ रूप सोलह कषायनितै
गुणे सतराहजार दोयसे अस्सी १७२८० होय अर अचेतन
स्त्रीके सातसौ बीस भेद मिलाये अठारह हजार १८०००
होंय ऐसे भेद हैं बहुरि इनि भेदनिकूं अन्य प्रकार भी कीये
हैं सो अन्य ग्रन्थनितै जानने. ए आत्माकी परणतिके वि-
कारके भेद हैं सो सर्व ही छोडि अपने स्वरूपमें रमै तब ब्रह्म-
चर्य धर्म उत्तम होय है ॥ ४०३ ॥

आगें शीलवानकी बडाई कहै हैं,—उक्तं च,

जो ण वि जादि वियारं तरुणियणकडक्खवाणविद्धोवि
सो चेव सूरसूरो रणसूणो णो हवे सूरु ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पुरुष स्त्रीजनके कटाक्षरूप बाणनिकरि
विध्या भी विकारकूं प्राप्त न होय है सो शूरवीरनिमें प्रधान
है, अर जो रणविषै शूरवीर है सो शूरवीर नाहीं है. भावार्थ—
युद्धमें साम्हा होय मरनेवाले तो सूरवीर बहुत हैं अर जे
स्त्रीके बन्ध न होय हैं ब्रह्मचर्यव्रत पालें हैं ऐसे विरले हैं
तेही बड़े साहसी हैं शूरवीर हैं, कामको जीतनेवाले ही बड़े
सुभट हैं । ऐसे यह दश प्रकार धर्मका व्याख्यान कीया ।

आगै याकूं संकोचै हैं,—

एसो दहप्पयारो धम्मो दहलक्खणो हवे गियमा ।
अण्णो ण हवदि धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थत्थि ॥

भाषार्थ—ऐसैं दश प्रकार धर्म है सो ही दशलक्षणस्वरूप धर्म नियमकरि है. बहुरि अन्य जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नाहीं है. भावार्थ—जहां हिंसाकरि अर तिसकूं कोई अन्यपती धर्म थापै है, तिसकूं धर्म न कहिये. यह दशलक्षणस्वरूप धर्म कह्या है सो ही धर्म नियमकरि है ४०४

आगैं इस गाथामें कह्या है जो जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय तहां धर्म नाहीं तिस ही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—
हिंसारंभो ण सुहो देवणिमित्तं गुरुण कज्जेसु ।

हिंसा पावं ति मदो दयापहाणो जदो धम्मो ॥४०५॥

भाषार्थ—जातैं हिंसा होय सो पाप है, ऐसैं कह्या है. बहुरि धर्म है सो दया प्रधान है, ऐसैं कह्या है. तातैं देव के निमित्त तथा गुरुके कार्यके निमित्त हिंसा आरम्भ सो शुभ नाहीं है. भावार्थ—अन्यपती हिंसामें धर्म थापैं हैं. मीमांसक तौ यज्ञ करै हैं, तहां पशुनिकों होवैं हैं ताका फल शुभ कहै हैं. बहुरि देवीके भैरवके उपासक बकरे आदि पारि देवी भैरवके चढ़ावैं हैं ताका शुभ फल मानै हैं. बौद्धपती हिंसाकरि मांसादिक आहार शुभ कहै हैं. बहुरि श्वेताम्बरनिके केई सूत्रनिमें ऐसैं कही है जो देव गुरु धर्मके निमित्त चक्रवर्तिकी सेनाने चूरिये जो साधु ऐसैं न करै है तो अनन्त संसारी होय. कहूं मद्यमांसका आहार भी लिखा है. इनि सर्वनिका निषेध इस गाथामें जानना. जो देव गुरुके कार्यनिमित्त हिंसाका आरम्भ करै है सो शुभ नाहीं. धर्म है

सो दयाप्रधान ही है. बहुरि ऐसैं भी जानना जो पूजा प्रतिष्ठा चैत्यालयका निर्माण संघयात्रा तथा वसतिकाका निर्माण गृहस्थनिके कार्य हैं ते भी मुनि आप न करै, न करावै, न अनुमोदना करै. यह धर्म गृहस्थनिका है सो जैसैं इनिका सूत्रमें विधान लिख्या है तैसैं गृहस्थ करै. गृहस्थ मुनिकुं इनिका प्रश्न करै तौ कहै जिन सिद्धांतमें गृहस्थका धर्म पूजा प्रतिष्ठा आदि लिख्या है तैसैं करो. ऐसैं कहनेमें हिंसाका दोष तौ गृहस्थके ही है. इसमें तिस श्रद्धान भक्ति धर्मकी प्रधानता भई तिस संबंधी पुण्य भया तिसके सीरी मुनि भी हैं, हिंसा गृहस्थकी है. ताके सीरी नाहीं. बहुरि गृहस्थ भी हिंसा करनेका अभिप्राय करै तौ अशुभ ही है. पूजा प्रतिष्ठा यत्नपूर्वक करै है. कार्यमें हिंसा होय सो गृहस्थके कैसैं टलै ? सिद्धांतमें ऐसा भी कह्या है जो अल्प अपराध लगै बहुत पुण्य निपजै ऐसा कार्य गृहस्थकुं योग्य है. गृहस्थ जिसमें नफा जाणै सो कार्य करै. थोडा द्रव्य दीये बहुत द्रव्य आवै सो कार्य करै. किंतु मुनिनिकै ऐसा कार्य नाहीं होय है. तिनिकै सर्वथा यत्न ही है ऐसा जानना ४०५ देवगुरुण णिम्मिच्चं हिंसारंभो वि होदि जदि धम्मो । हिंसारहिओ धम्मो इदि जिणवयणं हवे अलियं ॥

भाषार्थ—जो देव गुरुके निमित्त हिंसाका आरम्भ भी यतिका धर्म होय तौ जिन भगवानके ऐसे वचन हैं जो धर्म हिंसारहित है सो ऐसा वचन अलीक (झूठा) ठहरे. भा-

वार्थ—जातैं धर्म भगवानने हिंसारहित कहा है तातैं देव गु-
रुके कार्यके निमित्त भी मुनि हिंसाका आरम्भ न करै. जे
श्वेताम्बर कहै हैं सो मिथ्या है ॥ ४०६ ॥

आगें इस धर्मका दुर्लभपणा दिखावै हैं—

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि ।
मिछत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं ॥ ४०७ ॥

भाषार्थ—ऐसैं यह जिनेश्वर देवका धर्म अनादि काल-
विषै मिथ्यात्वकरि संयुक्त जे जीव जिनिके कालादि लब्धि
नाहीं आई, तिनिकै अलब्धपूर्वक है पूर्वे कबहूँ पाया नाहीं
भावार्थ—मिथ्यात्वकी अलट जीवनिके अनादि कालतैं ऐसी
है जो जीव अजीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान कबहूँ हुवा नाहीं,
बिना तत्त्वार्थश्रद्धान अहिंसाधर्मकी प्राप्ति कैसें होय ? ४०७

आगे कहै हैं कि अलब्धपूर्वक धर्मकू पायकरि केवल
पुण्यका ही आशय करि न सेवणा,—

एदे दहप्पयारा पावकम्मस्स णासिया भणिया ।

पुण्णस्स य संजणया पर पुण्णत्थं ण कायठ्वा ४०८

भाषार्थ—ए दस प्रकार धर्मके भेद कहे, ते पापकर्मके तौ
नाश करनेवाले कहे बहुरि पुण्य कर्मके उपजावन हारे कहे
हैं परन्तु केवल पुण्यहीका अर्थ प्रयोजनकरि नाहीं अंगीकार क-
रने । भावार्थ—सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र तौ
पुण्य कर्म कहे हैं, अर च्यारि घातिकर्म अर असातावेदनीय अशु-

भनाम अशुभआयु अशुभगोत्र पापकर्म कहे हैं सो दश लक्षण धर्मकूं पापका नाश करनेवाला पुण्यका उपजावनहारा कह्यो तहां केवल पुण्य उपजावनेका अभिप्राय राखि इनिकूं न सेवणो जातैं पुण्य भी बंध ही है. ए धर्म तौ पाप जो घाति कर्म ताके नाश करनेवाला है. अर अघातिमें अशुभ प्रकृति हैं तिनिका नाश करै है. अर पुण्य कर्म हैं ते संसारके अभ्युदयकूं देहैं सो इनिं तैं तिसका भी व्यवहार अपेक्षा बन्ध होय है तौ स्वयमेव होय ही है. तिसकी बांछा करणा तौ संसारकी बांछा करना है, सो यह तौ निदान भया, मोक्षका अर्थिकै यह होय नाहीं. जैसे किसान खेती नाजके अर्थ करै है ताके घास स्वयमेव होय है. ताकी बांछा काहेकूं करे मोक्षके अर्थिकं पुण्यबंधकी बांछा करना योग्य नाहीं ४०८

पुण्यं पि जो समच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि ।
पुण्यं सगगइ हेउं पुण्यखयेणेव णिठ्वाणं ॥ ४०९ ॥

भावार्थ—जो पुण्यकों भी चाहै है तिस पुरुषने संसार चाह्या. जातैं पुण्य है सो सुगतिका बंधका कारण है अर मोक्ष है सो भी पुण्यका भी क्षयकरि होय है. भावार्थ—पुण्यतैं सुगति होय है. सो जाने पुण्य चाह्या तिसने संसार चाह्या सुगति है सो संसार ही है. मोक्ष तौ पुण्यका भी क्षय भये होय है. सो मोक्षका अर्थिकों पुण्यकी बांछा करणा योग्य नाहीं ॥ ४०९ ॥

जो अहिलसेदि पुण्णं सकसाओ विसयसोक्खतह्माए
दूरे तस्स विसोही विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ४१० ॥

भाषार्थ—जो कषायसहित भया संता विषयसुखकी तृ-
ष्णाकरि पुण्यकी अभिलाषा करै है ताकै विशुद्धता मंदक-
षायके अभावकरि दूर वत्तै है. बहुरि पुण्य कर्म है सो वि-
शुद्धता है मूल कारण जाका, ऐसा है. भावार्थ—जो विष-
यनिकी तृष्णाकरि पुण्यकों चाहै है सो तीव्र कषाय है. अर
पुण्यबंध होय सो मंदकषायरूप विशुद्धि तातैं होय है सो
पुण्य चाहै ताकै आगामी पुण्यबन्ध भी नाहीं होय है, नि-
दानमात्र फल होय तौ होय ॥ ४१० ॥

पुण्णासए ण पुण्णं जदो णिरीहस्स पुण्णसंपत्ती ।

इय जाणिऊण जइणो पुण्णे वि म आयरं कुणह ॥

भाषार्थ—जातैं पुण्यकी बांछाकरि तौ पुण्यबन्ध नाहीं
होय है अर बांछा रहित पुरुषकै पुण्यका बंध होय है. तातैं
भी यतीश्वर हौ ऐसा जाणिकरि पुण्य विषै भी बांछा आ-
दर मति करौ. भावार्थ—इहां मुनिराजकों उपदेश कहा है
जो पुण्यकी बांछातैं पुण्यबन्ध नाहीं तौ आशा मिटै बंधै है
तातैं आशा पुण्यकी भी मति करौ, अपने स्वरूपकी प्राप्ति-
की आशा करौ ॥ ४११ ॥

पुण्णं बंधदि जीवो मंदकसाएहि परिणदो संतो ।

तह्मा मंदकसाया हेऊ पुण्णस्स ण हि बंछा ॥ ४१२

भाषार्थ—जातैं जीव है सो मंदकषायरूप परिणया संता
 पुण्यको बांधै है. तातैं पुण्यबंधका कारण मंदकषाय है,
 बांछा पुण्यबन्धका कारण नाहीं है. पुण्यबंध मंदकषायतैं
 होय है, अर याकी बांछा है सो तीव्र कषाय है. तातैं बांछा
 न करणी. निर्वाछक पुरुषकें पुण्य बंध होय है. यह लौकिक
 भी कहै है जो चाह करै ताकूं किछू मिलै नाहीं. विना चा-
 दिवालेकों बहुत मिलै है. तातैं बांछाका तौ निषेध ही है.
 इहां कोई पूछै अध्यात्म ग्रंथनिमें तौ पुण्यका निषेध बहुत
 कीया अर पुराणनिमें पुण्यहीका अधिकार है सो हम तौ
 यह जाणै हैं संसारमें पुण्यही बडा है, याहीतैं तौ इहां इन्द्रि-
 यनिके सुख मिलै हैं याहीतैं मनुष्य पर्याय, भली संगति,
 भला शरीर मोक्ष साधनेके उपाय मिलै हैं, पापतैं नरक नि-
 गोद जाय तब मोक्षका भी साधन कहां मिलै ? तातैं ऐसे
 पुण्यकी बांछा क्यों न कीजिये ? ताका समाधान—यह बह्ना
 सो तौ सत्य है परन्तु भोगनिके अर्थ केवल पुण्यकी बांछा
 का अत्यंत निषेध है भोगनिके अर्थ पुण्यकी बांछा करै ताकै
 प्रथम तौ सातिशय पुण्य बंधै ही नाहीं, अर इहां तपश्चर-
 णादिककरि किछू पुण्य बांधि भोग पावै, तहां अति तृष्णातैं
 भोगनिकों सेवै तब नरक निगोद ही पावै अर बंध मोक्षके
 स्वरूप साधनेके अर्थ पुण्य पावै ताका निषेध है नाहीं, पुण्य-
 तैं मोक्षसाधनेकी सामग्री मिलै ऐसा उपाय राखै तौ तहां
 परम्पराय मोक्षहीकी बांछा भई, पुण्यकी तौ बांछा न भई.
 जैसे कोई पुरुष भोजन करनेकी बांछाकरि रसोईकी सामग्री

भेली करै तिनिकी बांछा पहली होय तौ भोजनहीकी बांछा कहिये. बहुरि भोजनकी बांछा विना केवल सामग्रीहीकी बांछा करै तौ सामग्री मिलै भी प्रयास मात्र ही भया. किछू फल तौ न भया. ऐसैं जानना. पुराणनिमें पुण्यका अधिकार है सो भी मोक्षहीके अर्थि है संसारका तौ तहां भी निषेध ही है ॥ ४१२ ॥

आगें दश लक्षण धर्म है सो दया प्रधान है अर दया है सोई सम्यक्त्वका मुख्य चिह्न है जातैं सम्यक्त्व है सो जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष इनि तत्वार्यनिके ज्ञानपूर्वक श्रद्धान स्वरूप है. सो यह होय तब सर्व जीवनिकों आप समान जाणै ही, तिनिके दुःख होय तब आपकी उधों जाणै. तब तिनिकी करुणा होय ही. अर आपना शुद्ध स्वरूप जाणै कषायनिकों अपराध दुःखरूप जाणै इनितैं अपना घात जाणै तब आपकी दया कषायभावके अभावको मानैं ऐसैं अहिंसाकों धर्म जाणैं हिंसाको अधर्म जानै ऐसा श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व है. ताके निःशंकितकूं आदि देखि आठ अंग हैं. तिनिकों जीव दया ही परि लगाय कहै हैं. तहां प्रथम निःशंकितकों कहै हैं,—

किं जीवदया धम्मो जण्णे हिंसा वि होदि किं धम्मो इच्छेवमादिसंका तदकरणं जाणि णिस्संका ॥४१३॥

भाषार्थ—यह विचारै जो कहा जीव दया धर्म है कि य-
श्वविषै पशुनिका बन्धरूप हिंसा होय है सो धर्म है ? इत्या-

दिक धर्मविषै संशय होय शंका है. याका न करणां सो निः-
 शंका है. भावार्थ—इहां आदि शब्दतैं कहा दिगम्बर यती-
 निहीकों मोक्ष है. कि तापस पंचाग्नि आदि तप करै ति-
 निकों भी है अथवा दिगम्बरकों ही मोक्ष है कि श्वेताम्बर
 कों है अथवा केवली कवलाहार करै है कि नाहीं करै है अ-
 थवा स्त्रीनिकों मोक्ष है कि नाहीं अथवा जिनदेव वस्तुकों
 अनेकांत ब्रह्म है सो सत्य है कि असत्य है ऐसी आशंका
 न कै सो निःशंकित अंग है ॥ ४१३ ॥

दयभावो वि य धम्मो हिंसाभावो ण भण्णदे धम्मो
 इदि संदेहाभावो णिस्संका णिम्मला होदि ॥ ४१४ ॥

भाषार्थ—निश्चयँ दयाभाव ही धर्म है हिंसाभाव धर्म
 न कहिये ऐसैं निश्चय भये संदेहका अभाव होय सो ही
 निर्मल निःशंकित गुण है. भावार्थ—अन्यमतीनैं मान्या जो
 विपरीत देव धर्म गुरुका तथा तत्त्वका स्वरूप ताका सर्वथा
 निषेधकरि जिनमतका कहा श्रद्धान करना सो निःशंकित
 गुण है शंका रहै जेतैं श्रद्धान निर्मल होय नाहीं ॥ ४१४ ॥

आगें निःकांक्षित गुणकों कहै हैं,—

जो सम्गसुहणिमित्तं धम्मं णायरदि दूसहतवेहिं ।

मुखं समीहमाणो णिक्कंखा जायदे तस्स ॥ ४१५ ॥

भाषार्थ—जो सम्गसुहृष्टी दुद्धर तपकरि भी स्वर्गसुखके
 अर्थ धर्मकों आचरण न करै तिसकै निःकांक्षित गुण होय

है. कैसा है तिस दुद्धर तपकरि मोक्षकी ही बांछा करता संता है. भावार्थ—जो धर्मकों आचरण करै दुद्धर तप करै सो मोक्षहीके अर्थ करै स्वर्ग आदिके सुख न चाहै ताकै निःकांक्षित गुण होय है ॥ ४१५ ॥

आगे निर्विचिकित्सा गुणकों कहै हैं,—

दहविहधम्मजुदाणं सहावदुग्गंधअसुइदेहेसु ।

जं णिंदणं ण कीरइ णिठिवदिगिंछा गुणे सो हु ४१६

भावार्थ—जो दशप्रकारके धर्मकरि संयुक्त जे मुनिराज तिनिका देह सो प्रथम तो देहका स्वभाव ही करि दुर्गंध अशुचि है बहुरि स्नानादि संस्कारके अभावतैं बाह्यमें विशेषकरि अशुचि दुर्गंध दीखै है ताकी अवज्ञा न करै सो निर्विचिकित्सा गुण है. भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुषकी प्रधान दृष्टि सम्यक्त्वज्ञानचारित्रगुणनि परि पडै है देह तो स्वभाव ही करि अशुचि दुर्गंध है तातैं मुनिराजनिकी देहकी तरफ कहा देखै ? तिनिके रत्नत्रयकी तरफ देखै तब काहेकों ग्लानि आवै. यह ग्लानि न उपजाना सो ही निर्विचिकित्सा गुण है जाकै सम्यक्त्व गुण प्रधान न होय ताकी दृष्टि पहली देह-परि पडै तब ग्लानि उपजै तब यह गुण न होय है ॥ ४१६ ॥

आगे अमूढदृष्टि गुणकों कहै हैं,—

भयलज्जालाहादो हिंसारंभो ण मण्णदे धम्मो ।

जो जिणवयणे लीणो अमूढदिट्ठी हवे सो हु ॥ ४१७ ॥

भाषार्थ—जो भयकरि तथा लज्जाकरि तथा लाभकरि हिंसाके आरम्भकों धर्म नहीं मानै, सो पुरुष अमूढदृष्टिगुण संयुक्त है. कैसा है जिनवचनविषै लीन है भगवानने धर्म अहिंसा ही कह्या है. ऐसी दृढ श्रद्धा युक्त है. भावार्थ—अन्य-मती यज्ञादिक हिंसा धर्म थापै है ताकों राजाके भयतैं तथा काहू व्यन्तरके भयतैं तथा लोककी लज्जातैं तथा किछू धनादिकके लाभतैं इत्यादि अनेक कारण हैं तिनितैं धर्म न मानै ऐसी श्रद्धा रखै जो धर्म तौ भगवानने अहिंसा ही कहा है ताकै अमूढदृष्टि गुण है. इहां हिंसारम्भके कहनेमें हिंसाके प्ररूपक देव शास्त्र गुरु आदिविषै भी मूढदृष्टि न होय है ऐसा जानना ॥ ४१७ ॥

आगें उपगूहन गुणकों कहै हैं,—

जो परदोसं गोवदि णियसुकयं णो पयासदे लोए ।
भवियव्वभावणरओ उवगूहणकारओ सो हु ४१८

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी परके दोषकों तौ गोपै ठाकै बहुरि अपना सुकृत कहिये पुण्य गुण लोकविषै प्रकाशै नहीं कहता न फिरै. बहुरि ऐसी भावनामें लीन रहै जो भवितव्य है सो होय है तथा होयगा सो उपगूहन गुण करने वाला है. भावार्थ—सम्यग्दृष्टिकैं ऐसी भावना रहै है जो कर्मका उदय है तिस अनुसार मेरे लोकमें प्रवृत्ति है सो होणी है सो होय है. ऐसी भावनातैं अपना गुणको प्रकाशता फिरै नहीं, परके दोष प्रगट करै नहीं, बहुरि साधर्मी जन तथा

पूज्य पुरुषनिमें कोई कर्मके उदयतैं दोष लागे तो ताकों छिपावै, उपदेशादिकरि दोष छुडावै, ऐसै न करै जामें बिनिकी निन्दा होय, धर्मकी निन्दा होय, धर्म धर्मात्ममेंसुंदोषका अभाव करना है सो छिपावना भी अभाव ही करना है. जाकों लोक न जानै सो अभाव तुल्य ही हैं ऐसैं उपगृहण गुण होय है ॥ ४१८ ॥

आगे स्थितिकरण गुणकों कहै हैं,—

धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि ।

अप्पाणं पि सुदिढयदि ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥

भाषार्थ—जो अन्यकों धर्ममें चलायमान होतेकों धर्मविषै स्थापै तथा अपने आत्माकों भी चलनेतैं दृढ करै तिसकै निश्चयतैं स्थितिकरण गुण होय है. भावार्थ—धर्मतैं चिगनेके अनेक कारण हैं सो निश्चय व्यवहाररूप धर्मतैं परकों तथा आपकूं चिगता जाणि तथा उपदेशतैं तथा जैसे होय तैसें दृढ करे, ताकैं स्थितिकरण गुण होय है ॥ ४१९ ॥

आगे वात्सल्य गुणक कहै हैं,—

जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।

पियवयणं जंपंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥ ४२० ॥

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव धार्मिक कहिये सम्यग्दृष्टी श्रावक मुनिनिविषै तौ भक्तिवान् होय, बहुरि तिनिके अ-
[सुसार प्रवर्तै, परम श्रद्धाकरि प्रियवचन बोलता संता प्रवर्तै

तिस भव्यकै वात्सल्यगुण होय है. भावार्थ—वात्सल्य गुणमें धर्मानुराग प्रधान है उत्कृष्टकरि धर्मात्मा पुरुषनिस्तुं जाकै भक्ति अनुराग होय तिनिमें प्रियवचन सहित प्रवचै. तिनिंकुं भोजन गमन आगमन आदिकी क्रियाका अनुचर होय प्र-
वचै, गाय बछरेकीसी प्रीति राखै ताकै वात्सल्य गुण होय है ॥ ४२० ॥

आगे प्रभावना गुणकूं कहै हैं,—

जो दसभेयं धम्मं भव्वजणाणं पयासदे विमलं ।

अप्पाणं पि पयासदि णाणेण पहावणा तस्स २१

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी दशभेदरूप धर्मकौं भव्य जी-
वनिके निकट अपने ज्ञानकरि प्रगट करै तथा अपनी आ-
त्माकौं दशप्रकार धर्मकरि प्रकासै ताकै प्रभावना गुण होय
है. भावार्थ—धर्मका विख्यात करना सो प्रभावना गुण है.
सो उपदेशादिककरि तौ परके विषै धर्म प्रगट करै. अर अ-
पना आत्माकौं दशविध धर्म अंगीकारकरि कर्म कलंकतैं र-
हितकरि प्रगट करै ताकै प्रभावना गुण होय है ॥ ४२१ ॥

जिणसासणमाहप्पं बहुविहजुत्तीहिं जो पयासेदि ।

तह तिठेण तवेण य पहावणा णिम्मला तस्स २२

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी पुरुष अपने ज्ञानके बलतैं अ-
नेक प्रकार युक्तिकरि बादीनिका निराकरणकरि तथा न्याय
व्याकरण छंद अलंकार साहित्य विद्याकरि वक्तावणा वा शास्त्र-

निकी रचना करि तथा अनेकप्रकार युक्तिकरि वादीनिका नि-
राकरणकरि तथा अनेक अतिशय चमत्कार पूजा प्रतिष्ठा तथा
महान दुद्धर तपश्चरणकरि जिनशासनका माहात्म्य प्रगट
करै ताकै प्रभावना गुण निर्मल होय है. भावार्थ—यह प्र-
भावना गुण बड़ा गुण है यातैं अनेक अनेक जीवनिकै ध-
र्मकी रुचि श्रद्धा उपजि आवै है तातैं सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकै
अवश्य होय है ॥ ४२२ ॥

आगें निःशंकित आदि गुण किस पुरुषकै होय ताकों
कहै हैं,—

जो ण कुणदि परतार्त्ति पुण पुण भावेदि सुद्धमप्पाणं ।
इंदियसुहणिरवेक्खो णिस्संकाईगुणा तस्स ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष परकी निंदा न करै बहुरि शुद्ध आ-
त्माकों बार बार भावै बहुरि इन्द्रिय सुखकी अपेक्षा बांछा
रहित होय ताकै निःशंकित आदि अष्टगुण अहिंसा धर्मरूप स-
म्यक्त्व होय है. भावार्थ—इहां तीन विशेषण हैं तिनिका ता-
त्पर्य यह है कि जो परकी निंदा करै ताकै निर्विचिकित्सा
अर उपगूहन स्थितिकरण गुण कैसें होय तथा वात्सल्य
कैसें होय तातैं परका निंदक न होय तब ये चार गुण होय
हैं. बहुरि जाकै अपना आत्माका वस्तु स्वरूपमें शंका संदेह
होय तथा मूढ दृष्टि होय सो अपने आत्माकों बारम्बार
शुद्ध कैसें भावै तातैं शुद्ध आपको भावै ताहीकै निःशंकित
तथा अमूढदृष्टि गुण होय. तथा प्रभावना भी ताहीकै होय

बहुति जाकै इन्द्रियसुखकी बांछा होय ताकै निःकांक्षित गुण
नाहीं होय. इन्द्रिय सुखकी बांछातैं रहित भये ही निःकां-
क्षित गुण होय. ऐसैं आठ गुणके संभवनेके तीन विशेषण हैं ॥

आगे ए कहै हैं—ये आठ गुण जैसे धर्मविषै कहे तैसें
देव गुरु आदिविषै भी जानने,—

णिसंकापहुदिगुणा जह धम्मे तह य देवगुरुतच्चे ।
जाणेहि जिणमयादो सम्मत्ताविसोहया एदे ॥ २४ ॥

भाषार्थ—ए निःशंकित आदि आठ गुण कहे ते धर्म-
विषै प्रकट होते कहे तैसें ही देवके स्वरूपविषै तथा गुरुके
स्वरूपविषै तथा षड्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्त तत्त्व नव पदा-
र्थनिके स्वरूपविषै होय हैं. निनिकों प्रवचन सिद्धान्ततैं जा-
नने. ए आठ गुण सम्यक्त्वकों निरतिचार विशुद्ध करने-
वाले हैं. भावार्थ—देव गुरु तत्त्वविषै शंका न करणी, तिनिकी
यथार्थ श्रद्धातैं इन्द्रिय सुखकी बांछा रूप कांक्षा न करणी,
तिनिमें ग्लानि न ल्यावनी, तिनिविषै मूढदृष्टि न राखणी,
तिनिके दोषनिका अभाव करना तथा तिनिका ढांकना, ति-
निका श्रद्धान दृढ करना, तिनिकै वात्सल्य विशेष अनुराग
करना, तिनिकी महिमा प्रकट करनी ऐसैं आठ गुण इनि-
विषै जानने. इनिकी कथा आगे सम्यग्दृष्टी भये तिनिकी
जिनशास्त्रनितैं जाननी. अर ये आठों गुण सम्यक्त्वके अ-
तीचार दूरकरि निर्मल करनहारे हैं ऐसैं जानना ॥ ४२४ ॥

आगेँ इस धर्मके करनेवाला तथा जाननेवाला दुर्लभ है ऐसै कहै हैं,—

धम्मं ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कहवि कट्टेण ।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥

भाषार्थ—या संसारमें प्रथम तौ जीव धर्मकों जाणो ही नहीं है बहुरि कोई प्रकार बडा कष्टकरि जो जाणै भी तौ मोहरूप पिशाचकरि भ्रमित किया हुवा करनेकों समर्थ नहीं होय है. भावार्थ—अनादिसंसारतैं मिथ्यात्वकरि भ्रमित जो यह प्राणी प्रथम तौ धर्मकों जाणै ही नहीं है बहुरि कोई काललब्धितैं गुरुके संयोगतैं ज्ञानावरणीके क्षयोपशमतैं जानै भी तौ ताका करना दुर्लभ है ॥ ४२५ ॥

आगेँ धर्मका ग्रहणका माहात्म्य दृष्टांतकरि कहै हैं,—
जह जीवो कुणइ रइं पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु ।
तह जइ जिणिंदधम्मे तो लीलाए सुहं लहदि २६

भाषार्थ—जैसै यह जीव पुत्र कलत्रविषै तथा काम भोगविषै रति प्रीति करै है तैसै जो जिनेन्द्रके वीतराग धर्मविषै करै तौ लीला मात्र शीघ्र कालमें ही सुखकूं प्राप्त होय है । भावार्थ—जैसी या प्राणीके संसारविषै तथा इन्द्रियनिके विषयनिकेविषै प्रीति है तैसी जो जिनेश्वरके दश लक्षण धर्म स्वरूप जो वीतराग धर्म ताविषै प्रीति होय तौ थोड़ेसे ही कालविषै मोक्षकूं पावै ॥ ४२६ ॥

आगें कहै हैं जो जीव लक्ष्मी चाहै हैं सो धर्मविना कैसे होय ?—

लच्छि बंछेइ णरो णेव सुधम्मसेसु आयरं कुणई ।

वीएण विणा कुत्थ वि किं दीसदि सस्सणिप्पत्ती ॥२७॥

भाषार्थ—यह जीव लक्ष्मीकों चाहै है बहुरि जिनेन्द्रका कत्था मुनि श्रावक धर्मविषै आदर प्रीति नाहीं करै है तौ लक्ष्मीका कारण तौ धर्म है, तिस विना कैसे आवै ? जैसे बीज विना धान्यकी उत्पत्ति कहूं दीखै है ? नाहीं दीखै है। भावार्थ—बीज विना धान्य न होय तैसें धर्मविना संपदा न होय यह प्रसिद्ध है ॥ ४२७ ॥

आगें धर्मात्मा जीवकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

जो धम्मत्थो जीवो सो रिउवग्गे वि कुणदि खमभावं
ता परदव्वं वज्जइ जणणिसमं गणइ परदारं ॥ २८ ॥

भाषार्थ—जो जीव धर्मविषै तिष्ठै है सो वैरीनिके समूहविषै क्षमाभाव करै है बहुरि परका द्रव्यकों तजै है, अंगीकार नाहीं करै है। बहुरि परकी स्त्रीकूं कन्या माता बहन समान गिणै है ॥ ४२८ ॥

ता सव्वत्थ वि कित्ती ता सव्वस्स वि हवेइ वीसासो
ता सव्वं पि य भासइ ता सुद्धं माणसं कुणई ॥२९॥

भाषार्थ—जो जीव धर्मविषै तिष्ठै है तो सर्व लोकमें ताकी कीर्त्ति होय है। बहुरि ताका सर्वलोक विश्वास करै

है. बहुरि सो पुरुष सर्वकों प्रियवचन कहै है जातैं कोई दुःख न पावै है. बहुरि सो पुरुष अपने अर परके मनकों शुद्ध उ-
ज्ज्वल करै है कोईके यासूं कालिमा न रहै. तैसें याकै भी को-
ईसूं कालिमा न रहै है. भावार्थ—धर्म सर्वप्रकार सुखदाई है।

आगें धर्मका माहात्म्य कहै हैं,—

उत्तमधम्मणेण जुदो होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो ।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तमधम्मणेण संभवदि ॥ ४३० ॥

भाषार्थ—सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि संयुक्त जीव है सो तिर्यच भी देव पदईकों पावै है. बहुरि चांडाल है सो भी देवनिका इन्द्र सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्मकरि होय है । अग्गी वि य होदि हिमं होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—या जीवकै उत्तम धर्मतैं अग्नि तौ हिम (शी-
तल पाला) हो जाय है. बहुरि सर्प है सो उत्तम रत्ननिकी माला हो जाय है बहुरि देव हैं ते भी किंकर दास होय हैं ।
उक्तं च गाथा,—

तिक्खं खग्गं माला दुज्जयरिउणो सुहंकरा सुयणा ।
हालाहलं पि अमियं महापया संपया होदि ॥ १ ॥

भाषार्थ—उत्तम धर्म सहित जीवकै तीक्ष्ण खड्ग सो फू-
लमाला होय जाय है. बहुरि दुर्जय इसा जो जीत्या न जाय रिपु जो बैरी सो भी सुखका करवावाला मुजन कहिये मित्र

समान होय है, बहुरि हलाहल जो जहर सो भी अमृतसमान
परिवै है, बहुत कहा कहिये महान् बड़ी आपदा भी सं-
पदा होय जाय है ॥ १ ॥

अलियवयणं पि सच्चं उज्जमरहिये वि लच्छिसंपत्ती ।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि ३२

भाषार्थ—धर्मके प्रभावकरि जीवके झूठ वचन भी सत्य
वचन होय हैं, बहुरि उद्यम रहितके भी लक्ष्मीकी प्राप्ति
होय है बहुरि अन्यान्य कार्य भी सुखका करनहारा होय है
भावार्थ—इहां यह अर्थ जानना जो पूर्वे धर्म सेया होय तौ
ताके प्रभावतैं इहां झूठ बोलै सो भी सांची होय जाय, उ-
द्यमविना भी संपत्ति मिलै, अन्याय चालै तौ भी सुखी रहै,
अथवा कोई झूठ वचनका तूदा (वायदा) लगावै तौ धीजमें
(अंतमें) सांचा होय, अन्याय कीया लोक कहै है तौ न्याय-
वालेकी सहाय ही होय ऐसा भी जानना ।

आगे धर्मरहित जीवकी निंदा कहै हैं,—
देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि ।
चक्की वि धम्मरहिओ णिवडइ णरए ण संपदे होदि

भाषार्थ—धर्मकरि रहित जीव हैं सो मिथ्यात्वका वसकरि
देव भी वनस्पतिका जीव एकेन्द्रिय आय होय है, बहुरि
चक्रवर्ती भी धर्मकरि रहित होय तब नरकविष पडै है जातैं
पाप है सो संपदाके अर्थ नाहीं है ।

धम्मविहीणो जीवो कुणइ असज्झं पि साहसं जइवि
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ३४

भाषार्थ—धर्मरहित जीव है सो यद्यपि बड़ा असहवे
योग्य साहस पराक्रम करै तौऊ ताके इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न
होय केवल उलटा अतिसैकरि अनिष्टकूं प्राप्त होय है ।
भावार्थ—पापके उदयतैं भली करतैं बुरा होय है यह जगप्र-
सिद्ध है ॥ ४३४ ॥

इय पच्चक्खं पिच्छिय धम्माहम्माण विविहमाहप्पं ।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरह ३५

भाषार्थ—हे प्राणी हो या प्रकार धर्म अर अघर्मका अ-
नेक प्रकार माहात्म्य प्रत्यक्ष देखिकरि तुम धर्मकूं आदरौ
अर पापकूं दूरहीतैं परिहरौ. भावार्थ—आचार्य दशप्रकार धर्म
का स्वरूप कहिकरि अघर्मका फल दिखाया. अब इहां यह
उपदेश कीया है जो हे प्राणी हौ ! जो प्रत्यक्ष धर्म अघर्मका
फल लोकविषै देखि धर्मकूं आदरौ पापकूं परिहरौ. आचार्य
बड़े उपकारी हैं निष्कारण आपकूं किल्लू चाहिये नाहीं.
निस्पृह भये संते जीवनिके कल्याणहीके अर्थ बारंवार कहि-
करि प्राणीनिकों चेत करावै हैं, ऐसे श्रीगुरु बन्दने पुजने
योग्य हैं. ऐसैं यतिधर्मका व्याख्यान किया ।

दोहा ।

मुनिभावकके भेदतैं, धर्म दीय परकार ।

ताकूं सुनि चितवो सतत, गहि पावौ भवपार ॥ १२ ॥

इति धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

अथ द्वादश तपांसि कथ्यन्ते.

आगे धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिकाकूं कहता संता आचार्य
बारहप्रकार तपके विधानका निरूपण करै है,—

बारसभेओ भाणिओ णिज्जरहेऊ तवो समासेण,
तस्स पयारा एदे भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—तप है सो बारह प्रकार संक्षेपकरि जिनागम-
विषै कहा है. कैसा है? कर्म निर्जराका कारण है तिसके प्र-
कार आगे कहेंगे ते जानने. भावार्थ—निर्जराका कारण
तप है सो बारहप्रकार है. बाह्यके अनशन अवमोदर्य वृत्तिप-
रिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं
छः प्रकार. बहुरि अन्तरंगका प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य
स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार. इनका व्याख्यान
अब करिये हैं तहां प्रथम ही अनशन नाम तपकूं च्यारि
गाथाकरि कहै हैं,—

उवसमणं अक्खाणं उववासो वणिणदो मुणिंदेहि ।

तह्मा भुंजुंता वि यजिदिंदिया होंति उववासा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—मुनीन्द्र हैं तिनिने इन्द्रियनिका उपवास
कहिये विषयनिमें न जानै देना मनकूं अपने आत्मस्वरूप-
विषै लगावणा सो उपवास कहा है. तातैं जितेन्द्रिय हैं ते

आहार करते भी उपवास सहित ही कहिये. भावार्थ—इंद्रियका जीतना सो उपवास सो यतिगण भोजन करते भी उपवासे ही हैं जातैं इंद्रियनिकूं वशीभूतकरि प्रवर्त्तैं हैं ।

जो मणइंद्रियाविजई इहभवपरलोयसोक्खाणिरवेक्खो
अप्पाणे चिय णिवसइ सज्झायपरायणो होदि ॥ ३८ ॥

कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए ।

एगादिणादिपमाणं तस्स तवो अणसणं होदि ॥ ४३९ ॥

भाषार्थ—जो मन इंद्रियनिका जीतनहारा है बहुरि इस भव परभवके विषयमुखनिविषै अपेक्षा रहित है बांछा नाहीं करै है बहुरि अपने आत्मस्वरूप ही विषै बसै है. अथवा स्वाध्यायविषै तत्पर है । बहुरि एक दिनकी मर्यादातैं कर्मनिकी निर्जराके अर्थ क्रीडा कहिये लीलामात्र ही क्लेश रहित हर्षतैं आहारको छोड़ै है ताकै अनशन तप होय है. भावार्थ—उपवासका ऐसा अर्थ है जो इंद्रिय मन विषयनिविषै प्रवृत्तितैं रहित होय आत्मामें बसै सो उपवास है. सो इंद्रियनिका जीतना विषयनिकी इसलोक परलोक सम्बन्धी बांछा न करनी, कै तौ आत्मस्वरूपविषै लीन रहना, कै शास्त्रके अभ्यास स्वाध्यायविषै मन लगावणा ए तौ उपवासविषै प्रधान हैं. बहुरि क्लेश न उपजै जैसैं क्रीडामात्र एक दिनकी मर्यादारूप आहारका त्याग करना ऐसैं उपवास नामा अनशन तप होय है ॥ ४३८—४३९ ॥

उपवासं कुन्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो ।

तस्स किलेसो अवरं कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो उपवास करता संता मोहतें आरंभ गृहकार्यादिकंकू करै है ताकै पहिलै तौ गृहकार्यका क्लेश था ही बहुरि दूसरा भोजन विना जुधा तृष्णाका क्लेश भया ऐसैं होतें क्लेश ही भया कर्मका निर्जरण तौ न भया. भावार्थ—आहारको तौ छोडै अर विषय कषाय आरंभकू न छोडै ताकै आगें तौ क्लेश था ही दूसरा क्लेश भुख तिसका भया ऐसे उपवासमें कर्मकी निर्जरा कैसैं होय ? कर्मकी निर्जरा तौ सर्व क्लेश छोडि साम्यभाव करे होय है. ऐसा जानना ॥ ४४० ॥

आगें अवमोदर्य तपकू दोय गाथाकरि कहै हैं,—

आहारगिद्धिरहिओ चरियामग्गेण पासुगं जोगं ।

अप्पयरं जो भुंजइ अवमोदरियं तवं तस्स ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो तपस्वी आहारकी अन्विहारहित हूवा सूत्रोक्त चर्याका मार्गकरि योग्य पासुक आहार अतिशयकरि अल्प ले, तिसकै अवमोदर्य तप होय है. भावार्थ—मुनि आहारके छियालीस दोष टाले है वत्तीस अंतराय टालै है चौदह मल रहित पासुक योग्य भोजन ले है तौऊ ऊनोदर तप करे, तामें अपने आहारके प्रमाणतैं थोडा ले, एक ग्रासतैं

लगाय बत्तीस ग्रास ताई आहारका प्रमाण कहया है तामें
यथा इच्छा घटती ले सो अवमोदर्यतप है ॥ ४४१ ॥

जो पुण किञ्चिणिमित्तं मायाए मिट्ठुभिक्षलाहट्टं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं तस्स तवं णिप्फलं विदियं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो मुनि कीर्तिके निमित्त तथा माया कपट
करि तथा मिष्ट भोजनके लाभके अर्थ अल्प भोजन करे है
तपका नाम करे है ताकै तो दूसरा अवमोदर्य तप निष्फल
है. भावार्थ— जो ऐसा विचारे अल्प भोजन कियेसूं मेरी
कीर्त्ति होयगी. तब कपटकार लोककों भुलावा दे किछू-
योजन साधनेके निमित्त तथा यह विचारे जो थोडा भोजन
किये भोजन मिष्ट रससहित मिलेगा ऐसे अभिप्रायतैं ऊनो-
दर तप करे तौ ताके निष्फल है. यह तप नाहीं पाखंड है।

आगे वृत्तिपरिसंख्यान तपकों कहै हैं,—

एगादिगिहपमाणं किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।

भोज्जं पसुव्व भुंजइ वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो मुनि आहारकूं उत्तरै तब पहले मनमें ऐसी
मर्याद करि चालै जो आज एक ही घर पहलै मिलेगा तौ आहार
लेवैंगे नातर फिर आवैंगे तथा दोय घर ताई जायंगे ऐसैं
मर्याद करै. तथा एक रस ताकी मर्याद करै तथा देनेवालेकी
मर्याद करै तथा पात्रकी मर्याद करै ऐसा दातार ऐसी री-
ति एसे पात्रमें लेकर देवैगा तौ लेवैंगे. तथा आहारकी

अर्थात्करै सरस तथा नीरस तथा फलाणा अन्न मिलेगा तौ लेवैगे इत्यादि वृत्तिकी संख्या गणना मर्यादा मनमें विचार चालै तैसें ही मिलै तौ लेष अन्यथा न लेय. बहुरि आहार लेय तब पशु गऊ आदिकी ज्यों करै. जैसें गऊ इतउत देखै नाहीं चरनेहीकी तरफ देखै तैसें ले, तिसके वृत्तिपरिसंख्या-जतप है. भावार्थ—भोजनकी आशाका निराप करनेकों यह तप है संकल्प माफिक विधि मिलना दैव योग है यह बड़ा कठिन तप महामुनि करै हैं ॥ ४४३ ॥

आगे रस परित्यागतपकों कहै हैं,—

संसारदुःखतटो विससमविमयं विचिंतमाणो जो ।
नीरसभोज्जं भुंजइ रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो मुनि संसार दुःखसं तप्तायमान हूवा ऐसें विचार करता है जो इन्द्रियनिके विषय हैं ते विष सरीखे हैं विष खाये एकवार मरै है विषय सेये बहुत जन्म मरण होय हैं. ऐसा विचारि नीरस भोजन करै है ताकै रसपरित्याग तप निर्मल होय है. भावार्थ—रस छह प्रकारके हैं घृत तैल दधि मिष्ट लवण दुग्ध ऐसें बहुरि खाटा खाग मीठा कडु-वा तीखा कषायला. ए भी रस कहा है तिनिका जैसें इच्छा होय तैसें त्याग करै. एक ही रस छोडै, दोय रस छोडै तथा सर्व ही छोडै ऐसें रसपरित्याग तप होय है. इहां कोई पूछै रसत्यागकों कोई जाणै नाहीं मनहींमें त्याग करे तौ ऐसें ही वृत्तिपरिसंख्यान है यामें वामें कहा विशेष ?

ताका समाधान, वृत्ति परिसंख्यानमें तौ अनेक रीतिनिकी संख्या हैं इहां रसहीका त्याग हैं यह विशेष है. बहुरि यह भी विशेष जो रसपरित्याग तौ बहुत दिनका भी होय ताकूं आवक जाणि भी जाय अर वृत्तिपरिसंख्यान बहुत दिनका होय नार्ही ॥ ४४४ ॥

आगें विविक्तशय्यासन तपकूं कहै हैं,—
जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्यई ।
अप्पा णिठ्विसय सया तस्स तवो पंचमो परमो ॥

भावार्थ—जो मुनि रागद्वेषके कारण जे आसन अर शय्या इनि आदिकों छोडे बहुरि सदा अपने आत्मस्वरूपविषे बसे अर निर्विषय कहिये इन्द्रियनिके विषयनिहैं विरक्त होय तिम मुनिके पांचपा तप विविक्तशय्यासन उत्कृष्ट होय है. भावार्थ—आसन कहिये बैठनेका स्थान अर शय्या कहिये सोवनेका स्थान, आदि शब्दतैं मलमूत्रादि धेपनेका स्थान, ऐसा हाय जहां रागद्वेष न उपजै अर वीतरागता बधे ऐसा एकान्त स्थानक होय तहां बैठै सोवै. जातैं मुनिकों अपना अपना स्वरूप साधना है इन्द्रियविषय सेवने नार्ही हैं तातैं एकान्त स्थानक कहा है ॥ ४४५ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो संसारसरिरभोगणिव्विण्णो ।
अब्भंतरतवक्कुसलो उवसमसीलो महासंतो ॥ ४४६ ॥
जो णिवसेदि मसाणे वणगहणे णिज्जप्पे महाभीमे ।

अण्णत्थ वि एयंते तस्स वि एदं तवं होदि ॥४४७॥

भाषार्थ—जो महामुनि पूजा आदिविषै तो निरपेक्ष है अपनी पूजा महिमादिक नहीं चाहै है, बहुरि स्वाध्याय ध्यान आदि जे अंतरंग तए तिनिविषै प्रवीण है, ध्यानाध्ययनका निरन्तर अभ्यास राखे है, बहुरि उपशमशील कहिये मंद कषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जाका, बहुरि महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है, ऐसा महामुनि मसाण भूमिविषै तथा गहन वनविषै तथा जहां लोक न प्रवर्तै, ऐसे निर्जनस्थानविषै तथा महाभयानक उद्यानविषै तथा अन्य भी ऐसा एकान्त स्थानविषै जो वैसे ताके निश्चय यह विविक्तशय्यासन तप होय है. भाषार्थ—महामुनि विविक्तशय्यासन तप करै है सो ऐसे एकान्त स्थानकमें सोवे बैठै है जहां चित्तके क्षोभके करनेहारे कछू भी पदार्थ न होय. ऐसे सूने घर गिरिकी गुफा वृक्षके मूल तथा स्वयमेव गृहस्थानिके बणाये उद्यानमें वस्तिकादिक देव मन्दिर तथा मसाणभूमि इत्यादिक एकान्त स्थानक होय तहां ध्यानाध्ययन करै है जातै देहतै तो निर्ममत्व है विषयनितै विरक्त है, अपने आत्मस्वरूपविषै अनुरक्त है सो मुनि विविक्तशय्यासनतपसंयुक्त है ॥ ४४६-४४७ ॥

आगे कायकलेशतपकूं कहै हैं,—

दुस्सहउवसग्गजई आतावणसीयवायखिण्णो वि ।
जो ण वि खेदं गच्छदि कायकिलेसो तवो तस्स ॥

भाषार्थ—जो मुनि दुःसह उपसर्गका जीतनहारा आता-
 य सीत वातकरि पीडित होय खेदकूं प्राप्त न होय, चित्तमें
 क्षोभ क्लेश न उपजै तिस मुनिके कायक्लेश नामा तप होय
 है । भावार्थ—महामुनि ग्रीष्मकालमें तौ पर्वतके शिखर आदि
 विषै जहां सूर्यके किरणनिका अत्यन्त आताप होय तलैं भूमि
 शिलादिक तप्तमान होय तहां आतापनयोग धारे हैं,
 बहुरि शीतकालमें नदी आदिके तटविषै चोडे जहां अति
 शीत पडै दाहतैं वृक्ष भी दाहे जांय तहां खडे रहैं. बहुरि
 चतुर्मासमें वर्षा वरसै प्रचंड पवन चालै दंशमशक काटैं ऐसे
 समय वृक्षके तले योग धारे हैं. तथा अनेक विकट आसन
 करे हैं ऐसैं अनेक कायक्लेशके कारण मिलावे हैं अर सा-
 म्यभावतैं चिगै नाहीं हैं. जातैं अनेक प्रकारके उपसर्गके जी-
 तनहारे हैं तातैं चित्तविषै जिनके खेद नाहीं उपजै है. अपने
 स्वरूपके ध्यानमें लगे रहैं तिनके कायक्लेशनामा तप होय
 है. जिनके काय तथा इंद्रियनिसं ममत्व होय है तिनिके चि-
 त्तमें क्षोभ हो है ए मुनि सर्वतैं निस्पृह बतैं हैं तिनकूं का-
 हेका खेद होय ? ऐसे छहप्रकार बाह्यतपका निरूपण किया,

आगें छहप्रकार अंतरंग तपका व्याख्यान करै हैं तहां
 प्रथम ही प्रायश्चित्तनामा तपकूं कहै हैं,—

दोसं ण करेदि सयं अणं पि ण कारएदि जो ति विहं ।
 कुव्वाणं पि ण इच्छइ तस्स विसोही परो होदि ४४९

भाषार्थ—जो मुनि आप दोष न करै अन्य पास दोष

न-करावै दोष करता होय ताकूं इष्ट भला न जाणै तिसकै
 उत्कृष्ट विशुद्धि होय है. भावार्थ—इहां विशुद्धि नाम प्रायश्चि-
 त्तका है जातैं 'प्रायः' शब्दकरि तौ प्रकृष्ट चारित्रिका ग्रहण
 है ऐसा चारित्र जाके होय सो 'प्रायः' कहिये साधु लोक
 ताका चित्त जिस कार्यविषै होय है सो प्रायश्चित्त कहिये,
 सो आत्माकै विशुद्धि करै सो प्रायश्चित्त है बहुरि दूसरा
 अर्थ ऐसा भी है जो प्रायः नाम अपराधका है ताका चित्त
 कहिये शुद्ध करना सो भी प्रायश्चित्त कहिये. ऐसैं पूर्व कीये
 अपराधतैं जातैं शुद्धता होय सो प्रायश्चित्त है. ऐसैं जो
 मुनि मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष नाहीं ल-
 गावै ताकै उत्कृष्ट विशुद्धता होय. यही प्रायश्चित्त नामा
 तप है ॥ ४४९ ॥

अह कहवि प्रमादेण य दोसो जदि एदि तं पि पयडेदि
 णिहोससाहुमूले दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥ ४५० ॥

भावार्थ—अथवा कोई प्रकार प्रमादकरि अपने चारित्रमें
 दोष आया होय तौ ताकूं निर्दोष जे साधु आचार्य उनके
 निकट दश दोषवर्जित होयकरि प्रकट करै आलोचना करै.
 भावार्थ—अपने चारित्रमें दोष प्रमादकरि लग्या होय तौ

१ यत्याचारोक्तं दशप्रकारं प्रायश्चित्तं ।

२ आलोचनं पण्डिकमणं उभय विवेको तथा विशोऽसंगो ।

अवच्छेदो मूलं, पि य परिहारा चैव सद्वहणं ॥

आचार्य पास जाय दशदोषवर्जित आलोचना करै. ते प्रमा-
द-इन्द्रिय ५ निन्द्रा १ कषाय ४ विक्रया ४ स्नेह १ ये
पांच हैं तिनके पंदरह भेद हैं भंगनिकी अपेक्षा बहुत भेद
होय हैं तिनिकरि दोष लागै है. बहुरि आलोचनाके दश
दोष हैं तिनिके नाम आकंपित १ अनुमानित २ वादर ३
सूक्ष्म ४ दृष्ट ५ प्रच्छन्न ६ अवाकुलित ७ बहुजन ८ अ-
व्यक्त ९ तत्सेवी १० ए दश दोष हैं. तिनिका अर्थ ऐसा
जो आचार्यकूं उपकरणादि देकरि आपकी करुणा उपजाय
आलोचना करै जो ऐसैं कीये प्रयश्चित्त थोडा देसी, ऐसा
विचारै तौ यह आकंपितदोष है. बहुरि वचन ही करि आ-
चार्यनिकी बडाई आदिकरि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा
राखै जो आचार्य मोसूं प्रसन्न रहै तौ प्रायश्चित्त थोडा ब-
तावै, ऐसैं अनुमानित दोष है. बहुरि प्रत्यक्ष दृष्टदोष होय
सो कहै अदृष्ट न कहै सो दृष्टदोष है. बहुरि स्थूल बडा
दोष तौ कहै सूक्ष्म न कहै सो वादरदोष है. बहुरि सूक्ष्म
दोष ही कहै वादर न कहै यह जनावै यानै सूक्ष्म ही कह
दिया सो वादर काहेकूं छिपावै सो सूक्ष्मदोष है. बहुरि
छिपायकरि ही कहै कोई अन्यनै अपना दोष कहा है तब

(१) विक्रहा तहा कषाया इंदिय निद्रा तहेव पणओ य ।

चउ चउ पण मेगेगं होदि प्रमादा हु पणरसा ॥ १ ॥

[२] आकंपिय अनुमानिय जं दिष्ट वादरं च सूक्ष्मं च ।

छण्णं सदाउलियं बहुजनमव्यक्त तत्सेवी ॥ २ ॥

कहै ऐसा ही दोष मोकुं लाग्या है ताका नाम प्रकट न करै सो प्रच्छन्न दोष है. बहुरि बहुत शब्दका कोलाहलविषै दोष कहै अभिप्राय ऐसा कोई और न सुणौ तहां शब्दाकुलित दोष है. बहुरि गुरु पासि आलोचनाकरि फेरि अन्य गुरु-पासि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा जो याका प्रायश्चित्त देखै, अन्य गुरु कहा बतावै, ऐसैं बहुजननामा दोष है. बहुरि जो दोष व्यक्त होय सो कहै अभिप्राय ऐसा—जो यह दोष छिपाया छिपै नहीं कह्या ही चाहिये. सो अव्यक्त दोष है. बहुरि अन्य मुनिने लाग्या दोषकी गुरुपासि आलोचनाकरि प्रायश्चित्त लिया देखकरि तिस समान आपकुं दोष लाग्या होय ताकी आलोचना गुरुपासि न करै आपही प्रायश्चित्त लेवै, अभिप्राय दोष प्रगटकरनेका न होय सो तत्सेवी दोष है. ऐसैं दण्डदोषरहित सरलचित्त होय बालककी ज्यों आलोचना करै ॥ ४५० ॥

जं किंपि तेण दिण्णं तं सत्वं सो करेदि सद्धाए ।

णो पुण हियए संकदि किं थोवं किमु बहुवं वा ४५१

भाषार्थ—दोषकी आलोचना करे पीछैं जो किछू आचार्य प्रायश्चित्त दीया तिस सर्व हीकुं श्रद्धाकरि करै. हृदय-विषै ऐसैं शंका संदेह न करै जो ए प्रायश्चित्त दिया सो थोडा है कि बहुत है. भावार्थ—प्रायश्चित्तके तत्त्वार्थ सूत्रमें नव भेद कहे हैं. आलोचन प्रतिक्रिया तदुभय विवेक व्युत्सर्ग तपश्छेद परिहार उपस्थापना. तहां आलोचना तौ

दोषका यथावत् कहना, प्रतिक्रमण-दोषका मिथ्या करावना, तदुभय-आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ करावना, विवेक-आगामी त्याग करावना, व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग करावना, तप, छेद कहिये दीक्षा छेदन, बहुत दिनके दीक्षितकूं थोड़े दिनका करना, परिहार-संघबाह्य करना, उपस्थापना फेरि नवा सिरतें दीक्षा देना. ऐसैं नव हैं इनिके भी अनेक भेद हैं. तहां देश काल अवस्था सामर्थ्य दूषणका विधान देखि यथाविधि आचार्य प्रायश्चित्त देहैं ताकूं श्रद्धाकरि अंगीकार करै तामें संशय न करै ॥ ४५१ ॥

पुणरवि काउं णेच्छदि तं दोसं जइवि जाइ सयखंडं ।
एवं णिच्चयसाहिदो पायच्छित्तं तवो होदि ॥ ४५२ ॥

भाषार्थ-लाग्यादोषका प्रायश्चित्त लेकर तिस दोषकूं किया न चाहै जो आपके शतखंड भी होय तौ न करै ऐसैं निश्चय सहित प्रायश्चित्त नामा तप होय है. भाषार्थ-ऐसा दिढचित्त करै जो लाग्या दोषकों फेरि अपना शरीर-के शतखंड होय जाय तौऊ सो दोष न लगावै सो प्रायश्चित्त तप है ॥ ४५२ ॥

जो चितइ अप्पाणं णाणसरूवं पुणो पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो पायच्छित्तं वरं तस्स ॥ ४५३ ॥

भाषार्थ-जो ज्ञानी मुनि आत्माकूं ज्ञानस्वरूप फेरि फेरि बारंवार चितवन करै, बहुरि विकथादिक प्रमादनितैं

विरक्त हूवा संता ज्ञानहीकूं निरन्तर सेवै, ताकें श्रेष्ठप्रायश्चित्त होय. भावार्थ—निश्चय प्रायश्चित्त यह है जामें सर्वप्रायश्चित्तके भेद गर्भित हैं जो प्रमादतैं रहित होय अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्माका ध्यान करना यातैं सर्व पापनिका प्रलय होय है ऐसैं प्रायश्चित्तनामा अभ्यन्तर तपका भेद कह्या ॥ ४५३ ॥

आगें विनय तपकों गाथा तीनिकरि कहै हैं,—

विणयो पंचपयारो दंसणणाणे तहा चरित्ते य ।

वारसभेयम्मि तवे उवयारो बहुविहो णेओ ॥ ४५४ ॥

भाषार्थ—विनय पांच प्रकार है दर्शनविषै ज्ञानविषै तथा चारित्रविषै बारह भेदरूप तपविषै अर उपचार विनय सो यह बहुत प्रकार जानना ॥ ४५४ ॥

दंसणणाणचरित्ते सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।

वारसभेदे वि तवे सो च्चिय विणओ हवे तेसैं ४५५

भाषार्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र इनिविषै बहुरि बारहभेदरूप तपकेविषै जो विशुद्ध परिणाम होय सो ही तिनिका विनय है. भावार्थ—सम्यग्दर्शनके शंकादिक अतीचार रहित परिणाम सो दर्शनका विनय है. बहुरि ज्ञानका संशयादिरहित परिणाम अष्टांग अभ्यास करना सो ज्ञानविनय है. बहुरि चारित्रकों अहिंसादिक परिणामकरि अतीचाररहित पालना सो चारित्रका विनय है. बहुरि तैसैं ही तपके भेद-

निकों निरखि देखि निर्दोष पालने सो तपका विनय है ४५५
रयणत्तयजुत्ताणं अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए ।

भिच्चो जह रायाणं उवयारो सो हवे विणओ ४५६

भाषार्थ—जो रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका धारक मुनिनिके अनुकूल भक्तिकरि आचरण करै जैसे राजाके चाकर राजाके अनुकूल प्रवर्त्तै हैं तैसे साधुनिके अनुकूल प्रवर्त्तै सो उपचार विनय है। भावार्थ—जैसे राजाके चाकर किंकर लोक राजाके अनुकूल प्रवर्त्तै हैं, ताकी आज्ञा मानै, हुकम होय सो करै तथा प्रत्यक्ष देखि उठि खड़ा होय, सन्मुख होय, हाथहू जोड़ै, प्रणाम करै, चालै तब पीछै होय चालै, ताके पोसाख आदि उपकरण संवारै, तैसे ही मुनिनिकी भक्ति मुनिनिका विनय करै तिनकी आज्ञा मानै प्रत्यक्ष देखै तब उठि सन्मुख होय हाथ जोड़ै प्रणाम करै चालै तब पीछै होय चालै उपकरण संवारै इत्यादिक तिनका विनय करै सो उपचार विनय है ॥ ४५६ ॥

आगे वैराट्य तपकों दोय गाथाकरि कहै हैं,—

जो उवयरदि जदीणं उवसग्गजराइखीणकायाणं ।

पूजादिसु णिरवेक्खं विज्जावच्चं तवो तस्स ॥ ४५७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि यति उपसर्गकरि पीडित होय तिनिका तथा जरा रोगादिककरि क्षीणकाय होय तिनिका अपनी चेष्टातैं तथा उपदेशतैं तथा अल्प वस्तुतैं उपकार करै

ताकै वैयावृत्य नामा तप होय है. सो कैसें करै आप अपने पूजा महिमा आदिविषै अपेक्षा बांछातैं रहित जैसें होय तैसें करै. भावार्थ—निस्पृह हूवा मुनिनिकी चाकरी करै सो वैयावृत्य है. तहां आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दश प्रकारके यति वैयावृत्य करने योग्य कहे हैं. तिनिका यथायोग्य अपनी शक्तिसारुं वैयावृत्य करै ॥ ४५७ ॥

जो वावरइसरूवे समदमभावाम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।

लोयववहारविरदो विज्जावच्चं परं तस्स ॥ ४५८ ॥

भाषार्थ—जो मुनि समदमभावरूप जो अपना आत्मस्वरूप ताके विषै शुद्ध उपयोगकरि युक्त हूवा प्रवर्त्तैं अर लोकव्यवहार बाह्य वैयावृत्यसं विरक्त होय, ताकै उत्कृष्ट निश्चय वैयावृत्य होय है. भावार्थ—जो मुनि सम कहिये राग द्वेष रहित साम्यभाव, बहुरि दम कहिये इन्द्रियनिकों विषयनिविषै न जानै देना, ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप ताविषै लीन होय, ताकै लोकव्यवहाररूप बाह्य वैयावृत्य काहेकों होय ? ताकै निश्चय वैयावृत्य ही होय है. शुद्धोपयोगी मुनिनिकी यह रीति है ॥ ४५८ ॥

आगें स्वाध्याय तपकों छह गाथानिकरि कहै हैं,—
परतत्तीणिरवेक्खो दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्चयहेट्ठ सज्झाओ ज्झाणासिद्धियरो ॥४५९॥

भाषार्थ—जो मुनि परकी निन्दाविषै निरपेक्ष होय बां-

छारहित होय है. बहुरि दुष्ट जे मनके खोटे विकल्प ति-
निके नाश करनेकूं समर्थ होय ताके तत्त्वके निश्चय कर-
नेका कारण अर ध्यानकी सिद्धि करनेवाला स्वाध्यायनामा
तप होय है. भावार्थ—जो परकी निंदा करनेविषै परिणाम
राखै अर आर्त्तौद्रघ्यानरूप खोटे विकल्प मनमें चितवन
कीया करै ताके शास्त्रनिका अभ्यासरूप स्वाध्याय कैसें होय
तातैं तिनिकों छोडि स्वाध्याय करै ताके तत्त्वका निश्चय
होय अर धर्मशुद्धध्यानकी सिद्धि होय, ऐसा स्वाध्याय
तप है ॥ ४५६ ॥

पूजादिसु णिवेक्खो जिणसत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥ ४६० ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपनी अपनी पूजा महिमा आदि-
विषै तौ निरपेक्ष होय, बांछारहित होय अर भक्तिकरि जि-
नशास्त्र पढै, बहुरि कर्मफलके सोधनेके अर्थ पढै ताके श्रु-
तका लाभ सुखकारी होय. भावार्थ—जो पूजा महिमा आ-
दिके अर्थ शास्त्रकूं पढै है ताके शास्त्रका पढना सुखकारी
नाहीं. अपने कर्मक्षयके निमित्त जिनशास्त्रनिहीकों पढै ताके
सुखकारी है ॥ ४६० ॥

जो जिणसत्थं सेवइ पंडियमानी फलं समीहंतो ।
साहाम्भियपाडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स ४६१

भाषार्थ—जो पुरुष जिनशास्त्र तौ पढै है अर आपके

पूजा लाभ सत्कारकूं चाहै है अर साधर्मी सम्यग्दृष्टी जैनी जननितैं प्रतिकूल है सो पंडितंमन्य है. पंडित तौ नार्ही अर आपकूं पंडित मानै ताकूं पंडितंमन्य कहिये सो ऐसाकै सो ही शास्त्र विषरूप परिणामै है. भावार्थ—जैनशास्त्र भी पढि-करि तीव्रकषायी भोगाभिलाषी होय जैनीनितैं प्रतिकूल रहै सो ऐसा पंडितंमन्यके शास्त्र ही विष भया कहिये. जो यह मुनि भी होय तौ भेषी पाषंडी ही कहिये ॥ ४६१ ॥

जो जुद्धकामसत्थं रायदोसेहिं परिणदो पढइ ।

लोयावंचणहेदुं सज्झाओ णिप्फलो तस्स ॥ ४६२ ॥

भावार्थ—जो पुरुष युद्धके शास्त्र कामकथाके शास्त्र रा-गद्वेष परिणामकरि लोकनिकों ठगनेके अर्थ पढै है ताके स्वा-ध्याय निष्फल है. भावार्थ—जो पुरुष युद्धके, कामकौतूह-लके, मंत्र ज्योतिष वैद्यक आदि लौकिक शास्त्र लोकनिके ठगनेकूं पढै है, ताकैं काहेका स्वाध्याय है. इहां कोई पूछै मुनि अर पंडित तौ सर्व ही शास्त्र पढै हैं ते काहेकों पढै हैं. ताका समाधान—रागद्वेषकरि अपने विषय आजीविका पोष-नेकं लोकनिके ठगनेकों पढै ताका निषेध है. बहुरि जो ध-र्मार्थी हूवा कछू प्रयोजन जानि इनि शास्त्रनिकों पढै, ज्ञान बढ़ावना, परका उपकार करना, पुण्यपापका विशेष निर्णय करना, स्वपर मतकी चरचा जानना, पंडित होय तो धर्मकी प्रभावना हो, जो जैन मतमें ऐसे पंडित हैं इत्यादिक प्रयो-

जन है. दुष्ट अभिप्रायतैं पढ़ै तौका निषेध है ॥ ४६२ ॥

जो अप्पाणं जाणदि असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं ।

जाणगरूवसरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥ ४६३ ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपने आत्माकों इस अपवित्र शरीरतैं भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जाणै सो सर्व शास्त्र जाणै. भावार्थ—जो मुनि शास्त्र अभ्यास अल्प भी करै है अरु अपना आत्माका रूप ज्ञायक देखन जाननद्वारा इस अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्ध उपयोगरूप होय जाणै है, सो सर्व ही शास्त्र जानै है. अपना स्वरूप न जान्या अरु बहुत शास्त्र पढ़े तौ कहा साध्य है ? ॥ ४६३ ॥

जो ण विजाणदि अप्पं णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं ।

सो ण विजाणदि सत्थं आगमपाठं कुणंतो वि ४६४

भाषार्थ—जो मुनि अपने आत्माकों ज्ञानस्वरूप शरीरतैं भिन्न नहीं जानै है सो आगमका पाठ करै तौज शास्त्र को नहीं जानै है. भावार्थ—जो मुनि शरीरतैं भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्माकों नहीं जानै है सो बहुत शास्त्र पढ़ै है तौज बिना पढ़्या ही है. शास्त्रके पढ़नेका सार तौ अपना स्वरूप जानि रागद्वेषरहित होना या सो पढ़िकरि भी ऐसन भया तो काहेका पढ़्या ? अपना स्वरूप जानि ताविषै स्थिरहीना सो निश्चयस्वाध्यायतप है. वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आभ्यास धर्मोपदेश ऐसैं पांचप्रकार व्यवहारस्वाध्याय है सो

यह व्यवहार निश्चयके अर्थ होय सो व्यवहार भी सत्यार्थ है विना निश्चय व्यवहार थोथा है ॥ ४६४ ॥

आगे व्युत्सर्ग तपकों कहै हैं,—

जल्लमललित्तगत्तो दुस्सहवाहीसु णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणादिविरओ भोयणसेज्जादिणिरवेक्खो ६५
ससरूवचित्तरओ दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो ।
देहे वि णिम्ममत्तो काओसग्गो तवो तस्स ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—जो मुनि जल्ल कहिये पसेव अर मल तिनि-
करि तौ लिप्त शरीर होय, बहुरि सहा न जाय ऐसा भी
तीव्र रोग आवै, ताका प्रतीकार न करै इलाज न करै, मु-
खका धोवणा आदि शरीरका संस्कार न करै भोजन अर
सेज्या आदिकी बांछा न करै, बहुरि अपने स्वरूप चित-
वनविषै रत होय, लीन होय, बहुरि दुर्जन सज्जनविषै म-
ध्यस्थ होय, शत्रु मित्र वरावर जानै, बहुत कहा कहिये दे-
हविषै भी मत्सररहित होय, ताकै कायोत्सर्ग नामा तप होय
है। मुनि कायोत्सर्ग करै है, तब सर्व बाह्य अभ्यंतर परिग्रह
त्यागकरि सर्व बाह्य आहारविहारादिक क्रियासं रहित होय
कायसं ममत्व छांड़ि अपना ज्ञानस्वरूप आत्माविषै रागद्वेषर-
हित शुद्धोपयोगरूप होय लीन होय है, तिस काल जो अ-
नेक उपसर्ग आवो, रोग आवो, कोई शरीरकों काटि ही
दारौ, स्वरूपतैं चिगै नाहीं, काहूतैं रागद्वेष नाहीं उपजावै
है ताकै कायोत्सर्ग तप होय है ॥ ४६५-४६६ ॥

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो ।

वाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि देहके पालनेविषे तत्पर होय, उपकरण आदिकविषे विशेष संसक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषे रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहैतैं होय ? भावार्थ—जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकों लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामें तत्पर होय अर देहका अहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष संवारना शिष्य जनादिकतैं बहुत ममता राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमें लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामें कबहुं लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तौ खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तौ ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है ॥ ४६७ ॥

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।

ज्झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ६८

भाषार्थ—जो मनसंबंधी ज्ञान वस्तुविषे अंतर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषे ध्यान कहा है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसैं दोय प्रकार कह्या है. भावार्थ—ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमें अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसैं दोय प्रकार है ॥ ४६८ ॥

आगे शुभ अशुभध्यानके नाम स्वरूप कहै हैं,—
 असुहं अदृ रउहं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि ।
 आदं तिठ्वकसायं तिठ्वतमकसायदो रुहं ॥ ६६९ ॥

भाषार्थ—आर्चध्यान रौद्रध्यान ए दोऊ तौ अशुभध्यान
 हैं बहुरि धर्मध्यान अर शुक्रध्यान ए दोऊ शुभ अर शुभतर
 हैं तिनिमें आदि का आर्चध्यान तौ तीव्र कषायतैं होय है अर
 रौद्रध्यान अति तीव्र कषायतैं होय है ॥ ४६९ ॥

मंदकसयिं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं ।
 अकसाए वि सुयट्ठे केवलणाणे वि तं होदि ॥ ४७० ॥

भाषार्थ—धर्म ध्यान है सो मंदकषायतैं होय है. बहुरि
 शुक्रध्यान है सो अतिशयकरि मंदकषायतैं होय महामुनि
 श्रेणी चढै तिनि के होय है. अर कषायका अभाव भये शु-
 तज्ञानी उपशान्तकषाय क्षीणकषाय तथा केवलज्ञानी सयोगी
 अयोगी जिनकैं भी कहिये है. भावार्थ—धर्मध्यान तौ व्यक्त-
 रागसहित पंच परमेष्ठी तथा दशलक्षणस्वरूप धर्म तथा आ-
 त्मस्वरूपविषै उपयोग एकाग्र होय है तातैं याकूं मन्दकषाय
 सहित है ऐसा कहा है. बहुरि शुक्लध्यान है सो उपयोगमें
 व्यक्तराग तौ नाहीं अर अपने अनुभवमें न आवै ऐसा सू-
 क्ष्मराग सहित श्रेणी चढै है तहां आत्मपरिणाम उज्ज्वल होय
 हैं यातैं शुचि गुणके योगतैं शुक्ल कह्या है. ताकूं मन्दतम-
 कषाय कहिये अतिशय मंदकषायतैं होय है ऐसा कहा है
 तथा कषायके अभाव भये भी कह्या है ॥ ४७० ॥

आगे आर्त्तध्यानकूं कहै हैं,—

दुःखयरविसयजोए केण इमं चयदि इदि विचिंतंतो ।
चेट्टदि जो विक्खित्तो अट्टं ज्ञाणं हवे तस्स ॥ ४७१ ॥
मणहरविसयविजोगे कह तं पावेमि इदि वियप्पो जो ।
संतावेण पयट्ठो सो चिय अट्टं हवे ज्ञाणं ॥ ४७२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष दुःखकारी विषयका संयोग होते ऐसा चिंतवन करै जो यह मेरे कैसे दूर होय ? बहुरि तिमके संयोगतैं विक्षिप्तचित्त भया संता चेष्टा करै, रुदनादिक करै तिसके आर्त्तध्यान होय है. बहुरि जो मनोहर प्यारी विषय सामग्रीका वियोग होतैं ऐसा चिंतवन करे जो ताहि मैं कैसे पाऊं, ताके वियोगतैं संतापरूप दुःखस्वरूप प्रवर्त्तै, सो भी आर्त्तध्यान है. भावार्थ—आर्त्तध्यान सामान्य तौ दुःखक्लेश रूप परिणाम है. तिस दुःखमें लीन रहै अन्य किछू चेत रहै नाहीं ताकूं दोय प्रकारकरि कखा. प्रथम तौ दुःखकारी सामग्रीका संयोग होय ताकूं दूर करनेका ध्यान रहै. दूसरा इष्ट सुखकारी सामग्रीका वियोग होय ताके मिलावनेका चिंतवन ध्यान रहै सो आर्त्तध्यान है. अन्य ग्रंथनिमें चारि भेद कहे हैं—इष्टवियोगका चिंतवन, अनिष्टसंयोगका चिंतवन, पीडाका चिंतवन, निदानबंधका चिंतवन. सो इहां दोय कहे तिनिमें ही अंतर्भाव भये. अनिष्टसंयोगके दूर करनेमें तौ पीडा चिंतवन आय गया, अर इष्टके मिलावनेकी बांछा

में निदानबंध आयगया. ये दोऊ ध्यान अशुभ हैं पापबंधक
करै हैं धर्मात्मा पुरुषनिके त्यजने योग्य हैं ॥ ४७२ ॥

आगे रौद्रध्यानकों कहैं हैं,—

हिसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु ।

तत्थेव अथिरचित्तो रुदं ज्ञाणं हवे तस्स ॥ ४७३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष हिंसाविषै आनन्दकरि संयुक्त होय.
बहुरि असत्य वचन करि परिणमता रहै तहां ही वित्तिस-
चित्त रहै तिसकै रौद्रध्यान होय है. भावार्थ—हिंसा जो जी-
वनिका घात तिसकों करि अति हर्ष मानै, शिकार आ-
दिमें आनन्दतैं प्रवृत्त, परके विघ्न होय, तब अति संतुष्ट होय
बहुरि झूठ बोलि करि अपना प्रवीणपणा मानै, परके दोष-
निकों निरन्तर देखै, कहै तामें आनंद मानै ऐसैं ए दोय भेद
रौद्रध्यानके कहे ॥ ४७३ ॥

आगे दोय भेद और कहैं हैं,—

पराविसयहरणसीलो सगीयाविसयेसु रक्खणे दक्खो ।

तग्गयचित्ताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुदं पि ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी विषय सामग्रीकूं हरणोका स्व-
भावसहित होय, बहुरि अपनी विषय सामग्रीकी रक्षा कर-
णोविषै प्रवीण होय, तनि दोऊ कार्यनिविषै लीनचित्त नि-
रन्तर राखै, तिस पुरुषकै यह भी रौद्रध्यान ही है. भावार्थ,
परकी सम्पदाकों चोरनेविषै प्रवीण होय चोरीकरि हर्ष मानै

बहुति अपनी विषय सान्निध्य राखने का अति यत्न करे ताकी रक्षाकरि आनन्द मानै ऐसै ये दोष भेद रौद्रध्यानके भये. ऐसै ये चारौ भेदरूप रौद्रध्यान अतितीव्र कषावके योगतैं होय हैं, महापाप रूप हैं. महापापबन्धकूं कारण हैं. सो धर्मात्मा पुरुष ऐसे ध्यानकों दूरिहीतैं छोड़ै हैं. जेतै जगतकों उपद्रवके कारण हैं तेते रौद्रध्यानयुक्त पुरुषतैं वणै है. जातैं पापकरि हर्षमानै सुख मानै ताको धर्मका उपदेश भी नाहीं लागै है. अति प्रमादी हूवा अचेत पापहीमें मस्त रहै है ॥ ४७४ ॥

आगे धर्मध्यानकूं कहै हैं,—

विणिगि वि असुहे ज्ञाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे ।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणहु ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो ! आर्त्त रौद्र ये दोऊ ही ध्यान अशुभ हैं पापके निधान दुःखके संतान जाणिकरि दूरिहीतैं छोड़ौ, बहुति धर्मध्यानविषे आदर करौ. भावार्थ—आर्त्त रौद्र दोऊ ही ध्यान अशुभ हैं अर पापके भरे हैं अर दुःखहीकी संतति इनिमें चली जाय है. तातैं छोड़िकरि धर्मध्यान करनेका श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ ४७५ ॥

आगे धर्मका स्वरूप कहै हैं,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसाविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—वस्तुका स्वभाव सो धर्म है. जैसे जीवका द-

र्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यस्वभाव सो याका एही धर्म है. बहुरि क्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म हैं. बहुरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र सो धर्म है. बहुरि जीवनिकी रक्षा करना सो भी धर्म है. भावार्थ—अभेदविवक्षाकरि तौ वस्तुका स्वभाव सो धर्म है जीवका चैतन्य स्वभाव सो ही याका धर्म है. बहुरि भेद विवक्षाकरि दशलक्षणा उत्तम क्षमादिक तथा रत्नत्रयादिक धर्म है. बहुरि निश्चयतैं तौ अपने चैतन्यकी रक्षा विभावपरिणतिरूप न परिणमना अर व्यवहारकरि पर-जीवकों विभावरूप दुःख क्लेशरूप न करना ताहीका भेद जीवकों प्राणांत न करना यह धर्म है ॥ ४७६ ॥

आगें धर्मध्यान कैसे जीवकें होय सो कहै हैं,—

धम्म एयग्गमणो जो ण हि वेदेइ इंदियं विसयं ।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥ ७७ ॥

भावार्थ—जो पुरुष ज्ञानी धर्मविषै एकाग्रमन होय वक्तैं, बहुरि इन्द्रियनिके विषयनिकों न वेदै. बहुरि वैराग्यमयी होय, तिस ज्ञानीकै धर्मध्यान होय है. भावार्थ—ध्यानका स्वरूप एक ज्ञेयकेविषै ज्ञानका एकाग्र होना है. जो पुरुष धर्मविषै एकाग्रचित्त करै तिस काल इन्द्रिय विषयनिकों न वेदै ताकै धर्मध्यान होय है. याका मूलकारण संसारदेहभोगसं वैराग्य है विना वैराग्यके धर्ममें चित्त थंभै नाहीं ॥७७॥

सुविसुद्धरायदोसो वाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो ।

एयरगमणो संतो जं चित्तइ तं पि सुहज्झाणं ॥७८॥

भाषार्थ—जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित हूवा संता बाह्यके संकल्पकरि वर्जित हूवा धीरचित्त एकाग्रमन हूवा सन्ता जो चितवन करै सो भी शुभध्यान है। भावार्थ—जो रागद्वेषमयी वा वस्तुसंबन्धी संकल्प छोड़ि एकाग्रचित्त होय काहूका चलाया न चलै ऐसा होय चितवन करै सो भी शुभ ध्यान है ॥ ४७८ ॥

ससरूवसमुब्भासो णट्टममत्तो जिदिंदिओ संतो ।

अप्पाणं चितंतो सुहज्झाणरओ हवे साहू ॥ ७९ ॥

भाषार्थ—जो साधु अपने स्वरूपका है समुद्भास कहिये प्रगट होना जाकै ऐसा हूवा संता, तथा परद्रव्यविषै नष्ट भया है ममत्व भाव जाकै ऐसा हूवा संता, तथा जीते हैं इन्द्रिय जानै, ऐसा हूवा संता आत्माको चितवन करता सन्ता प्रवर्त्तै सो साधु शुभध्यानकेविषै लीन होय है। भावार्थ—जाकै अपना स्वरूपका तौ प्रतिभास भया होय अर परद्रव्यविषै ममत्व न करै अर इन्द्रियनिकों वश करै ऐसैं आत्माका चितवन करै सो साधु शुभ ध्यानविषै लीन होय है, अन्यके शुभध्यान न होय है ॥ ४७९ ॥

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मणं णिरुंभित्ता ।

जं चित्तइ साणंदं तं धम्मं उत्तमं ज्ञाणं ॥ ४८० ॥

भाषार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिकूं वर्जकरि आत्म-

स्वरूपविषै मनकूं रोककरि आनंदसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है। भावार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिसं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकूं थांभनेतैं आनन्दरूप चिन्तवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है। इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिके अनुसार विशेष कथन किया है। ताकौं संक्षेपकरि लिखिये है—तहां धर्मध्यानके चारि भेद कहे हैं। आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं। तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपानी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देने कहा है सो हमारै प्रमाण है ऐसैं आज्ञा मानि ताके अनुसार पदार्थनिमैं उपयोग थांभै * सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १. बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसैं कर्मनिका नाश होय तैसैं चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै—अपने न होनेका चितवन करै परके भेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २. बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३. बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४. बहुरि दशप्रकार भी कह्या है—अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय

हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय. ऐसैं इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पदस्थ पिण्डस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसैं च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहां पद तो अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिंकू प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहां तिस अक्षरमें एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये । तहां नमोकार मन्त्रके पैतीस अक्षर हैं ते पसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप सोलह अक्षर हैं “अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साँहू” ऐसैं सोलह अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप ‘अरहंत सिद्ध’ ऐसे छह अक्षर हैं बहुरि इसहीका संक्षेप “अ सि आ उ सा ” ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि “अरहंत” ए च्यारि अक्षर हैं. बहुरि “सिद्ध” अथवा “अहं” ऐसैं दोय अक्षर हैं बहुरि “ॐ” ऐसा एक अक्षर है. यामें पंचपरमेष्ठीका आदि

* सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।

आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥

१ पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनं ।

रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरंजनं ॥

[२] अहंस्तिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।

[३] जमो अरहंताणं जमो सिद्धाणं जमो आइरीयाणं ।

जमो उवज्झायाणं जमो लोप सव्वसाङ्गणं ॥ १ ॥

अक्षर सर्व हैं. अक्षरहंतका अकार अक्षरीर जे सिद्ध तिनिका अकार आचार्यका आकार उपाध्यायका उकार मुनिका मकार ऐसैं पांच अक्षर अ+अ+आ+उ+म्=“ओम्” ऐसा सिद्ध होय है. ऐसैं ए मंत्रवाक्य हैं सो इनिका उच्चारणरूप-करि मनविषै चितवनरूप ध्यान करै. तथा इनिका वाच्य अर्थ जो परमेष्ठी तिनिका अनन्तज्ञानादिरूप स्वरूप विचारि ध्यान करना, बहुरि अन्य भी बारह हजार श्लोकरूप नमस्कार ग्रन्थ हैं ताके अनुसार तथालघुवृद्धत्सिद्धचक्र प्रतिष्ठा ग्रंथनिमें मन्त्र कहे हैं तिनिका ध्यान करना, मन्त्रनिका के-ताइक कथन संस्कृत टीकामें है सो तहांतैं जानना. इहां संक्षेप लिख्या है. ऐसैं पदस्थध्यान है. बहुरि पिंड नाम शरीरका है तिसविषै पुरुषाकार अमूर्त्तिक अनन्तचतुष्टयकरि संयुक्त जैसा परमात्माका स्वरूप तैसा आत्माका चितवन करना सो पिंडस्थध्यान है. बहुरि रूप कहिये अक्षरहंतका रूप समवसरणविषै धातिकर्परहित चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्यकरि सहित अनन्तचतुष्टयमंडित इन्द्र आदिकरि पूज्य परम औदारिक शरीरकरि युक्त ऐसा अक्षरहंतकूं ध्यावै तथा ऐसा ही संकल्प अपने आत्माका करि आपकूं ध्यावै सो रूपस्थ ध्यान है. बहुरि देहविना बाह्यके अतिशयादिकविना अपना परका ध्याता ध्यान ध्येयका भेदविना सर्व विकल्प-

[४] अक्षरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्जया मुणिणो ।

पढमस्वरणिप्पणो ओंकारो पंचपरमेद्धो ॥ १ ॥

रहित परमात्मस्वरूपविषै लयकूं प्राप्त होय सो रूपातीत ध्यान है. ऐसा ध्यान सातवें गुणस्थान होय तब श्रेणीकों पाई यह ध्यान व्यक्तरागसहित चतुर्थ गुणस्थानतें लगाय सातवां गुणस्थान ताई अनेक भेदरूप प्रवर्त्तै है ॥ ४८० ॥

आगे शुक्लध्यानकों पांच गाथाकरि कहैं हैं,—

जत्थ गुणा सुविसुद्धा उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं ।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे ज्ञाणं ॥४८१॥

भाषार्थ—जहां भले प्रकार विशुद्ध व्यक्त कषायनिके अमुभवरहित उज्जल गुण कहिये ज्ञानोपयोग आदि होय, बहुरि कर्मनिका जहां उपशम तथा क्षय होय, बहुरि जहां लेश्या भी शुक्ल ही होय, तिसकों शुक्लध्यान कहिये है.

भावार्थ—यह सापान्य शुक्लध्यानका स्वरूप कहा विशेष आगे कहैं हैं. बहुरि कर्मके उपशमनका अर क्षपणका विधान अन्य ग्रन्थनितैं टीकाकार लिख्या है सो आगे लिखियेगा ।

आगे विशेष भेदनिकूं कहैं हैं,—

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए ।
पढमं सुक्कं ज्ञायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥ ४८२ ॥

भाषार्थ—उपशमक अर क्षपक इनि दोऊ श्रेणीनिविषै आरूढ हूवा संता समय समय अनंतगुणी विशुद्धता कर्मका उपशमरूप तथा क्षयरूपकरि शुद्ध होता संता मुनि प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा ध्यावै है. भावार्थ—यहलैं

मिथ्यात्व तीन, कषाय अनंतानुबंधी च्यारि प्रकृतिनिका उपशम तथा सय करि सम्यग्दृष्टी होय. पीछै अप्रमत्त गुणस्थानविषै सातिशय विशुद्धतासहित होय श्रेणीका प्रारम्भ करै, तब अपूर्वकरण गुणस्थान होय शुक्लध्यानका पहला पाया प्रवर्तै, तहां जो मोहकी प्रकृतिनिकूं उपशमावनेका प्रारंभ करै तौ अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय इनि तीनों गुणस्थानविषै समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बद्धमान होता संता मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतिनिकूं उपशमकरि उपशान्त कषाय गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. अर कै मोहकी प्रकृतिनिकूं क्षपावनेका प्रारंभ करै तौ तीनू गुणस्थानविषै इकईस मोहकी प्रकृतिनिका सत्तामेंसूं नाशकरि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. ऐसैं शुक्लध्यानका पहला पाया पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा प्रवर्तै है. तहां पृथक् कहिये न्यारा न्यारा वितर्क कहिये श्रुतज्ञानके अक्षर अर अर्थ अर वीचार कहिये अर्थका व्यंजन कहिये अक्षररूप वस्तुका नामका अर मन वचन कायके योग इनिका पलटना सो इस पहले शुक्लध्यानमें होय है. तहां अर्थ तौ द्रव्य गुणपर्याय है सो पलटै, द्रव्यसूं द्रव्यान्तर गुणसूं गुणान्तर पर्यायसूं पर्यायान्तर. बहुरि तैसैं ही ब्रह्मसूं वर्णान्तर बहुरि तैसैं ही योगसूं योगान्तर है।

इहां कोई पूछै—ध्यान तौ एकाग्रचित्तानिरोध है पलटने कूं ध्यान कैसैं कहिये ? ताका समाधान—जो जेतीवार एक

परि थंभे सो तौ ध्यान भया पलटया तब दूसरे परि थंभया
 सो भी ध्यान भया ऐसैं ध्यानके संतानकं भी ध्यान कहिये ।
 इहां संतानकी जाति एक है ताकी अपेक्षा लेणी. बहुरि उ-
 पयोग पलटै सो इसके ध्याताकै पलटावनेकी इच्छा नाहीं है
 जो इच्छा होय तौ रागसहित यह भी धर्म ध्यान ही ठहरै.
 इहां रागका अव्यक्त भया सो केवलज्ञानगम्य है ध्याताके
 ज्ञान गम्य नाहीं. आप शुद्ध उपयोगरूप हूवा पलटनेका भी
 ज्ञाता ही है. पलटना सयोपशम ज्ञानका स्वभाव है सो यह
 उपयोग बहुत काल एकाग्र रहै नाहीं याकूं शुक्ल ऐसा नाम
 रागके अव्यक्त होनेहीतें कहा है ॥ ४८२ ॥

आगें दूजा भेद कहैं हैं,—

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले ।
 ससरूवभिमि णिलीणो सुक्कं ज्ञायेदि एयत्तं ४८३

भाषार्थ—आत्मा समस्त मोहकर्मका नाश भये क्षीण-
 कषाय गुणस्थानका अंतके कालविषे अपने स्वरूपविषे लीन
 हूवा संता एकत्ववितर्कवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानको
 ध्यावै है. भावार्थ—पहले पायेमें उपयोग पलटै या सो पलट-
 ता रहगया एक द्रव्य तथा पर्यायपरि तथा एक व्यंजनपरि
 तथा एक योगपरि थंभि भया, अपने स्वरूपमें लीन है ही,
 अब घातिकर्मका नाशकरि उपयोग पलटैगा सो सर्वका प्र-
 त्यक्ष ज्ञाता होय लोकालोकको जानना यह ही पलटना
 रखा है ॥ ४८३ ॥

आगे तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए ।

जं ज्ञायदि सजोगजिणो तं तदियं सुहमकिरियं च ॥

भाषार्थ—केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमें तिष्ठै तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्ल ध्यान है. भावार्थ—जब धातिकर्मका नाशकरि केवल उपजै, तब तेरहवां गुण-स्थानवर्त्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमें अंतर्मुहूर्त्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है. सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमें अन्तर्मुहूर्त्त ठहरना कहा है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थंभनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थंभ ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा फलदावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमें रमि रहे हैं. जेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषै इष्ट अनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्त्तै है ॥ ४८४ ॥

आगे चौथा भेद कहै हैं,—

ओगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।

जं ज्ञायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च

भाषार्थ—केवली भगवान् योगनिकी प्रवृत्तिका अभाव-
करि जब अयोगी जिन होय हैं तब अघातियाकी प्रकृति
सत्तामें पिच्यासी रहीं हैं तिनिका क्षय करनेके अर्थ जो
ध्यावै है सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामा शुक्लध्यान
होय है. भावार्थ—चौदहवां गुणस्थान अयोगीजिन है तहां
स्थिति पंचलघु अक्षरप्रमाण है. तहां योगनिकी प्रवृत्तिका अ-
भाव है सो सत्तामें अघातिकर्मकी पिच्यासी प्रकृति हैं ति-
निके नाशका कारण यह योगनिका रुकना है तातैं इसकों
ध्यान कह्या है. सो तेरहवां गुणस्थानकी ज्यों इहां भी
ध्यानका उपचार जानना. किछू इच्छापूर्वक उपयोगका
यांभनेरूप ध्यान है नाहीं, इहां कर्म प्रकृतिनिके नाम तथा
और भा विशेष कथन अन्यग्रंथनिके अनुसार हैं सो संस्कृत-
दीकातैं जानना, ऐसैं ध्यान तपका स्वरूप कहा ॥ ४८५ ॥

आगें तपके कथनकों संकोचै हैं,—

एसो वारसमेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो ।

सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहई ॥४८६॥

भाषार्थ—यह बारह प्रकारका तप कहा जो मुनि इनि-
विषे उपयोग लगाय उग्र तीव्र तपकों आचरण करै है सो
मुनि मुक्तिके सुखकों पावै है. कैसा है मुक्तिसुख खेपे हैं
कर्मके पुंज जानैं बहुरि असय है. अविनाशी है. भावार्थ—तप-

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्यो जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी बाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणानिके धारक ते अनगार हैं. बहुरि ध्यानमें तिष्ठैं श्रेणी मांडैं ते यति हैं. बहुरि जिनको अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋषि हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसैं जानना ॥ ४८६ ॥

आगें या ग्रंथका कर्ता श्रीस्वामिकार्तिकेयनामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।

रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणहंभणट्ठं च ॥४८७॥

भाषार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्तिकेय नामा मुनि तानें रच्यो है. गायारूप रचना करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानै यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है, ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुपेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि, - जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्य है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पूजादिक लौकिक प्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्य है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकों वारम्बार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकों थांमनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकों इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुपेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकों इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी बध्दवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगे अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगे अनुपेक्षाका माहात्य कहि भव्यनिकों उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

वारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उच्छां सोक्खं ॥

भाषार्थ—ए बारह अनुपेक्षा जिन आचार्यके अनुसार ले भगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो में क-

लपित न कही हैं पूर्व अनुसारतैं कही हैं सो इनिकों जो भव्य जीव पढै अथवा सुणै अर इनिकी भावना करै बारम्बार चितवन करै सो उत्तम सुख जो बाधारहित अविनाशी स्वात्मीक सुख, ताकों पावै. यह संभावनारूप कर्त्तव्य अर्थका उपदेश जानना. भव्य जीव है सो पढौ सुणौ बारम्बार इनिका चितवन रूप भावना करौ ॥ ४८८ ॥

आगे अन्त्यमंगल करै हैं,--

तिहुयणपहाणस्वामिं कुमारकाले वि तविय तवयरणं ।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरिमतियं संथुवे णिच्चं ॥ ४८९ ॥

भाषार्थ—तीन भुवनके प्रधानस्वामी तीर्थंकर देव जिनने कुमार कालविषै ही तपश्चरण धारण किया, ऐसे वसुपूज्य राजाके पुत्र वासुपूज्यजिन, अर मल्लिजिन अर चरम कहिये अंतके तीन नेमिनाथ जिन, पार्श्वनाथ जिन, वर्द्धमान जिन ए पांच जिन, तिनिकों मैं नित्य ही स्तवं हूं तिनिके गुणानुवाद करू हूं बंदूं हूं. भावार्थ—ऐसैं कुमारश्रमण जे पांच तीर्थंकर तिनिकों स्तवन नमस्काररूप अंतमंगल कीया है. इहां ऐसा सूचै है कि—आप कुमार अवस्थामें मुनि भये हैं तातैं कुमार तीर्थंकरनितैं विशेष प्रीति उपजी है तातैं तिनिके नामरूप अंतमंगल कीया है ॥ ४८९ ॥

ऐसै श्रीस्वामिकार्तिकेय मुनि यह अनुपेक्षा नामा ग्रन्थ समाप्त कीया ।

आगे इस वचनिकाके होनेका संबन्ध लिखिये हैं,—

(२८९)

दोहा ।

प्राकृत स्वामिकुमार कृत, अनुप्रेक्षा शुभ ग्रन्थ ।

देशवचनिका तासकी, पढौ लगौ शिवपंथ ॥ १ ॥

चौपई ।

देश हुंढाहड़ जयपुर थान । जगत्सिंह नृपराज महान ।

न्यायबुद्धि ताकै नित रहै । ताकी महिमा कोकवि कहै ॥ २ ॥

ताके मंत्री बहुगुणवान । तिनकै मंत्र राजसुविधान ॥

ईति भीति लोकनिकै नाहि । जो व्यापै तौ भूट मिटि जाहि

धर्मभेद सब मतके भले । अपने अपने इष्ट जु चले ॥

जैनधर्मकी कथनी तनी । भक्ति प्रीति जैननिकै घनी ॥ ४ ॥

तिनमें तेरापंथ कहाव । धरै गुणीजन करै बढाव ॥

तिनिके मध्य नाम जयचंद्र । मैं हूं आतमराम अनंद ॥ ५ ॥

धर्मरागतैं ग्रन्थ विचारि । करि अभ्यास लेय मनधारि ॥

भावन बारह चितवन सार । सो हूं लखि सपज्यो सुविचार ६

देशवचनिका करिये जोय । सुगम होय बांचै सब कोय ॥

यातैं रची वचनिका सार । केवल धर्मराग निरधार ॥ ७ ॥

मूलग्रन्थतैं घटि बढि होय । ज्ञानी पंडित सोधौ सोय ॥

अल्पबुद्धिकी हास्य न करैं । संतपुरुषमारग यह धरैं ॥ ८ ॥

बारह भावनकी भावना । बहु लै पुण्ययोग पावना ॥

तीर्थकर वैराग जु होय । तब भावै सब राग जु खोय ॥ ९ ॥

दीक्षा धारै तब निरदोष । केवल ले अरु पावै मोष ॥

यह विचारि भावौ भवि जीव । सब कल्याण सु धरौ सदीव ॥

(२९०)

पंच परमगुरु अरु जिनधर्म । जिनवानी भाषै सब मर्म ॥
चैत्य चैत्यमंदिर पढि नाम । नमूं मानि नव देव सुधाम ११

दोहा ।

संदत्सर विक्रमतगां, अष्टादशशत जानि ।
त्रेसठि सावण तीज वदि, पूरण भयो सुपानि ॥१२॥
जैनधर्म जयवंत जग, जाको मर्म सु पाय ।
वस्तु यथारथरूप लखि, ध्यायें शिवपुर जाय ॥१३॥

इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जयचंदजीकृत
वचनिकासहित समाप्त ।



लीजिये ! पांचसौका ग्रंथराज इक्यावन रुपयेमें—

सिद्धांत ग्रंथ गोम्मटसारजी ।

(लब्धिसार क्षपणासारजी भी साथमें हैं)

ये ग्रंथराज पांच वर्षसे हमारे यहां छप रहे थे, सो अब लब्धिसारक्षपणासारजी सहित दू खंडोंमें छपकर संपूर्ण हो गये । जीवकांड १४०० पृष्ठ कर्मकांड संदृष्टिसहित १६००, पृष्ठ लब्धिसारक्षपणासारजी ११०० पृष्ठ कुल ४१०० पृष्ठ श्लोक संख्या सबकी अनुमान १,२५००० के होगी । क्योंकि इन सबमें संस्कृतटीका और स्वर्गीय पं० टोडरमलजी कृत वचनिका सहित मूलगाथायें छपी हैं । कागज स्वदेशी ऐंटिक टिकाऊ ५० पौंडके लगाये गये हैं । ऐसा बड़ा ग्रंथ जैनसमाजमें न तो किसीने छपाया और न कोई आगेको भी छपानेका साहस कर सकता है । अगर इस समस्त ग्रंथको हाथसे लिखवाया जाय तो ५००) रु० से ऊपर खर्च पड़ेंगे और १० वर्षमें भी सायद लिखकर पूरा न होगा वही ग्रंथ हाथसे लिखे हुये ग्रंथोंसे भी दो बातोंमें पवित्र छपा हुआ—केवल ५१) रुपयेमें देते हैं डांकखर्च दै।) जुदा लगेगा ।

ये ग्रंथराज सिद्धांत ग्रंथोंमें एक ही हैं यह जैनधर्मके समस्त विषय जाननेके लिए दर्पण समान हैं । इसके पढ़े बिना कोई जैनधर्मका जानकार पण्डित ही नहीं हो सकता ।

मंत्री

लब्धिसार क्षपणासारजी ।

(भाषा और संस्कृतटीका सहित)

भगवान नेमिचन्द्राचार्य जब गोमट्टसारजी सिद्धांतग्रंथकी रचना कर चुके और उसमें केवल बीस प्ररूपणाओंका तथा जीवको अशुद्ध दशामें रखनेवाले कर्मोंका ही वर्णन आ पाया तो उनने सांसारिक दशासे मुक्त होनेकी रीतिका भी वर्णन करना उपयुक्त समझा । बस ! इसी बातका इस ग्रन्थमें सविस्तर वर्णन है । यदि आपने अपनी अनन्त कालसे संसारमें परिभ्रमणकर प्राप्त हुई पर्यायोंका दिग्दर्शन कर लिया है, यदि आपने उन अशुद्ध वैभाविक पर्यायोंको उत्पन्न करानेवाले वास्तविक कर्मरूपी शत्रुओंकी समस्त सेनाको पहिचान लिया है तो आपका सबसे पहिले यह कर्तव्य है कि आप अपनी शुद्ध दशा होनेकी रीतिजो आचार्य महाराजने इस ग्रन्थमें बतलाई है, उसका मनन अध्ययन करें । पृष्ठ कागज, मोटे अक्षरोंमें पं० टोडरमल्लजी कृत भाषा भाष्य और संस्कृतटीका सहित है । पृष्ठ संख्या ११०० सौ । न्योछावर १२॥) पोष्टेज १॥) जुदा ।

जिन भाइयोंने गोमट्टसारजी पूर्ण लिये हैं उनको तो अवश्य ही यह ग्रंथ मंगाना चाहिये । न्योछावर उनके लिए १०) रु० ही है । पोष्टेज जुदा ।

मुद्रक—

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ,
जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस
कलकत्ता ।